में आये बिना नहीं रह सकते। सीपानीजी बड़े ही मिलनसार ...
धर्म पर गाढ़ श्रद्धा रखते हैं और सेवा-कार्य में तत्पर रहते हैं
पूज्य श्री के व्याख्यानसाहित्य के बड़े ही प्रेमी हैं।

आपके पिता सेठ माणकचन्दजी सा. सीपानी, सेठ ...
गणेशलालजी मालू के प्रधान मुनीम और भागीदार थे। सेठ गणेश-लालजी आपके ऊपर पूरा भरोसा रखते थे और दूसरे लोग उनकी प्रामाणिकता के कायल थे। उनकी प्रामाणिकता एक निष्ठावान श्रावक के योग्य ही थी। वे सफल व्यापारी थे। समाज में उन्होंने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

सेठ माणिकचन्दजी का जन्म वि. सं. १९२० के माघ शुक्ल पक्ष में और निधन सं. १९९३ के कार्तिक में हुआ। वि. सं. १९६३ की फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को श्री चेवरचन्दजी सा. का जन्म हुआ। यह सेठ साहब के इकलौते पुत्र थे। मगर आपकी धर्मनिष्ठा का खयाल कीजिए कि पुत्र के उत्पन्न होते ही आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगी-कार कर लिया। आपने सोचा कि जब कुल-दीपक एक पुत्र प्राप्त हो गया है तो फिर विषयभोग का कीट बने रहने से क्या लाभ है?

उनमें एक और बड़ी विशेषता थी। साधारण लोग बात-बात में असत्य भाषण किया करते हैं और जहाँ आर्थिक लाभ की सम्भावना हो वहां असत्य बोल देना साधारण-सी बात समझी जाती है। भारतवर्ष में व्यापारीसमाज असत्य भाषण के लिए बदनाम है। मगर सेठ माणिकचन्दजी साहब इस सम्बन्ध में अपवाद थे। आप भारी आर्थिक क्षति उठा कर भी कभी असत्य का सेवन नहीं करते थे। असत्य भाषण

न करने की आपने प्रतिज्ञा ग्रहण की थी। वि. सं १९७५ की बात है। अपने मालिक और भागीदार सेठ गणेशलालजी मालू की तरफ से बङ्गाल में एक आसामी पर नालिश की गई। अदालत मे गवाह के रूप में आप पेश हुए। आपके जीवन में, अदालत मे पेश होने का वह पहला ही अवसर था। धर्म और न्याय के अनुसार आजीविका करने वाले एव जीवन-व्यवहार चलाने वाले व्यक्ति के लिए अदालत में जाने की आवश्यकता ही नही होती।

वर्त्तमान कानून-शास्त्र में कुछ ऐसी अनिवार्य त्रुटियाँ हैं कि कानून के अनुसार सत्य को सत्य सिद्ध करने के लिए भी बहुत बार असत्य का आश्रय लेना पड़ता है। आप जिस मामले मे पेश हुए थे वह सच्चा था। मगर वकीलों की सम्मति थी कि अगर इस मामले में आदि से अन्त तक सब बातें सच-सच कही जाएँगी तो मुकदमा खारिज हो जायगा। मगर सेठ माणिकचन्दजी पक्के सत्यवादी थे। उन्होंने कहा—'सत्य को सत्य सिद्ध करने के लिए अगर असत्य का आश्रय लेना पड़ता है तो भी मै असत्य का आश्रय नहीं लूंगा। कानून के दोष के कारण मैं दोषी नहीं बनूंगा।' और आपने सब बातें सच्ची-सच्ची कह दी। परिणाम वही हुआ जिसकी सम्भावना थी। मामला खारिज हो गया।

लेकिन सत्य इतना प्रभावहीन नहीं है। सेठ माणिकचन्दजी साहब ने जिस सत्य को दृढ़तापूर्वक अपनाया था, उसका प्रभाव विरोधी पार्टी पर इतना गहरा पड़ा कि मुकदमा जीत जाने पर भी उसने स्वय आकर आना-पाई समेत रकम चुकता कर दी और आपकी भूरि-भूरि सराहना की।

श्रीमान् घेवरचन्दजी सा० जैसे आदर्श और धर्मनिष्ठ पिता के सुयोग्य पुत्र हैं। आपके भी दो पुत्र हैं—चि० भंवरलाल और मङ्गल-चन्द। आप आजकल अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं।

'रामवनगमन' का यह दूसरा भाग अपने पिता श्री की स्मृति में आपकी ओर से लागत से भी आधे मूल्य में भेंट किया जा रहा है। हम अपनी ओर पाठकों की ओर से सीपानीजी को धन्यवाद देते हैं। सीपानीजी साहब से हमें भविष्य में अनेक आशाएँ हैं।

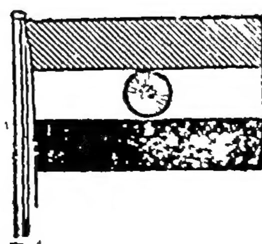
श्रीहितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम का आभार तो प्रत्येक किरण के साथ जुड़ा हुआ ही समझना चाहिए। उसी की ओर से सगृहीत व्याख्यान साहित्य के आधार पर ही यह सब प्रकाशन हो रहा है।

निवेदक —

भीनासर
(बीकानेर)
१-१-४८



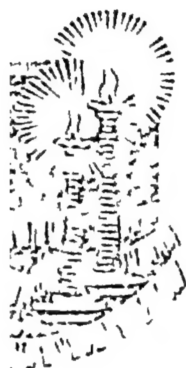
चम्पालाल बाँठिया,
मन्त्री,
श्री जवाहर साहित्य-समिति।



श्री जवाहर किरणावली

पन्द्रहवीं किरण-राम-वनगमन

(द्वितीय भाग)





श्रीमान सेठ माणकचन्दजी सीपाणी उदरामसर (बीकानेर)



र्धाम नू सेठ घेवरचन्द जी मीपाणी उदरामसर (बीकाने

राम वन-गमन ।

[द्वितीय-भाग]

अयोध्या में हलचल ।

राजमहल में जो घटनाएँ घटी थीं, सारे नगर में उनकी खबर पहुँचते देर न लगी। बिजली के वेग की तरह घर-घर समाचार पहुँच गया कि रानी कैकेयी ने वर मांगा है, इस कारण भरत को राज्य दिया जा रहा है और राम वन जा रहे हैं।

यह कठोर निर्णय सुनने के लिये कोई तैयार न था। अवध की प्रजा राम को प्राणों से अधिक प्यार करती थी। उनके राज्याभिषेक की तैयारी के संवाद ने प्रजा में एक अनोखी हलचल मचा दी थी। बालक, वृद्ध सभी के हृदय हर्षविभोर होरहे थे। घर-घर में मंगल-गान हो रहा था और उत्सव मनाया जा रहा था। सभी लोग राम के राज्याभिषेक को देखकर अपने नेत्र सफल करने के लिए उत्कंठित

थे। अभिषेक मुहूर्त की विकलता के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे।

ऐसे समय में राम के वनवास के समाचार से प्रजा की क्या दशा हुई, यह कहना कठिन है। जिसने सुना उसी का दिल बैठ गया, मानो अचानक बिजली गिर पड़ी हो। अवध में आनन्द के कोलाहल के स्थान पर सर्वत्र हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे—'हाय ! यह क्या होगया ?' आज मानो अवध की प्रजा का सर्वस्व लुट गया ! अयोध्या अनाथ होने वाली है। जैसे किसी क्रूर ने अयोध्या का कलेजा निकाल कर फैंक दिया !

अवध में एक सिरे से दूसरे सिरे तक घोर शोक की लहर दौड़ गई। जिसने जहाँ सुना, वह वहीं सिर धुनने लगा। सबका मुँह सूख गया। आंखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी। ऐसा जान पड़ता, मानो सारे संसार का करुण रस सिमट कर अयोध्या में जमा हो गया।

कुछ लोग कहने लगे—हाय दैव ! तू क्या इसी अवसर की बाट जोह रहा था ? तू ने सब बना-बनाया काम अन्त में बिगाड़ दिया। संसार की दशा बड़ी ही विषम है। यहा सोची हुई बात नष्ट हो जाती है और अनसोची हो जाती है। कहाँ तो राम के राज्य की बात सोच रहे थे और कहाँ उनके वन-गमन का हृदयविदारक दृश्य देखना पड़ेगा। मनुष्य की शक्तियाँ कितनी परिमित हैं ! उसके हाथ में क्या है ? कौन जानता है, कब, किसका क्या होने वाला है !

कुछ लोग कैकेयी को कोसने लगे। एक ने कहा—कैकेयी वास्तव में अवध का अभिशाप है। उसने अवध के राज-परिवार को घोर मुसीबत में डाल दिया है। अब तक जो राजकुल सुख-शांति का आगार था, उसे उसने अशांति का घर बना दिया है। उसने सब प्रकार की शोभा से सम्पन्न राज-परिवार के मनोहर उद्यान को अपने हृदय की विकराल ज्वालाओं से भस्म कर दिया है, वीरान बना दिया है और भयानक श्मशान के रूप मे परिणत कर दिया है। कैकेयी ने अवध की प्रजा के साथ घोर द्रोह किया है। उसने प्रजा की आत्मा का हनन करके अपनी पैशाचिकता प्रकट की है।

किसी ने कहा—यह प्रपंच रचकर कैकेयी ने अपने पैर पर आप ही कुल्हाड़ा मार लिया है। कोई मूर्ख अपनी आंखों से अपनी ही आँखें देखने के लिए आँखें निकाल ले और फिर पश्चाताप करे कि, हाय, मैं अपनी आँखें कैसे देखूँ? तो ऐसे मूर्ख की मूर्खता जैसे असाधारण है, कैकेयी की मूर्खता भी इसी प्रकार असाधारण है! वह जिस डाली पर बैठी थी, उसी को काट डाला है। राम उसे प्राणों के समान प्रिय थे। किसी क्षणिक आवेग में उसने यह भयंकर भूल कर डाली है। इस भूल के लिए उसे जीवन भर पछताना पड़ेगा। इस भयँकर पाप की बदौलत वह स्वयं शांति प्राप्त नहीं कर सकेगी। आखिर रानी को क्या सूझा कि उसने ऐसी कुटिलता की? कहावत है—

स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्,
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?

तिरिया-चरित बड़ा गहन होता है। उसका पता पाना सहज नही है। कदाचित् कांच में पड़ने वाला प्रतिबिम्ब पकड़ में आ जाए, मगर स्त्री-चरित नही जाना जा सकता। आग में क्या नही जल जाता ? समुद्र में क्या नही समा सकता ? स्त्री क्या नहीं कर सकती ?

कोई-कोई कहने लगे—रानी को दोष देते हो, पर राजा की बुद्धि कहाँ चली गई है ? राजा अगर स्त्री के वश में न होते तो यह दशा क्यों होती ? कैकेयी राम की सौतेली माता है, मगर राजा तो सौतेले बाप नहीं थे। कैकेयी ने भरत का पक्ष किया मगर राजा के लिए तो राम और भरत सरीखे थे, फिर उन्होंने क्यों विवेक भुला दिया ? एक औरत की बात मानकर इतना बड़ा अन्याय करने पर जो उतारू हो गया है, उस राजा की बुद्धि नहीं बिगड़ी, यह कौन कह सकता है ! राजा को प्रजा की इच्छा का भी तो ख़याल करना चाहिए था।

लोगों में जो कुछ समझदार थे, कहने लगे—भाई, चाहो जो कहो, पर राजा को दोष देना अन्याय है। राजा दशरथ परम धर्मात्मा हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन न्याय और धर्म में व्यतीत हुआ है। वे अविवेकी तो नहीं है। उन्होंने रानी की रथ-संचालन कुशलता से प्रसन्न होकर उसे वर देने का

वचन दिया था। अब उस वचन का पालन करना उनका कर्त्तव्य है। धर्म का पालन प्रत्येक अवस्था में करना ही चाहिए। धर्म के लिए हरिश्चन्द्र ने कितने कष्ट सहे थे? राजा दशरथ को राम प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उन्हें वन में भेजकर वे क्या प्रसन्न होंगे? उनकी वेदना उन्हीं से पूछो। उनका कलेजा कट रहा होगा। मगर वे धर्म के बन्धन में बँधे हुए है। उन्हें दोष देना अनुचित है। कोई कुछ भी कहे, पुत्र-वियोग की दारुण व्यथा सह कर भी अपने धर्म से न डिगने वाले राजा दशरथ प्रशंसा के ही पात्र हैं।

राजनीति में अपना दखल रखने वाले कोई कहते—इस षड्यन्त्र में भरत का भी हाथ अवश्य होगा। भरत की सहमति के बिना रानी को ऐसा वर मांगने का हौंसला ही नहीं हो सकता था।

यह आलोचना सुनकर दूसरा कान को हाथ लगाकर और दांतों तले जीभ दबाकर कहता—ऐसा कहने वाले का सब सुकृत और पुण्य नष्ट हो जायगा। भरत संत-स्वभाव के हैं। वह राम के द्रोही त्रिकाल में भी नहीं हो सकते। भरत को कलङ्क लगाना अपने आपको कलंकित करना है।

इस प्रकार तरह-तरह की आलोचनाएँ सुनकर किसी ने कहा—वृथा गाल बजाने से क्या लाभ है? बीमारी किसी भी कारण से हुई हो, मिटेगी वह उचित उपचार करने से ही। कारणों की मीमांसा में ही समय नष्ट करने से बीमारी बढ़कर

बीमारी असाध्य हो जाती है। बुद्धिमान् मनुष्य बीमारी के असाध्य होने से पहले ही उसका उपचार करते हैं। किसी को दोष देने से क्या हाथ आएगा? रानी कैकेयी ने वर मांगा है। बिगड़ी को बनाना अब उन्हीं के हाथ में है। किसी उपाय से अब कैकेयी को समझाना उचित है। स्त्रियों का काम स्त्रियों से ही भलीभांति हो सकता है। स्त्री ही स्त्री को समझा सकती है। अतएव कैकेयी को समझाने के लिए कुछ बुद्धिमती स्त्रियों को भेजना चाहिए। रानी के कारण अगर बना काम बिगड़ गया तो बिगड़ा काम बन भी सकता है।

कैकेयी के पास स्त्रियों का प्रतिनिधि मंडल

आखिर सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि अयोध्या की चुनी हुई कुछ बुद्धिमती स्त्रियाँ कैकेयी को समझाने के लिए भेजी जाएँ। ऐसी स्त्रियों का एक प्रतिनिधिमण्डल बनाया गया। यद्यपि जाने वाली स्त्रियाँ जानती थीं कि जो कैकेयी राम से न समझी, महाराज से न समझी और अपने पेट के पुत्र भरत से भी न समझी, उसे हमारा समझा सकना बहुत टेढ़ी खीर है, तथापि हिम्मत नहीं हारना चाहिए और अपना कर्त्तव्य अदा करना चाहिए। यह सोचकर प्रतिनिधि स्त्रियाँ कैकेयी के पास गईं। उनमें कई स्त्रियाँ बहुत बुद्धिमती थीं।

साधारण गाँव में भी बुद्धिमती नारियाँ मिल सकती हैं तो

अयोध्या में—राम की जन्मभूमि में और जहाँ सीता आकर बसी थी वहाँ बुद्धिमती स्त्रियों का होना साधारण बात है।

स्त्रियों ने सोचा—रानी चाहे समझे या न समझे, पर अपनी गाँठ की अक्ल गँवाना ठीक नहीं है। अगर हम सब अलग-अलग बातें करने लगेंगी तो किसी भी बात का फैसला नहीं हो पाएगा। इसके अतिरिक्त ऐसा करने से हम बुद्धि-हीना समझी जाएँगी। अतएव हम में से कोई चुनी हुई स्त्रियाँ ही बात करें। शांतिपूर्वक बात करने से ही कोई तत्त्व निकल सकता है।

इस प्रकार निश्चय करके नारीमंडली कैकेयी के निकट पहुँची। इस मंडली में जो विशेष बुद्धिमती और कैकेयी की सखी भी थीं, वही बातचीत करने के लिए नियत की गई थीं। वह कैकेयी से बातें करने लगीं।

कोई आदमी समझाने वाले की बात माने या न माने, मगर समझाने वाले को अपनी गांठ की अकल नहीं गँवानी चाहिए। मतलब यह है कि जिसे समझाया जा रहा है वह कदाचित् न समझे तो भी समझाने वाले को अपना धैर्य और अपनी शांति नहीं खोना चाहिए। अगर समझाने वाला चिढ़ जाएगा तो वह अपनी गांठ की बुद्धि गँवा बैठेगा।

समझाने वाली स्त्रियां समझाने का ढंग जानती थीं। वे पहले पहल कैकेयी के शील की सराहना करने लगीं। एक ने

कहा—महारानी जी का शील और स्नेह ऐसा है कि मुझे आजतक कभी असंतुष्ट होने का अवसर नहीं मिला। हम आज भी इसी आशा से आई हैं। महारानी जी हमे असंतुष्ट नहीं करेंगी। विश्वास है. महाराजा हमारी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेंगी।

दूसरे ने कहा—हाँ, आपके ऊपर महारानी जी का बहुत स्नेह है। तुम महारानी के स्वभाव को जानती ही हो मगर और सब भी आपकी सुशीलता की प्रशंसा करते हैं। महारानी कौशल्या और सुमित्रा भी आपके शील की बड़ाई करती हैं। स्वयं महाराजा भी इनके शील की प्रशंसा करके कहते हैं कि इन्हीं ने मेरे जीवन की रक्षा की है।

इस प्रकार स्त्रियाँ आपस में बातचीत करके कैकेयी को चढ़ाने का प्रयत्न करने लगीं। मगर कैकेयी को उनकी बाते ज़हर-सी कड़ुवी लगती थीं। उसे अमृत-से मीठे वचन विष की तरह कटुक क्यों लगते थे? संसार की यह विपरीत दशा देखकर ही ज्ञानी कहते हैं—

न जाने संसारे किममृतमयं कि विषमयम्।

कैकेयी मन ही मन खीझने लगी। सोचने लगी—इस समय यह क्यों यहाँ आई हैं? अगर सभ्यता का खयाल न होता तो मै इन्हें दासियों से धक्के दिलवाकर निकलवा देती!

स्त्रियों की बातें सुनकर भी कैकेयी के मुँह पर कोप बना रहा। मगर स्त्रियां चतुर थीं। उन्हों ने सोचा—यह माने

चाहे न माने, हमें तो पूरा प्रयत्न करके अपना कर्त्तव्य पालना ही है। यह सोचकर एक बोली—'महारानी जी अकसर कहा करती थीं कि राम मुझे भरत से भी ज्यादा प्रिय हैं। जब उनके सामने कोई भरत की प्रशंसा करता तो ये कहती थीं कि मेरे सामने भरत का नाम मत लो, मुझे राम जितने प्यारे हैं, उतने भरत भी नहीं हैं। एक के इस कथन का सब ने समर्थन किया। फिर दूसरी बोली—लेकिन आज यह बात क्यों नहीं दिखाई देती? अगर ऐसे धर्मात्मा राजा की रानी भी सत्य को छोड़ देगी तो सत्य का पालन कौन करेगा? संसार में यह बात प्रसिद्ध हो चुकी है कि कैकेयी भरत की अपेक्षा राम को ज्यादा प्यार करती हैं। लोग सौतेले बालक के विषय मे आपका उदाहरण दिया करते हैं कि सौतेले बेटे से प्रेम ऐसा होना चाहिए जैसे महारानी कैकेयी का राम पर है! हमने आपके मुख से जब-जब राम की प्रशंसा सुनी, तब यही समझा कि ये राम के प्रति सहज स्नेह रखती हैं। जो कुछ इन्होंने कहा है, बनावटी नहीं है।

सहज स्नेह वह है जो कभी टूट नहीं सकता। मछली का जल के प्रति सहज स्नेह है। जल से अलग करके मछली को कितने ही चैन मे रक्खा जाय, पर वह तड़फती ही रहती है।

दूसरी बोली—तुमने रानीजी का प्रेम सहज समझा था। तुम कहती थीं कि राम जल और कैकेयी मछली है। लेकिन

तुम्हारी कल्पना ठीक कैसे है ? अगर महारानी जी का राम के प्रति सहज स्नेह है तो किस अपराध से राम आज वन जा रहे हैं ? राम अपना राज्य भरत को देकर वन जाने को भी तैयार हैं मगर इनका सहज स्नेह कैसा है जो राम को वन जाने देने को तैयार है !

तीसरी ने कहा—महारानी जी का राम के प्रति स्नेह कम नहीं हो सकता । सौतों मे आपस में कोई झगड़ा हो गया हो तो कह नहीं सकती ।

चौथी बोली—नहीं, संसार उलट जाय पर इस परिवार में सौतों में कभी झगड़ा नहीं हो सकता । यहाँ सौतभाव की कभी गंध तक नहीं आई । सब रानियाँ एक-प्राण हैं । आपस में लेश मात्र भी विरोध नहीं है ।

पाँचवीं ने कहा—अगर सब का सब पर प्रेम है तो राम का क्या दोष है, जिससे उन्हें वन भेजा जा रहा है ? अगर महारानी कौशल्या ने कुछ बिगाड़ा है तो मै अभी उनके पास जाती हूँ और पूछती हूँ । उनका अपराध होगा तो वे उसके लिए पश्चात्ताप किये बिना न रहेंगी । कदाचित् उन्होंने कोई अपराध किया भी हो तो उनके बदले राम को दंड क्यों दिया जा रहा है ? आज नगर में उत्सव मनाया जा रहा है कि राम को राज्य मिलेगा, लेकिन राम के वन जाने पर नगर पर वज्रपात होगा या नहीं ? यह बात तो निश्चित है कि अगर राम वन गये तो सीता

भी यहाँ नहीं रहेंगी। और राम तथा सीता को वन जाते देखकर लक्ष्मण क्या राजमहल में रह सकेंगे ? जब यह तीन रत्न लुट जाएँगे तो अयोध्या दरिद्र, सूनी और भयानक हो जाएगी। महाराज तो दीक्षा ले ही रहे है। इस स्थिति में भरत को क्या चैन पड़ेगी ? क्या वह सुखी रह सकेंगे ? मैं तो कहती हूँ, अगर ऐसा हुआ तो महारानी कैकेयी को भी बुरी तरह पछताना पड़ेगा। इनके हाथ कुछ नहीं लगेगा। जिन्दगी दूभर हो जाएगी।

इस प्रकार आपस में बातचीत हो रही थी तब एक स्त्री ने कहा—अपनी-अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाने मे क्या लाभ है ? महारानी जी सामने हैं। आपसे ही पूछा जाय कि वास्तव में बात क्या है ? महारानी जी, आप फरमाइए। अवध की प्रजा को और राजकुल को कष्ट में मत डालिए। रामको वन भेजने में किसी का कल्याण नहीं है।

कैकेयी की आँखें लाल हो गईं। वह बोली—मैंने कब कहा है कि राम वन चले जाएँ ! वह अपनी इच्छा से जा रहे हैं तो रोके क्यों रुकेंगे ? राम तुम्हारे लिए सभी कुछ हैं, भरत कुछ भी नहीं ! क्या भरत कहीं से भीख मांगता आया है ? वह राजा का पुत्र नहीं है ? अगर उसे राज्य मिलता है तो प्रजा पर वज्रपात क्यों हो रहा है ? प्रजा में इतना पक्षपात क्यों है ? यह सब किसकी करामात है कि प्रजा में यह भेदभाव उत्पन्न हुआ ?

कैकेयी का रुख देखकर आई हुई स्त्रियों को ज्ञात हो गया कि अब आगे बात करना वृथा है। बात बढ़ाने से कुछ लाभ न होगा। कैकेयी को कुमति ने घेर लिया है। अभी नहीं, कुछ दिन बाद उसे सुमति सूझेगी।

सब स्त्रियाँ निराशा के साथ राजमहल से बाहर आ गई। बाहर बहुत-से लोग उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। उन्हें उदास देखकर सभी ने समझ लिया कि काम सुधरा नहीं है। आकर उन्होंने कहा—अयोध्या के अभाग्य का अन्त अभी आता नजर नही आता। रीते चूल्हे में फूँक देने से मुँह मे राख ही आती है। कैकेयी को समझाने में भी यही हुआ!

राम का संतोष

राम को मालूम हुआ कि नगर की प्रतिष्ठित स्त्रियाँ माता को समझाने आई थीं, पर वह नहीं मानीं। यह जानकर राम ने कहा—मेरा भाग्य अच्छा है। इसीसे माता किसी के बह-कावे में नहीं आई और अपनी बात पर दृढ़ रही है। वन जाने में ही मुझे आनन्द है और इसी में कल्याण है। अगर माता फिसल जाती तो राज्य की डोरी मेरे गले में पड़ जाती।

कल्पना कीजिए, एक हाथी खँभे से बँधा हुआ है। वह जंगल में जाना चाहता है। इसी समय अचानक खंभा टूट जाता है तो हाथी को कितनी खुशी होगी? कहा जा सकता है कि हाथी राजा के पास रहता तो गन्ना आदि उत्तम वस्तुएँ से खाने को मिलती। जंगल में क्या धरा है? मगर जंगल

के आनन्द को हाथी जानता है। उससे पूछो, वह क्यों जंगल में जाने को व्याकुल रहता है?

राम इसी भाँति कहते हैं—अच्छा हुआ, माता मानी नहीं। अब मैं जाकर आत्मनिर्भर होकर अपना विकास कर सकूँगा।

संसार विषमताओं का अखाड़ा है। इन विषमताओं को देखकर ज्ञानी जनों को बोध प्राप्त होता है। कहाँ राज्याभिषेक और कहाँ वन-गमन! कितनी विषम घटनाएं हैं! पर उनके घटने में विलम्ब नहीं लगा। वास्तव में संसार में अनघड़ घाट घड़ा जाता है और घड़ा हुआ घाट टूट जाता है।

राम के साथ लक्ष्मण भी हो लिए। लक्ष्मण को यद्यपि बड़ा असंतोष था फिर भी उन्होंने रामचन्द्र के विचार के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहने का निर्णय कर लिया था। उन्होंने सोचा था—वैसे तो रामचन्द्र जी के राज्य को लेने का किसमें साहस है? पर राम ने धर्म की जो मर्यादा बतलाई है और जिसका वे पालन कर रहे हैं, उसके विरुद्ध मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिए।

राम प्रसन्न होते हुए कौशल्या के पास आये। राम और लक्ष्मण को देखकर कौशल्या प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी—मैंने राम को इतना प्रसन्न कभी नहीं देखा था। शायद राज्य मिलने के कारण यह प्रसन्नता है! राज्य प्राप्ति के विचार से प्रसन्न होना स्वाभाविक है। पर लक्ष्मण क्यों उदास है? राम को राज्य मिलने से तो लक्ष्मण उदास हो ही नहीं

सकता। तब इनकी उदासी का क्या कारण होगा ?

राम को स्नेहभरी आँखों से देखकर कौशल्या ने उन्हें उसी तरह गोद में बैठा लिया, जैसे मां किसी छोटे बालक को बिठलाती है। फिर उसने राम का सिर चूम लिया। कौशल्या के आनन्द का पार न रहा, मानो अकिंचन के हाथ में अचानक खजाना आ गया। फिर कौशल्या ने कहा—अभिषेक के मुहूर्त्त में अब कितनी देरी है ? राम उत्तर मे कुछ भी न बोले। तब कौशल्या ने कहा—तुम्हारा न बोलना ठीक है। भले आदमी सम्पत्ति मिलने के समय गंभीर ही रहते हैं। अच्छी बात है, जल्दी स्नान कर लो और जलपान करके तैयार हो जाओ। अरे लक्ष्मण ! तू आज उदास क्यों दिखाई देता है ? हर्ष के अवसर पर तेरा यह क्या डौल है ?

राम कहने लगे—माता, तेरा प्रेम-समुद्र अगाध है। मगर तू उलटा समझ रही है। मै एक प्रार्थना करने आया हूँ। तुम्हारे लिए जैसा मै हूँ, वैसा ही भरत है और जैसे भरत हैं वैसा ही मै हूँ। यह बात तुम्हारे मुख से मै कई बार सुन चुका हूँ।

कौशल्या—वत्स, इसमें नवीन बात क्या है ? मैने चारों बेटों में कब भेदभाव किया है ?

राम—माँ, मै जो कुछ आगे कहना चाहता हूँ, वह सुन कर तुम्हें रंज न हो इसी लिए मै ने यह बात कही है। अगर मेरी बात सुनकर तुम्हें रंज होगा तो समझा जायगा कि

तुम्हारी बात कहने भर की ही है। वास्तव में तुम मुझे और भरत को एक नजर से नहीं देखतीं।

कौशल्या—आज तू इस प्रकार की बातें क्यों कह रहा है?

राम—मां, कारण तो अभी मालूम हो ही जायगा। मैं तुमसे आशीर्वाद लेने आया हूँ।

कौशल्या—बेटा, मैं क्या, मेरे शरीर का रोम-रोम तुझे आशीर्वाद देता है कि तू सूर्यवंश के सिंहासन पर बैठकर राज्य को दिपा। तेरा राज्य ऐसा हो कि लोग उसे धर्मराज कहने लगें और तेरा उज्ज्वल यश सुनकर मैं अपनी कूंख धन्य समझूँ। धर्मराज्य करके तुम जगत् को आनंदित करो।

माता का आशीर्वाद सुनकर राम किंचित् विषादभरी मुस्किराहट के साथ बोले—माता, तुमने समझा नहीं। मैं वन-वास के लिए आशीर्वाद लेने आया हूँ।

कौशल्या को जैसे भारी धक्का लगा। वह लक्ष्मण की उदासी का कारण अब समझी। आश्चर्य और घबराहट के साथ कौशल्या ने कहा—राम, तुम और वनवास? क्यों? मंगल में इस अमंगल-प्रस्ताव का क्या कारण है? क्या तुमने अपने पिताजी का कोई अपराध किया है? अथवा जैसे सूर्य निकलने के समय राहु आड़ा आ जाता है, उसी तरह तुम्हारी राज्यप्राप्ति में किसी ने विघ्न डाला है? बात क्या है, साफ-साफ क्यों नहीं कहते?

राम—मां, मैं ऐसे किसी कारण से वन नहीं जा रहा हूं।

मैं जिस कारण वन जाता हूँ, उसकी बदौलत आप भी धन्य मानी जाएँगी। अगर मैं अपराध करके वन जाता तो आप धन्य नहीं समझी जा सकतीं।

कौशल्या—तो कहो न, वन जाने का क्या कारण है?

राम—आपने पिता की सेवा अवश्य की है मगर आपकी अपेक्षा कैकेयी माता ने अधिक सेवा की है। जब मेरा जन्म भी न हुआ होगा, तब एक बार पिताजी पर शत्रुओं ने युद्ध में हमला कर दिया था। उस समय माता कैकेयी पिताजी की रक्षा न करती तो उनका जीवन शायद ही रहता। पिताजी का सारथी मारा गया था। उनके घोड़े भाग रहे थे। रथ की धुरी भी टूट गई थी। उस समय माता कैकेयी ने घोड़ों की रास सँभाली और रथ की धुरी कसी। उन्होंने कुशलता के साथ रथ चलाया और पिताजी शत्रुओं को परास्त करने में समर्थ हो सके।

कौशल्या—हाँ, यह घटना ऐसी ही हुई थी। मुझे मालूम है।

राम—तो मैं माताजी के इस महान् कार्य का पुरस्कार देने वन जा रहा हूँ।

कौशल्या—यह कैसे? उस महान् कार्य के लिए महाराज उसी समय वरदान दे चुके हैं।

राम—वरदान देने का वचन दे चुके थे, मगर उस समय दिया नहीं था। अब वह वर माता ने माँग लिया है।

कौशल्या--उचित ही है। उसे वर मिलना ही चाहिए।

राम--तो माता कैकेयी ने यह वर मांग लिया है कि राज्य भरत को दिया जाय।

कौशल्या--इसमें हर्ज की कोई बात नहीं। मेरे लिए राम और भरत दो नहीं एक ही हैं। पर तुम्हारे वन जाने का क्या कारण है? तुम प्रसन्न होकर भरत की सहायता करना। वन जाने की क्या आवश्यकता है?

राम--मै किसी अपराध के कारण वन नहीं जाता हूँ, स्वेच्छा से ही मैंने यह निर्णय किया है। सूर्यवंश की रीति है कि बड़ा भाई राज्य करे और छोटा उसकी सेवा करे। भरत अड़ गया था कि मैं राज्य नहीं लूँगा-राम ही राज्य करेंगे। उनकी सब बातें भ्रातृभाव से सनी हुई थीं। मगर ऐसे प्रसंग पर मेरा क्या कर्त्तव्य है? भरत के राजा हो जाने पर भी अगर मैं यहीं रहा तो प्रजा मेरी ही ओर आकर्षित होगी। भरत की ओर नहीं। और जब प्रजा का आकर्षण मेरी ओर ही रहा तो भरत को राज्य देना क्या कहलाया! इसलिए मैंने भरत को समझाया है कि तुम राज्य करो और मैं वनवास करके अपना तथा दूसरों का कल्याण करूँगा। इसी निश्चय के अनुसार मै वन जा रहा हूँ। माता! मुझे आशीर्वाद दो। मैं जंगल में मंगल करने जा रहा हूँ। प्रसन्न हो कर आज्ञा दो।

राम माता से आशीर्वाद क्यों मांग रहे हैं? क्या माता

के शब्द में कोई करामात होती है ? जो रामचन्द्र पुरुषोत्तम कहलाते हैं, उन्हें अपनी भोली माता के आशीर्वाद की क्या आवश्यकता थी ? फिर भी वे माता के आशीर्वाद की इच्छा करते हैं । माता तो आपकी भी होगी । आप राम की तरह माता का आदर करते हैं ? आजकल कोई-कोई सपूत तो ऐसे होते हैं कि नीति की सीख देने के कारण भी अपनी माता का सिर फोड़ने को तैयार हो जाते हैं। कभी-कभी औरत की बातों में आकर माता का अपमान कर बैठते है। राम को माता पर बड़ी आस्था थी। वह सोचते थे—माँ अगर आशीर्वाद दे देगी कि जाओ, जगल में आनन्द से रहो, तो जंगल में भी मै आनन्द से रहूँगा। राम का यह आदर्श भारत को क्या शिक्षा देता है ? ऐसा अद्भुत और आदर्श चरित भारत को छोड़ अन्यत्र कहाँ मिल सकता है ? नैपोलियन के लिए भी कहा जाता है कि वह माता का बड़ा भक्त था। वह कहा करता था—'तराजू के एक पलड़े में सारे संसार का प्रेम रक्खूं और दूसरे पलड़े में मातृप्रेम रक्खूं तो मेरा मातृप्रेम ही भारी ठहरेगा। उसका मातृप्रेम तो कदाचित् राज्यसुख के लिए भी हो सकता है, मगर राम तो उस सुख का त्याग कर रहे हैं !

राम कहते हैं—माता ! आप अपने भोले स्वभाव और मोह में पड़कर इस आनन्द में विघ्न डालने का विचार मत करना। आप जंगल के कष्टों का ध्यान करके भय

पाओगी, लेकिन आप साहस रखिए और इस मंगल-समय मुझे आशीर्वाद दीजिए । आपकी दृष्टि में भरत और राम समान हैं और माता कैकेयी को वरदान भी आप उचित समझती हैं। ऐसी स्थिति में साहस रखकर मुझे आज्ञा दीजिए। भरत को आप मेरे ही समान समझती हैं और उसकी इज़्ज़त बढ़ाने के लिए मेरा वन जाना आवश्यक है।

कहते हैं, लोह-चुम्बक अगर घड़ी के पास रख दिया जाय तो घड़ी की गति बंद हो जाती है। यों तो चुम्बक भी कीमती माना जाता है किन्तु जब उससे घड़ी की गति रुक जाती है तो उसे घड़ी से दूर रखना ही उचित है। राम कहते हैं-इसी प्रकार मेरे रहने से भरत का प्रभाव रुक जायगा और प्रभाव के अभाव में राज्य का भलीभाँति संचालन नहीं होगा। अतएव मेरा वन-गमन ही योग्य है। माता ! आप अपनी आँखों से आंसू पोंछ डालो और मुझे विदा दो। हर्ष के समय विषाद मत करो। संसार का ऐसा ही स्वरूप है। संयोग-वियोग के प्रसंग आते ही रहते हैं। इन प्रसंगों के आने पर हर्ष-विषाद न करने में ही भलाई है।

राम ने बड़ी सरलता और मिठास के साथ यह बात कही। उनके शब्दों में कोमलता कूट-कूट कर भरी थी, तथापि कौशल्या को वह अंगार सी लगी। उनका हृदय इन वचन-बाणों से बिंध गया। कौशल्या को राम के वन जाने की बात सुनकर दुःख हुआ. इसमें किसका अपराध है ? कोई कहेगा,

कैकेयी का अपराध है। मगर कैकेयी तो उन्हें वन नहीं भेज रही है। फिर यह अपराध उसके सिर पर कैसे थोपा जा सकता है? इसलिए कहा है—

न जाने संसारे किममृतमयं किं विषमयम् ?

संसार की विचित्रता बतलाने के लिए ही यह कथा है। राम की बात से कौशल्या को दुःख होने में अपराध अज्ञान का है और किसी का नहीं। कौशल्या मातृसुलभ सुतवत्सलता के कारण राम की बात का यथार्थ स्वरूप नहीं समझ सकीं। इसीसे उन्हें दुःख हुआ। लेकिन जब उन्होंने अज्ञान पर विजय पा ली और राम की बात का सच्चा स्वरूप समझ लिया तो बाजी बदल गई।

कौशल्या की व्यथा !

पहले कौशल्या ने वन के भयानक स्वरूप का स्मरण किया और राम की सुकुमारता का भी विचार किया। कहते हैं, उस समय राम की उम्र सत्ताईस वर्ष की थी। कौशल्या ने राम की उम्र का विचार करके सोचा—क्या यह अवस्था वन जाने के योग्य है? राजमहल में सुमन-सेज पर सोने वाला सुकुमार राम वन की कंकरीली, पथरीली और कंटकमयी भूमि पर कैसे सोएगा? कहाँ यहाँ के षट्रस भोजन और कहाँ वन के फल! कैसे वन में इसका निर्वाह होगा? किस प्रकार सर्दी, गर्मी और वर्षा का कष्ट इससे सहा

जाएगा ? मैं राम का वियोग कैसे सह सकूँगी ? प्राण चले जाने पर यह निष्प्राण शरीर कैसे रहेगा ?

इस प्रकार के विचारों से व्यथित होकर कौशल्या मूर्छा खाकर गिर पड़ीं। राम आदि ने शीतोपचार करके उन्हें सचेष्ट किया। सचेष्ट होकर आँसू बहाती हुई कहने लगी—हाय, मैं क्यों जीवित हुई ? पुत्र-वियोग का यह दारुण दुःख सहने की अपेक्षा मरना ही भला था। मर जाती तो वियोग की ज्वालाओं में तिल-तिल करके जलने से बच जाती। मेरा हृदय कैसा वज्र-कठोर है कि पति दीक्षा ले रहे हैं, पुत्र वन को जा रहा है और मैं जी रही हूँ !

कौशल्या की मार्मिक व्यथा का प्रभाव राम पर पड़े बिना न रहा। वे स्वयं व्यथित हो उठे। सोचने लगे—अयोध्या की महारानी, प्रतापी दशरथ पत्नी और राम की माता होकर भी इन्हें कितनी वेदना है ! मेरी माता इतनी शोकातुरा ! मगर, इनमें इतना मोह क्यों है ? वह माता का मोह और संताप मिटाने के लिए वचन रूपी जल छिड़कने लगे। कहने लगे—माता, अभी आप धर्म की बात कहती थीं और पिताजी के दिये वरदान को उचित बतलाती थीं और अभी-अभी आपकी यह दशा ! बुद्धिमती और ज्ञानशीला नारी की यह दशा नहीं होनी चाहिए। यह कायर स्त्रियों को शोभा देता है—राम की माता को नहीं। इतनी कायरता देख कर मेरा चित्त भी विह्वल हो रहा है। जिस माता ने मेरा जन्म हुआ

है, उसे इस तरह की कातरता शोभा नहीं देती। आप मेरे लिए दुःख मना रही हैं और मै प्रसन्नतापूर्वक, स्वेच्छा से वन जा रहा हूँ। फिर आपको शोक क्यों होता है? सिंहनी एक ही पुत्र जनती है मगर ऐसा जनती है कि उसे किसी भी समय उसके लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती। सिंहनी गुफा में रहती है और उसका बच्चा जँगल में फिरता रहता है। क्या वह उसके लिए चिन्ता करती है? वह जानती है कि मैंने सिंह जना है। यह अपनी रक्षा आप ही कर लेगा। माता! जब सिंहनी अपने बच्चे की चिन्ता नहीं करती तो आप मेरी चिन्ता क्यों करती हैं? आपकी चिन्ता से तो यह आशय निकलता है कि राम कायर है और आप कायर की जननी हैं! आप मेरे वन जाने से घबराती हैं पर वन में जाने से ही मेरी महिमा बढ़ सकती है। अनेक राजा लोग राज्य छोड़ कर वन को गये हैं। फिर मै सदा के लिए नहीं जा रहा हूँ। कभी न कभी लौट कर आपके दर्शन करूँगा ही। आप मुझे जगत् का कल्याण करने वाला समझती हो मगर आपकी कातरता से उलटी ही बात सिद्ध होती है।

मैंने पिताजी का कोई अपराध नही किया है। उनका मुझ पर अपरिमित ऋण है। उनके वचन की रक्षा करने के हेतु भरत को राज देकर मैं वन जा रहा हूँ। पिताजी पर जो कर्ज है वह मुझ पर भी है। मै पिताजी का ऋण न चुकाऊँ तो पुत्र कैसा? आपके पति और पुत्र दोनों ऋण से

हलके हो रहे हैं, फिर आप इतनी व्यथित क्यों होती हैं ?

राम के यह वचन कौशल्या के मोह को बाण की तरह लगे। उन्होंने सोचा—राम ठीक तो कहता है। जब पुत्र-धर्म का पालन करने के लिए उद्यत हो रहा हो तब माता के शोक का क्या कारण है ? ऐसा करना माता के लिए दूषण है। स्त्रीधर्म के अनुसार पति ने जो वचन दिया है, वह स्त्री ने भी दिया है। फिर मुझे शोक क्यों करना चाहिए ?

आज्ञाप्रदान।

इस प्रकार विचार कर कौशल्या ने कहा—वत्स ! मैं तुम्हारा कहना समझ गई। मैं आज्ञा देती हूँ, तुम धर्म पालने के लिए वन को जा सकते हो। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि वन तुम्हारे लिए मङ्गलमय हो। तुम्हारा मनोरथ पूरा हो। तुम अर्थ की सिद्धि और पुनरागमन के लिए जाओ।

पथ सिद्ध हो लक्ष्य सिद्ध हो,
राम ! नाम हो तेरा।
धर्म सिद्ध हो मर्म ऋद्ध हो,
सब मेरे तू मेरा॥

पुत्र ! अभी तक तू नाम से राम है और सच्चा राम बन। अब तेरा नाम सार्थक होगा। तू जगत् के कल्याण में अपना कल्याण और जगत की उन्नति में अपनी उन्नति मानता है। तेरा पक्ष सिद्ध है। तू [illegible]

न होकर अपना लक्ष्य पूर्ण कर।

रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः।

जिसे संसार आदर्श मानता है, जो धर्मात्माओं का आधार है, जिसमें योगीजन निवास करते हैं, वह 'राम' कहलाता है।

संसार अशांति और नाना प्रकार के दुःखों का क्रीड़ा-स्थल है। यहाँ कौन ऐसा पुरुष है जिसने अशांति की काली छाया न देखी हो? जो दुःखों का निशाना न बना हो? महा-पुरुष वह है जो अपनी आत्मा को संसार से अलिप्त रखता है और दूसरों के दुख दूर करता है। राम ऐसा करके ही सब को प्रिय हुए हैं।

राम घर पर ही रहते तो भरत को कोई हानि न पहुँचाते। उन्हें घर रहकर अपना कल्याण करने का उपाय भी मालूम था, जैसे कि भगवान् महावीर बिना तप किए ही केवल ध्यान मात्र से अपना कल्याण कर सकते थे। लेकिन राम अगर वन न जाते और भगवान् महावीर तप न करते तो आपको वह तत्व कहाँ से मिलता जो उनसे मिला है? उस दशा में आप यही कहते कि घर बैठकर जो हो सकता है वही बस है। उससे अधिक तो राम ने और महावीर ने भी नहीं किया। आप इस प्रकार विचार न करें, इसलिए वन को गए थे।

साधारण लोग धर्मवृद्धि का अर्थ धन-सम्पदा का

मिलना मानते हैं। कहावत है—अमुक के पास इतना धन है, इसलिए रामजी राजी हैं। किन्तु धन की वृद्धि धर्म की वृद्धि नहीं है। धर्म की वृद्धि कुछ और ही वस्तु है। सच्ची धर्म-वृद्धि वह है जिसके साथ मर्म-ऋद्धि भी हो। मर्म की जानकारी होना ही धर्म की वृद्धि है। कौशल्या पहले से रो रही थीं, पर अब वह भी आपको विदाई दे रही हैं। इसका कारण यही है कि अब उन्होंने मर्म को जान लिया है। मर्म को जान लेने की ऋद्धि कम नहीं है। कौशल्या के यहाँ राजकीय वैभव की तनिक भी कमी नहीं थी, फिर भी राम के वन-गमन की बात सुनकर वह रोने लगी थी। लेकिन मर्म तक पहुँच जाने पर राम का वन-गमन भी उसे कष्ट नहीं पहुँचा सका। अब देखना चाहिए, कौन-सी ऋद्धि बड़ी है। धन-सम्पदा की ऋद्धि बड़ी है या मर्म जानने की ऋद्धि बड़ी है।

एक आदमी संसार संबंधी समस्त भोग-विलासों की सामग्री प्राप्त होने पर भी रोता है और दूसरा पास में कुछ भी न होने पर भी, घास के बिछौने पर सोता हुआ भी हँसता है। इस भिन्नता का क्या कारण है? इसका एक मात्र कारण यही है कि पहला आदमी मर्म को नहीं जानता और दूसरा मर्म को जानता है। मर्म को जानने वाला प्रत्येक परिस्थिति में संतुष्ट और सुखी रहेगा। संसार का ताप उसकी अन्तरात्मा तक पहुँच नहीं सकता। इसके विपरीत मर्म को न जानने वाला सब कुछ प्राप्त होने पर भी रोता है। इस

प्रकार धन सम्पत्ति की ऋद्धि की अपेक्षा मर्म जानने की ऋद्धि बहुत बड़ी है।

कौशल्या राम से कहती है—हे पुत्र, तुझे मर्म-ऋद्धि प्राप्त हो-तू मर्म को जान जाए और दूसरों को भी मर्म समझा सके। मेरा आशीर्वाद है कि संसार के समस्त प्राणी तेरे हों और तू मेरा हो।

अहा ! कितना सुन्दर आशीर्वाद है ! माँ अपने बेटे को सिखलाती है कि इस विशाल विश्व का प्रत्येक प्राणी तेरा अपना हो। तू सब को अपना आत्मीय समझ ! और तब तू मेरा होगा। लेकिन आज क्या होता है ?

मात कहे मेरा पूत सपूता।
बहिन कहे मेरा भैया॥
घर की जोरु यों कहे।
सब से बड़ा रुपैया॥

बेटा चाहे अधर्म करे, अनीति करे झूठ-कपट का सेवन करे, अगर वह रुपये ले आता है तो अच्छा। बेटा है, नहीं तो नहीं। ऐसा मानने वाले लोग वास्तव में माँ-बाप नहीं किन्तु अपनी सन्तान के शत्रु हैं। संसार में जहाँ पुत्र को पाप करते देखकर प्रसन्न होने वाले मां-बाप मौजूद हैं वहाँ ऐसे मां-बाप भी मिल सकते है जो पुत्र की धार्मिकता की बात सुनकर ही प्रसन्न होते हैं। पुत्र जब कहता है—'आज मेरे ऊपर ऐसा संकट आ गया था। मै अपने शत्रु से इस प्रकार बदला ले

सकता था, फिर भी मैंने धर्म नहीं छोड़ा । मैंने अपने शत्रु की आज इस प्रकार सहायता की । ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होने वाली माँ आज कितनी हैं ? ऐसी माता ही जगत को आनन्द देने वाली है ।

सीता का अन्तर्द्वन्द्व

राम और कौशल्या की बात सीता भी सुन रही थी। वह नीची दृष्टि किये, सलज्ज भाव से वहीं खड़ी थी। माता और पुत्र का वार्त्तालाप सुनकर उसके हृदय में कौन जाने कैसा तूफान आया होगा ! सीता की सासू उसके पति को वन जाने के लिए आशीर्वाद दे रही है, यह देखकर सीता को प्रसन्न होना चाहिए था या दुखी ? आज ऐसी बात हो तो वह कहेगी- यह कैसी अभागिनी सासू है जो अपने बेटे को ही वन में भेज देने के लिये तैयार हो गई है ! मैं समझती थी कि यह वन जाने से रोकेगी पर यह तो उलटा आशीर्वाद दे रही है ! मगर सीता ने ऐसा नहीं सोचा। सीता में कुछ विशेषताएँ थीं और उन्हीं विशेषताओं के कारण राम से भी पहले उनका नाम लिया जाता है । पर आज सीता के आदर्श को अपने हृदय में उतारने वाली स्त्रियाँ कितनी मिलेंगी ? फिर भी भारत वर्ष का सौभाग्य है कि यहाँ के लोग सीता के चरित्र को बुरा नहीं समझते । बुरे से बुरा आचरण करने वाली नारी भी सीता के चरित्र को अच्छा समझती है ।

सीता मन ही मन कहती है—आज प्राणनाथ वन को

जाते हैं। क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी उनके चरणों में आश्रय पा सकूँ?

पति को 'प्राणनाथ' कहने वाली स्त्रियाँ तो बहुत मिल सकती हैं मगर इसका मर्म सीता जैसी विरली स्त्री ही जानती है। पति का वन जाना सीता के लिए सुख की बात थी या दुःख की? यों तो पत्नी को छोड़कर पति का जाना पत्नी के लिए दुःख की बात ही है, पर सीता को दुःख का अनुभव नहीं हो रहा है। उसकी एक मात्र चिन्ता यह है कि क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी अपने पतिदेव की सेवा में रह सकूँ? सीता के पास विचार की ऐसी सुन्दर सम्पत्ति थी। यह सम्पत्ति सभी को सुलभ है। जो चाहे, उसे अपना सकता है। अपनी सेवा धर्म को दे सकता है। जो ऐसा करेगा वही सुकृतशाली होगा।

सीता सोचती है—मेरे स्वामी देवर को राज्य देकर वन जा रहे हैं। वे माता की इच्छा और पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए वन जाते हैं, लेकिन हे सीता! तेरा भी कुछ सुकृत है या नहीं? क्या तेरा इतना सुकृत है कि तेरा और प्राणनाथ का साथ हो सके? तू ने प्राणनाथ के गले में वरमाला डाली है, पति के साथ विवाह किया है—उनके चरणों में अपने को अर्पित कर दिया है, इतने दिन उनके साथ संसार का सुख भोगा है, तो तेरा इतना सुकृत नहीं है कि वन में जाकर तू उनका साथ दे सके!

सीता सोचती है—'मैं राम के साथ भोग-विलास करने के लिए नहीं व्याही गई हूँ। मेरा विवाह राम के धर्म के साथ हुआ है। ऐसी दशा में क्या अकेले राम ही वन जाकर धर्म करेंगे ? क्या मैं उस धर्म में सहयोग देने से वञ्चित रहूँगी ? अगर मैं शरीर सहित प्राणनाथ के साथ न रह सकी तो मेरे प्राण अवश्य ही उनके साथ रहेंगे। मुझ में इतना साहस है कि अपने प्राणों को शरीर से अलग कर सकती हूँ। अगर राजमहल के कारागार में मुझे कैद किया गया तो निश्चित रूप से मेरा शरीर—निर्जीव शरीर ही कैद होगा। प्राण तो प्राणनाथ के पास उड़ कर पहुँचे विना नहीं रहेंगे।'

प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है। मुझे अभी प्राप्त करनी होगी। सासूजी की अनुमति लिए विना मेरा जाना उचित नहीं है। सासूजी से मैं अनुमति लूँगी। जब उन्होंने पुत्र को अनुमति दे दी है तो पुत्रवधू को भी देंगी ही।

मनुष्य को अपना चरित्र सुधारने के लिए किसी उत्कृष्ट चरित्र का अवलम्बन लेना पड़ता है। जैसे दुर्बलता की दशा में लकड़ी का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है और आँख कमजोर होने पर चश्मा की सहायता ली जाती है, इसी तरह अपना चरित्र सुधारने के लिए किसी महापुरुष के चरित्र का सहारा लिया जाता है। लकड़ी लेना या चश्मा लगाना कोई गर्व की बात नहीं है, बल्कि कमजोरी का

लक्षण है। उसी प्रकार चरित्र का आश्रय लेना भी एक प्रकार की कमजोरी ही है। फिर भी काम न चल सकने पर लकड़ी और चश्मा रखना बुराई में नहीं गिना जाता। इसी तरह आत्मा किसी की सहायता के बिना ही आप ही अपना कल्याण कर सके तो अच्छा ही है। अगर इतना सामर्थ्य न हो तो किसी आदर्श चरित्र का आश्रय लेना बुरा नहीं है। जो ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं है और जिसे ज्यादा अवकाश भी नहीं मिलता, वह अगर सीता-राम के चरित को अपने हृदय में उतार ले तो उसे वही लाभ मिल सकता है जो महापुरुषों को मिलता है। शास्त्र के अक्षर चश्मा लगाने वाला भी देखता है और जिसे चश्मा लगाने की आवश्यकता नहीं वह भी देखता है। कोई कैसे भी देखे, देखता तो शास्त्र के अक्षर है और उन्हें देख कर लाभ उठाता है। वह लाभ दोनों उठा सकते हैं। इसी प्रकार चरित्र का अवलम्बन लेकर साधारण मनुष्य भी वही लाभ उठा सकता है जो महापुरुषों को प्राप्त होता है।

सीता सोचती है—प्राणनाथ का वन जाना मेरे लिए गौरव की बात है। उनके विचार इतने ऊँचे और उनकी भावना इतनी पवित्र है; इससे प्रगट है कि उनमें परमात्मिक गुण प्रगट हो रहे हैं। मैंने विवाह के समय इन्हें दूसरे रूप में ..। था, आज दूसरे ही रूप में देख रही हूँ।

सीता का उच्च चरित्र

सीता के चरित्र को किस प्रकार देखना चाहिए, यह बात कवि ने बतलाई है। वह कहता है—पति ही व्रत नियम है. ऐसा व्रत वही स्त्री लेती है जिसके अन्तःकरण में पति के प्रति पूर्ण प्रेम होता है। काम तभी होता है जब प्रेम हो। धर्म का आचरण भी प्रेम से किया जाता है। आपका प्रेम कच्चा है या सच्चा है, यह परीक्षा करना हो तो पतिव्रता के प्रेम के साथ अपने प्रेम की तुलना कर देखो। भक्ति के विषय में पतिव्रता का उदाहरण दिया भी जाता है। कवि कहता है—पतिव्रताओं में भी सीता सरीखी पतिव्रता दूसरी शायद ही हुई हो। सीता के पतिव्रत से-पतिप्रेम से अपना प्रेम तोलो। सीता ने उच्च आचरण करके सतीशिरोमणि की पदवी पाई है। सीता सरीखी दो-चार सतियाँ अगर संसार में हों तो संसार का उद्धार हो जाय। कहावत है—एक सती और नगर सारा। सुभद्रा अकेली थी पर उसने क्या कर दिखाया था? उसने सारे नगर का दुःख दूर कर दिया था।

सब स्त्रियाँ सीता नहीं बन सकतीं, इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि जब सीता सरीखी बनना कठिन है तो फिर उस ओर प्रयत्न ही क्यों किया जाय? जहाँ पहुँच ही नहीं सकते वहाँ पहुँचने के लिए दो-चार कदम बढ़ाने की भी क्या आवश्यकता है? ऐसा विचार करने से लाभ के बदले

लक्षण है। उसी प्रकार चरित्र का आश्रय लेना भी एक प्रकार की कमजोरी ही है। फिर भी काम न चल सकने पर लकड़ी और चश्मा रखना बुराई में नहीं गिना जाता। इसी तरह आत्मा किसी की सहायता के विना ही आप ही अपना कल्याण कर सके तो अच्छा ही है। अगर इतना सामर्थ्य न हो तो किसी आदर्श चरित्र का आश्रय लेना बुरा नहीं है। जो ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं है और जिसे ज्यादा अवकाश भी नहीं मिलता, वह अगर सीता-राम के चरित को अपने हृदय में उतार ले तो उसे वही लाभ मिल सकता है जो महापुरुषों को मिलता है। शास्त्र के अक्षर चश्मा लगाने वाला भी देखता है और जिसे चश्मा लगाने की आवश्यकता नहीं वह भी देखता है। कोई कैसे भी देखे, देखता तो शास्त्र के अक्षर है और उन्हें देख कर लाभ उठाता है। वह लाभ दोनों उठा सकते हैं। इसी प्रकार चरित्र का अवलम्बन लेकर साधारण मनुष्य भी वही लाभ उठा सकता है जो महापुरुषों को प्राप्त होता है।

सीता सोचती है—प्राणनाथ का वन जाना मेरे लिए गौरव की बात है। उनके विचार इतने ऊँचे और उनकी भावना इतनी पवित्र है, इससे प्रगट है कि उनमें परमात्मिक गुण प्रगट हो रहे हैं। मैंने विवाह के समय इन्हें दूसरे रूप में था, आज दूसरे ही रूप में देख रही हूँ।

सीता का उच्च चरित्र

सीता के चरित्र को किस प्रकार देखना चाहिए, यह बात कवि ने बतलाई है। वह कहता है—पति ही व्रत नियम है, ऐसा व्रत वही स्त्री लेती है जिसके अन्तःकरण में पति के प्रति पूर्ण प्रेम होता है। काम तभी होता है जब प्रेम हो। धर्म का आचरण भी प्रेम से किया जाता है। आपका प्रेम कच्चा है या सच्चा है, यह परीक्षा करना हो तो पतिव्रता के प्रेम के साथ अपने प्रेम की तुलना कर देखो। भक्ति के विषय में पतिव्रता का उदाहरण दिया भी जाता है। कवि कहता है—पतिव्रताओं में भी सीता सरीखी पतिव्रता दूसरी शायद ही हुई हो। सीता के पतिव्रत से-पतिप्रेम से अपना प्रेम तोलो। सीता ने उच्च आचरण करके सतीशिरोमणि की पदवी पाई है। सीता सरीखी दो-चार सतियाँ अगर संसार में हों तो संसार का उद्धार हो जाय। कहावत है-एक सती और नगर सारा। सुभद्रा अकेली थी पर उसने क्या कर दिखाया था? उसने सारे नगर का दुःख दूर कर दिया था।

सब स्त्रियाँ सीता नहीं बन सकतीं, इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि जब सीता सरीखी बनना कठिन है तो फिर उस ओर प्रयत्न ही क्यों किया जाय? जहाँ पहुँच ही नहीं सकते वहाँ पहुँचने के लिए दो-चार क़दम बढ़ाने की भी क्या आवश्यकता है? ऐसा विचार करने से लाभ के बदले

हानि ही होगी। आप खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं, ओढ़ते हैं। मगर आपसे अच्छा खाने-पीने और पहनने ओढ़ने वाले भी हैं, या नहीं? फिर आप क्या यह सब करना छोड़ देते है? अक्षर मोती जैसे सुन्दर लिखने चाहिए, मगर ऐसा न लिख सकने वाला क्या अक्षर लिखना ही छोड़ देता है? इसी तरह सीता-सी सती बनना अगर कठिन है तो क्या सतीत्व ही छोड़ देना उचित है? सीता की समता न करने पर भी सती बनने का उद्योग छोड़ना नहीं चाहिए। निरंतर अभ्यास करने और सीता का आदर्श सामने रखने से कभी सीता के समान हो जाना सम्भव है।

सती स्त्रियों में ऊंची होती है, लेकिन नीच स्त्री कैसी होती है, यह भी कवि ने बतलाया है। कवि कहता है—खाने पीने और पहनने-ओढने के समय प्राणनाथ-प्राणनाथ करने वाली और समय पड़ने पर विपरीत आचरण करने वाली स्त्री नीच कहलाती है। ऊपर से पतिव्रता का दिखावा करना और भीतर कुछ और रखना नीचता है। इस प्रकार की नीचता का कभी न कभी भण्डाफोड़ हो ही जाता है। कदाचित् भण्डाफोड़ न हो तो भी उसके कर्म अपना फल देने से कभी नहीं चूकते। नीच स्त्रियां भीतर-बाहर कितनी भिन्नता रखती हैं, यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है:—

एक ठाकुर था। वह अपनी स्त्री की अपने मित्रों के सामने बहुत प्रशंसा किया करता था। वह कहा करता था—

संसार में सती स्त्रियाँ तो और भी मिल सकती हैं पर मेरी स्त्री जैसी सती दूसरी नहीं है। कभी-कभी वह सीता, अंजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ कहता। उसके मित्रों में कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक बार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नहीं हैं। इसी कारण आप ऐसा कहते हैं। तिरिया-चरित को समझ लेना साधारण बात नहीं है।

ठाकुर ने अपना भोलापन नहीं समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नहीं?

ठाकुर—परीक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरी स्त्री मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली बिना पानी जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नहीं रह सकती।

समालोचक—आपकी बातों से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे तब सच्चाई मालूम होगी।

ठाकुर—अच्छी बात है, कहो किस तरह परीक्षा की जाय?

समालोचक—आज आप अपनी स्त्री से कहिए कि मुझे पाँच-सात दिन के लिए राजकीय काम से बाहर जाना है।

यह कह कर आप बाहर चले जाना और फिर छिपकर घर में बैठ रहना। उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है! आप अपने पीछे ही स्त्री की परीक्षा कर सकते हैं। मौजूदगी में नही।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। स्त्री से उसने कहा—तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता, मगर लाचारी है। कुछ दिनों के लिए तुम्हें छोड़कर बाहर जाना पड़ेगा। राजा का हुकम माने बिना छुटकारा नहीं।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्य के साथ कहा—क्या हुकम हुआ है? कौन-सा हुकम मानना पड़ेगा?

ठाकुर—मुझे पॉच-सात दिन के लिए बाहर जाना है।

ठकुरानी—पॉच-सात दिन! बाप रे! इतने दिन तुम्हारे बिना कैसे निकलेंगे! मुझे तो भोजन भी नहीं रुचेगा।

ठाकुर—कुछ भी हो, जाना तो पड़ेगा ही।

ठकुरानी—इतने दिनों में तो मै छटपटा कर मर ही जाऊँगी। आप राजा से कहकर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते!

ठाकुर—लेकिन ऐसा करना ठीक नहीं होगा। लोग कहेंगे, स्त्री के कहने में लगा है। मै यह कहूँगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नहीं छूटता? ऐसा कहना तो बहुत बुरा होगा।

ठकुरानी—हॉ, ऐसा कहना तो ठीक नहीं होगा। खैर,

जो होगा देखा जाएगा।

इतना कहकर ठकुरानी आँसू बहाने लगी। उसने अपनी दासी से कहा--दासी, जा। कुछ खाने-पीने के लिए बना दे, जो साथ में ले जाया जा सके।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बातें सुनकर ठाकुर सोचने लगा—मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम है!

ठाकुर घोड़ी पर सवार होकर कोस दो कोस गया। घोड़ी ठिकाने बाँधकर वह लौट आया और छिपकर घर में बैठ गया।

दिन व्यतीत हो गया। रात हो गई। ठकुरानी ने दासी से कहा—'ठाकुर गया गाम, म्हने नी भावे धान।' अभी रात ज्यादा है। जा, पास के अपने खेत से दस-पाँच साँठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो।' दासी ने सोचा—'ठीक है। मुझे भी हिस्सा मिलेगा।' वह गई और गन्ने तोड़ लाई। ठकुरानी गन्ना चूसने लगी।

ठाकुर छिपा-छिपा देख रहा था। उसने सोचा—मेरे वियोग के कारण इसे अन्न नहीं भाता! मुझ पर इसका कितना गाढ़ा प्रेम है।

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही। गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली—अभी रात बहुत है। गन्ना चूसने से भूख लग आई है। थोड़े नरम-नरम बाफले तो बना डाल। देख, घी जरा अच्छा लगाना हो!

दासी ने सोचा—चलो ठीक है। मुझे भी मिलेंगे। दासी ने बाफले बनाये और खूब घी मिलाया। ठकुरानी ने बाफले खाए। खाने के थोड़ी देर बाद वह कहने लगी-दासी, बाफले तूने बनाये तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नहीं लगे। यह खाना कुछ भारी भी है। थोड़ी नरम-नरम खिचड़ी बना डाल।

दासी ने वही किया। खिचड़ी खाकर ठाकुरानी बोली-तीन पहर रात बीत गई। अभी एक पहर और बाकी है। थोड़ी लाई (धानी) सेक ला। उसे चबाते-चबाते रात बिताये। दासी लाई सेक लाई। ठकुरानी खाने लगी।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख-सुन रहा था। वह सोचने लगा—पहली ही रात में यह हाल है तो आगे क्या-क्या नहीं हो सकता! अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह अपने घोड़े के पास लौट आया। घोड़े पर सवार होकर घर आ पहुँचा।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—'होकम' पधार गया है। ठकुरानी ने कहा—'होकम' पधार गया! अच्छा हुआ।

ठाकुर से वह बोली--अच्छा हुआ, आप पधार गये। मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर—तुम्हारी तकदीर अच्छी थी, इसी से मैं आज बच गया। बड़े संकट में पड़ गया था।

ठकुरानी—ऐं, क्या संकट आ पड़ा था ?

ठाकुर—घोड़े के सामने एक भयंकर सांप आ गया था। मै आगे बढ़ता तो सांप मुझे काट खाता। मै पीछे की ओर भाग गया, इसी से बच गया।

ठकुरानी—आह ! सांप कितना बड़ा था ?

ठाकुर—अपने पास के खेत के गन्ने जितना बड़ा भयानक था।

ठकुरानी—वह फन तो नही फैलाता था ?

ठाकुर—फन का क्या पूछना है ! उसका फन बाफला जैसा बड़ा था !

ठकुरानी—वह दौड़ता भी था ?

ठाकुर—हॉ, दौड़ता क्यों नहीं था ! ऐसा दौड़ता था जैसे खिचड़ी में घी।

ठकुरानी—वह फुँकार भी मारता होगा ?

ठाकुर—हॉ, ऐसे जोर का फुँकार मारता था जैसे कड़ेले में पड़ी हुई धानी सेकने के समय फूटती है !

ठाकुर की बातें सुनकर ठकुरानी सोचने लगी—यह चारों बातें मुझ पर ही घटित हो रही हैं ! फिर भी उसने कहा—चलो, मेरे भाग्य अच्छे थे कि आप उस नाग से बच-कर घर लौट आये !

ठाकुर—ठकुरानी, समझो। मै उस नाग से बच निकला मगर तुम सरीखी नागिन से बचना कठिन है।

ठकुरानी—क्या मै नागिन हूँ! अरे वाप रे! मै नागिन हो गई? भगवान् जानता है, सव देव जानते है। मैंने क्या किया जो मुझे नागिन वनाते हैं!

ठाकुर—मै नहीं वनाता, तुम स्वयं वन रही हो! मै अपने मित्रों के सामने तुम्हारी तारीफ वघारता था, लेकिन सव व्यर्थ हुआ!

ठकुरानी—तो वताते क्यों नहीं, मैंने ऐसा क्या किया है? मै आपके विना जी नहीं सकती और आप लांछन लगा रहे हैं!

ठाकुर—वस, रहने दो। मै अव वह नहीं जो तुम्हारी मीठी वातों में आजाऊँ। तुम मुझसे कहा करती थीं-तुम्हारे वियोग मे मुझे खाना नहीं भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया!

ठकुरानी की पोल खुल गई। सारांश यह है कि संसार में इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रियाँ भी है और पतिव्रताएँ भी हैं। पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रियाँ भी मिल सकती है और मायाविनी भी मिल सकती है। संसार में अच्छाई भी है और वुराई भी है। प्रश्न यह है कि हमें क्या ग्रहण करना चाहिए? किसको अपनाने से हमारा जीवन उन्नत और पवित्र वन सकता है?

आज अगर कोई स्त्री सीता नही वन सकती तो भी लक्ष्य

नो वही रखना चाहिए। अगर कोई अच्छे अक्षर नहीं लिख सकता तो साधारण ही लिखे। लिखना छोड़ बैठने से काम कैसे चलेगा ? यही बात पुरुषों के लिए कही जा सकती है। पुरुषों के सामने महान्-आत्मा राम का आदर्श है। उन्हें राम की तरह उदार, गंभीर, मातृ-पितृ सेवक, बन्धु-प्रेमी और धार्मिक बनना है।

सीता पतिप्रेम के शीतल जल में स्नान कर रही है। सीता में कैसा पतिप्रेम था, यह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि क्या जैन और क्या अजैन, सब ने अपनी शक्ति भर सीता की गुण गाथा गाई है। मेंहदी का रंग चमड़ी पर चढ़ जाता है और कुछ दिनों तक वह चमड़ी उतारे बिना नहीं उतर सकता। मगर सीता का पतिप्रेम इससे भी गहरा था। सीता का प्रेम इतना अन्तरंग था कि वह चमड़ी उतारने पर भी नहीं उतर सकता था और वह आजीवन के लिए था-थोड़े दिनों के लिए नहीं।

कवियों ने कहा है कि सीता, राम के रंग में रंग गई थीं। पर राम में अब कौन-सा नवीन रंग आया है, जिसमें सीता रंग गई है ?

जिस समय सीता के स्वयवर-मंडप में सब राजाओं का पराक्रम हार गया था, सब राजा निस्तेज हो गए थे और जब सब राजाओं के सामने राम ने अपना पराक्रम दिखलाया था, उस समय राम के रस में सीता का रचना ठीक था।

पर उस समय के रग में स्वार्थ था । इसलिए उस समय के लिए कवि ने यह नहीं कहा कि सीता राम के रग में रग गई। मगर इस समय राम ने सब वस्त्र उतार दिये हैं, वल्कल वस्त्र धारण किये हैं, फिर सीता राम के रग मे क्यों रंगी है? अपने पति के असाधारण त्याग को देखकर और संसार के कल्याण के लिए उन्हे वनवास करने को उद्यत देखकर सीता के प्रेम मे वृद्धि ही हुई। वह राम के लोकोत्तर गुणों पर मुग्ध हो गई। इसी से कवि ने कहा है कि सीता राम के रग मे सराबोर हो गई।

इस समय सीता की एक मात्र चिन्ता यही थी कि जैसे प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है, वैसे मुझे मिल सकेगी या नहीं ?

वास्तव में वही स्त्री पतिप्रेम मे अनुरक्त कहलाती है जो पति के धर्मकार्य मे सहायक होती है। गहने-कपड़े पाने के लिए और दूसरे भोग-विलास करने के लिए तो सभी स्त्रियॉ प्रीति प्रदर्शित करती हैं मगर संकट के समय, पति के कंधे से कंधा भिड़ाकर चलने वाली स्त्री सराहनीय है। गिरते हुए पति को उठाने वाली और उठे हुए पति को आगे बढ़ाने वाली स्त्री पतिपरायणा कहलाती हैं।



कौशल्या और सीता।



रामचन्द्र ने कौशल्या को प्रणाम किया और विदा लेने लगे। तब पास ही खड़ी सीता भी कौशल्या के पैरों में गिर पड़ी। सीता को पैरों में गिरी देख कौशल्या समझ गई कि सीता भी उस पींजरे से बाहर जाना चाहती है जिसे राम ने तोड़ा है।

फिर कौशल्या ने सीता से कहा—वहू, तुम चचल क्यों हो ?

सीता—माता! ऐसे समय चंचलता होना स्वाभाविक ही है। आपके चरणों की सेवा करने की मेरी बड़ी साध थी। वह मन की मन में ही रह गई। कौन जाने, अब कब आपके दर्शन होंगे ?

कौशल्या—क्या तुम भी वन जाने का मनोरथ कर रही हो ?

सीता—हाँ, माता! यही निश्चय है। जिसके पीछे यहाँ आई हूँ, जब वही वन जा रहे हैं तो मै यहाँ किस प्रकार रहूँगी ? जब पति वन मे हों तो पत्नी राजभवन मे रहकर उनकी अर्धांगिनी कैसे कहला सकती है ?

सीता की बात से कौशल्या की आँखें भर गईं। राम तो ठीक, पर यह राजकुमारी सीता वन में कैसे रहेगी? फिर सीता सरीखी गुणवती वधू के वियोग से सासू को शोक होना स्वाभाविक ही था। कौशल्या ने सीता का हाथ पकड़ कर, अपनी ओर खींच कर उसे बालक की तरह अपनी गोद में ले लिया। अपनी आँखों से वह सीता पर इस तरह अश्रुजल गिराने लगी, जैसे उसका अभिषेक कर रही हो। थोड़ी देर बाद कौशल्या ने कहा—पुत्री, क्या तू भी मुझे छोड़ जाएगी? तू भी मुझे अपना वियोग देगी? राम को अपना धर्म पालना है, उन्हें अपने पिता के वचन की रक्षा करनी है, इसलिए वे वन को जाते हैं। पर तुम क्यों जाती हो? तुम पर क्या ऋण है?

सीता इस प्रश्न का क्या उत्तर देती? वह यही उत्तर दे सकती थी कि मै राम के रंग में रंगी हूँ। पति जिस ऋण को चुकाने के लिए वन जाते हैं, वह क्या अकेले उन्हीं पर है? नहीं, वह मुझ पर भी है। जब मै उनकी अर्धांगिनी हूँ तो पति पर चढ़ा ऋण पत्नी पर भी है। पर सीता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मौन रही।

कौशल्या समझा-बुझा कर सीता का राम-रंग उतारना चाहती हैं पर वह सीता जो ठहरी। रंग उतर जाता तो सीता, सीता ही नहीं रहती। दूसरी कोई स्त्री होती तो वह इस अवसर से लाभ उठाती। वह कहती—मै क्या करूँ, मैं

जाने को तैयार थी मगर सासूजी नहीं जाने देतीं। सासू की आज्ञा मानना भी तो बहू का धर्म है! पर सीता ऐसी स्त्रियों में नहीं थी।

कौशल्या ने सीता से कहा—बहू, विदेश प्रिय नहीं है। प्रवास अत्यन्त कष्टकर होता है, फिर वन का प्रवास तो और भी अधिक कष्टमय है। तू किसी दिन पैदल नहीं चली। अब कॉटों से परिपूर्ण पथ पर तू कैसे चल सकेगी? तेरे सुकुमार पैर कंकरों और कॉटों का आघात कैसे सहेंगे?

आप सीता को कोई गुड़िया न समझें, जो चार कदम भी पैदल नहीं चल सकती। उसके चरित पर विचार करने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वह सुख के समय पति के पीछे रही थीं और दुःख में पति के आगे रही थीं। अतएव उन्हें कायर नहीं समझना चाहिए।

सब ही बाजे लश्करी,
सब ही लश्कर जाय।
शैल धमाका जो सहै,
सो जागीरी खाय ॥
गलियारा फिरता फिरे,
बाध ढाल तलवार।
शूरा तब ही जानिये,
रण बाजे झकार ॥

स्त्रियॉ कहती हैं—हमें कायर तब समझना जब हम दुख

पड़ने पर आगे न रहें। पति के आगे रहने वाली स्त्रियाँ भारत में कम नहीं हुई हैं। सलूंबर की रानी ने तो पति से पहले ही अपना सिर दे दिया था। उसने कहा था—आपको मेरे शरीर पर मोह है, तो पहले मेरा ही सिर ले लो।' जो वीरांगना हँसती-हँसती अपना सिर दे सकती है, उसे कायर कहने का साहस कौन कर सकता है? वीरांगना कहती है—हम सुख के समय ही कायर और सुकुमार हैं। सुख के समय ही सवारी पर बैठ कर चलती हैं। लेकिन दुःख के समय हम पति से आगे रहती हैं। पति जो कष्ट उठाता है, उससे अधिक कष्ट उठाने के लिए तैयार रहती हैं। अगरवत्ती की सुगंध जलने पर ही मालूम होती है!

लोग स्त्री को 'अबला' कहते हैं। पर वास्तव में स्त्री अबला है अथवा उसे अबला कहने वाले पुरूष ही निर्बल है, यह कौन जाने? खेद की बात यह है कि स्त्रियाँ भी अपने को अबला समझ बैठी हैं। वास्तव में स्त्री अबला नहीं सबला है, प्रबला है। आज भी जो काम स्त्रियां कर सकती हैं वह पुरुष नहीं कर सकते या बड़ी कठिनाई से कर सकते हैं। कहावत है–'बाप राजा और मां भिखारिन।' राजा बाप को भी अपने बेटे के पालने में कठिनाई होगी पर भिखारिन मां सहज ही अपने लड़के को पाल लेती है। ऐसा होते हुए भी लोग अपनी माता को निर्बल समझते हैं! माता को निर्बल समझने वाले यह क्यों नहीं समझते कि माता निर्बल होती

तो वे स्वयं कैसे सबल हो सकते थे ?

कौशल्या सीता को कोमलांगी समझ कर वन जाने से रोकना चाहती हैं। वह कहती हैं—'हे राम, मै तुमसे और सीता से कहती हूँ कि सीता वन के योग्य नही है। मैंने सीता को अमृत की जड़ी की तरह पाला है। वह वन रूपी विषकंटक में जाने के योग्य नहीं है। यह राजा जनक के घर पल कर मेरे घर में आई है। जिसने ज़मीन पर पैर तक नही रक्खा वह वन में पैदल कैसे चलेगी ? यह किरात-किशोरी अर्थात् भील की लड़की नहीं है और न तापस-नारी है, जो वन में रह सके। दाख का कीड़ा पत्थर में नहीं रह सकता। यह मेरी नयन-पुतली है' जो तनिक भी आघात नहीं सह सकती।'

कौशल्या का कथन चाहे ममता के स्रोत्र से निकला हो मगर सीता के लिए वह परीक्षा है। अब सीता के राम-रस की कसौटी हो रही है।

अगर आपको अच्छा खाना-पीना मिले तो आप राम-रस को मीठा मानेंगे ? कहीं राम-रस की बदौलत जंगल में भटकने का मौका आ जाय और कंकर-पत्थर वाली ज़मीन पर सोना पड़े तो आपको वही खारा लगने लगेगा। धन्य है सीता, जिसे राम-रस को छोड़कर संसार का और कोई भी रस रुचिकर नहीं है। उसके लिए राम-रस में जो अद्भुत मिठास है वह अमृत में भी नहीं। यह राम-रस इसके लिए

सदैव एक-रस है—भवन में भी मीठा और वन में भी मीठा।

कौशल्या कहती हैं—जंगल बड़ा दुर्गम प्रदेश है। यहाँ थोड़ी दूर जाने पर भी जल की झारी वाली दासी साथ रहती है, वहाँ दासी कहाँ? वहाँ तो प्यास लगने पर पानी मिलना भी कठिन है। जब गरम हवा चलेगी और ऊपर से धूप गिरेगी तब मुँह सूख जायगा। उस समय पानी कहाँ सुलभ होगा? जंगल में पड़ाव नहीं है कि पानी मिल सके। इस प्रकार तू प्यासके मारे मरेगी और राम की परेशानी बढ़ जायगी। यहाँ तुझे मेवा-मिष्ठान्न मिलता है, वहां कड़ुवे-खट्टे फल भी सुलभ नहीं होंगे। सीता, तू भूख-प्यास आदि का यह भयंकर कष्ट सहन कर सकेगी।

कौशल्या कहती है—जङ्गल में बेहद सर्दी-गर्मी पड़ती है। मुनि के लिए कहा जाता है—

शीत पड़े कपि मद झरे,
दाझै सब वनराय।
ताल तरंगिनि के निकट,
ठाढ़े ध्यान लगाय।
वे गुरु मेरे उर बसो।

इस प्रकार जिनकल्पी महात्माओं का उदाहरण देकर कौशल्या कहती है—वन में कभी-कभी ऐसा पाला पड़ता है कि बन्दर का भी मद झर जाता है और वन का वन जल कर सूख जाता है। वहाँ न महल है, न गरम कपड़े हैं और न

सिगड़ी का ताप है। चलते-चलते जहां रात हो गई वहीं बसेरा करना पड़ता है।

'यही नहीं, जंगल में भयानक हिंसक जानवर भी होते हैं। रीछ, चीता, बाघ, सिंह वगैरह के भयंकर शब्दों को तू कैसे सुन सकेगी ? तू ने कभी कठोर शब्द तो सुना ही नहीं है।'

सीता सासूजी की सब बातें सुनकर तनिक भी विचलित नहीं हुई। उसने सोचा कि यह तो मेरे राम-रस की परीक्षा हो रही है। अगर इसमें मै उत्तीर्ण हुई तो मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।

सीता के शरीर पर हाथ फेर कर कौशल्या कहने लगी—'देखती नहीं, तेरा शरीर फूल-सा कोमल है। तू बचपन से कोमल शय्या पर सोई है। लेकिन वन में शय्या कहाँ ? धरती पर सोने में तुझे कितना कष्ट होगा ? उस समय राम के लिए तू भार हो जाएगी। परदेश में स्त्रियाँ, पुरुषों के लिए भार रूप हो जाती हैं। फिर यह तो वन का प्रवास है। स्त्रियाँ घर में ही शोभा देती हैं। जंगल में भटकना उनके बूते का नहीं है।'

माता कौशल्या की बात का राम ने भी समर्थन किया। वह मुस्किराते हुए बोले—माता, आप ठीक कहती हैं। वास्तव में जानकी वन जाने योग्य नहीं है।

माता के सामने जानकी के विषय में कुछ कहते हुए राम लज्जित तो हुए लेकिन आपत्तिकाल में सर्वथा चुप भी नहीं

रह सकते थे। माता-पिता की मर्यादा की रक्षा करना आदर्श पुत्र का कर्त्तव्य है। किन्तु विकट प्रसग पर उस मर्यादा को कुछ संकीर्ण करना ही पड़ता है। जो काम साधारण अवसर पर अच्छा नहीं समझा जाता वही विशिष्ट अवसर पर बुरा भी नहीं माना जाता। विवाह के समय वर सबके समक्ष वधू का पाणिग्रहण करता है, पर दूसरे समय में ऐसा करना मर्यादा-हीनता समझा जाता है।

राम सीता से कहने लगे—सुकुमारी! वैसे तो मैं तुम्हे विलग नहीं करना चाहता मगर मै मातृभक्त हूँ। अतएव मैं कहता हूँ कि तुम्हें घर पर रहकर माता की सेवा करनी चाहिए। मैंने तुम्हें जितना समझ पाया है, उसके आधार पर कह सकता हूँ कि तुम शक्ति और सरस्वती हो। मै तुम्हारी शक्ति को जनता हूँ। इसलिए तुम घर रहो। मेरे वियोग के कारण माता जब दुःखी हों तो उन्हें सान्त्वना देकर शान्त करना। मुझ पर पिता का ऋण है, इसलिए मेरा वन जाना आवश्यक है। तुम्हारे ऊपर कोई ऋण नहीं है, अतएव तुम्हारा जाना आवश्यक नहीं। इसके अतिरिक्त मेरी इच्छा भी यही है कि तुम घर रहोगी तो स्वयं सुखी रहोगी और माता भी सुखी रह सकेगी। अगर तुम मेरी सेवा के लिए वन जाना चाहती हो तो माता की सेवा होने पर मै अपनी सेवा मान लूँगा। इतने पर भी हठ करोगी तो कष्ट ही उठाना पड़ेगा। हठ करने वाले को सदा कष्ट ही भोगना पड़ता है। इसलिए

तुम मेरी और माता की बात मान जाओ। वनवास कोई साधारण बात नहीं है। वन में बड़े-बड़े कष्ट हैं। हमारा शरीर तो वज्र के समान है। वैरियों के सामने युद्ध करके हम मज़बूत हो गए हैं। लेकिन तुमने कभी घर से बाहर पैर भी रक्खा है? अगर नहीं, तो मेरी समता मत करो। वन में भूख-प्यास, सर्दी गर्मी आदि के दुःख अभी माता बतला चुकी हैं। मै अपने साथ एक भी पैसा नहीं ले जा रहा हूँ कि उससे कोई प्रबंध कर सकूँगा। राजा का कोई काम न करना फिर भी राज्य की सम्पत्ति का उपयोग करना मै उचित नहीं समझता। इसलिए मै राज्य का एक भी पैसा नहीं ले जा रहा हूँ। इस स्थिति में तुम्हारा चलना सुविधा-जनक न होगा।

मैंने वल्कल-वस्त्र पहने हैं। वन जाकर मै अपने जीवन की रक्षा के लिए सात्विक साधन ही काम में लूँगा। मै वन-फल खाकर भूमि पर सोऊँगा। वृक्ष की छाया ही मेरा घर होगी या कोई पर्णकुटी बना कर कहीं रहूँगा। तुम यह सब कष्ट सह नहीं सकोगी।

राम और सीता।

राम बड़ी दुविधा में पड़े हैं। एक ओर सीता के प्रति ममता के कारण उसके कष्टों की कल्पना करके, और माता को अकेली न छोड़ जाने के उद्देश्य से वह सीता को साथ

नहीं ले जाना चाहते, दूसरी ओर सीता की पति-परायणता देख और पतिवियोग उसके लिए असह्य होगा यह सोच कर वे उसे छोड़ जाना भी नहीं चाहते। फिर भी वे यह चाहते हैं कि सीता वन के कष्टों के विषय में धोखे में न रहे। इसी लिए उन्होंने सारे कष्टों को सीता के सामने रख दिया।

यही बात शास्त्रों में पाई जाती है। जब कोई पुत्र दीक्षा लेने की इच्छा से माता-पिता के सामने आता और उनसे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा चाहता था तो माता-पिता दीक्षा के विरोधी न होने पर भी दीक्षा के कष्टों को विस्तार के साथ पुत्र के सामने प्रकट कर देते थे। इसका उद्देश्य यह होता था कि पुत्र किसी प्रकार भ्रम में न रहे। उसे बाद मे पछतावा न करना पड़े, कि हाय, मै क्यों इस मुसीबत में पड़ गया! ऐसा जानता तो मैं साधु बनता ही क्यों? माता-पिता ऐसा न करें तो माता या पिता के नाते उनका जो कर्त्तव्य है, उससे वे गिर जाएँ! इस कारण माता-पिता संयम-जीवन की सब कठिनाइयाँ पहले ही समझा देते थे। सब बाते पहले समझ कर संयम लेने वाला धोखे में नहीं रहता और बिना धोखे के संयम लेने में ही उसका महत्व है। 'एक घड़ी की गोचरी और सात घड़ी का राज्य' इस प्रकार की लुभावनी बातें कहकर संयम की ओर आकर्षित करने से मनुष्य आगे चल कर ठीक संयम नहीं भी पाल सकता।

दीक्षार्थी की माता उसे समझाती थीं—अभी तो भूख

लगते ही भोजन मिल जाता है और इच्छानुसार मिल जाता है, मगर संयम लेने पर भूख-प्यास की पीड़ा सहनी होगी और अरुचिकर आहार से भी जीवनयात्रा का निर्वाह करना पड़ेगा। भोजन कभी मिलेगा, कभी नहीं मिलेगा। मिलेगा भी तो कभी समय पर नहीं मिलेगा। अगर ऐसे कष्ट सहन करने की क्षमता हो तो संयम ग्रहण करो, अन्यथा मत ग्रहण करो। इस प्रकार संयम लेने वाले की माता पहले ही चेतावनी दे देती थी। कौशल्या भी सीता को वन में होने वाले कष्ट स्पष्ट समझा रही हैं।

सीता-राम ने भी बड़ा व्युत्सर्ग या बलिदान किया है। कहा जाता है कि बलिदान के बिना देवी की पूजा नहीं होती और हम भी यही कहते हैं कि त्याग-प्रत्याख्यान के बिना आत्मा का कल्याण नहीं होता। मगर देखना यह है कि बलिदान किसका करना है? अधिक से अधिक मूर्छा या ममता का त्याग करने वाले ही अपनी आत्मा के कल्याण के साथ जगत् का कल्याण करने में समर्थ हो सके हैं। अतएव अन्तःकरण में घुसी हुई ममता ही बलिदान करने योग्य है। ऐसा बलिदान करने वाले महात्मा ही देश और धर्म का भला कर सकते हैं।

राम और कौशल्या ने सीता को घर रहने लिए
समझाया। उनकी बातें सुनकर सीता सोचने लगी
विकट प्रसंग है। अगर मै इस समय लज्जा

रह जाऊँगी और घर ही बैठी रहूँगी तो यह मेरे लिए स्त्री-धर्म का नाश करना होगा। इस प्रकार विचार कर और जी कड़ा करके सीता ने राम से कहा—प्रभो! आपने और माता जी ने वन के कष्टों के विषय में जो कुछ कहा है वह सब ठीक है। आपने न के कष्ट बतला दिये सो भी अच्छा ही किया। लेकिन म हौस की मारी वन को नहीं जा रही हूँ। आप विश्वास कीजिए कि मैं वन के कष्टों से भयभीत नहीं होती। बल्कि यह कष्ट सुनकर वन के प्रति मेरी उत्सुकता अधिक बढ़ गई है। मुझे अपने साहस और धैर्य की परीक्षा देनी है और मैं उस परीक्षा में अवश्य ही सफल होऊँगी।

सुख में तो आ-आकर घेरे।
सकट में मुँह फेरे॥
देखेगा अब कौन उसे।
मरना होगा बस मौन उसे॥

मैं सुख के समय आपके साथ रही हूँ तो क्या दुःख के समय किनारा काट जाऊं ? सुख के साथी को दुख में भी साथी होना चाहिए। जो ऐसा नहीं करता वह सच्चा साथी नहीं, स्वार्थी है। आप वन के कष्ट बतलाकर मुझे वन जाने से रोक रहे हैं, मगर क्या मैं आपके सुख की ही साथिन हूँ? क्या मुझे स्वार्थपरायण बनना चाहिए? नहीं, मैं दुःख में आप से आगे रहने वाली हूँ।

राम का ऐसा पक्का रंग सीता पर चढ़ा था कि स्वयं

राम के छुटाए भी न छूटा। राम सीता को वन जाने से रोकना चाहते थे पर सीता नहीं रुकी । वास्तव में राम-रंग वह है जो राम के धोने से भी नहीं धुलता।

सीता कहती है--प्राणनाथ ! जान पड़ता है, आज आप मेरी ममता में पड़ गए हैं । मेरे मोह में पड़कर आपने जो कहा है उसका मतलब यह है कि मै अपने धर्म-कर्म को और अपनी विशेषता का परित्याग कर दूँ । यद्यपि आपके वचन शीतल और मधुर हैं लेकिन चकोरी के लिए चन्द्रमा की किरणें भी दाह उत्पन्न करने वाली हो जाती है । वह तो जल से ही प्रसन्न रहती है । स्त्री का सर्वस्व पति है । पति ही स्त्री की गति है । सुख-दुख में समान भाव से पति का अनुसरण करना ही पतिव्रता स्त्री का कर्त्तव्य है। मै इसी कर्त्तव्य का पालन करना चाहती हूँ। अगर मै अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गई तो घृणा के साथ लोग मुझे स्मरण करेंगे । इसमें मेरा गौरव नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त आप जिस गौरव को लेकर और जिस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए वन-गमन कर रहे हैं, क्या उस गौरवपूर्ण काम में मुझे शरीक नहीं करेंगे? आप अकेले ही रहेंगे? ऐसा मत कीजिए। मुझे भी उसका थोड़ा-सा भाग दीजिए। अगर मुझे शामिल नही करते तो मुझे अर्धांगिनी कहने का क्या अर्थ है? हॉ, अगर वन जाना अपमान की बात हो तो भले ही मुझे मत ले चलिए। अगर गौरव की बात है तो मुझे घर

ही में रहने की सलाह क्यों देते हैं! आपका आधा अंग घर ही रह जायगा तो आप वन में विजय कैसे पा सकेंगे? आधे अंग से किसी को विजय नहीं मिलती।

आप वन में भय ही भय बतलाते हैं मगर आप के साथ मुझे तो वन में जय ही जय दिखलाई देती है। कदाचित् भय भी वहाँ होगा मगर भय पर विजय पा लेना कोई कठिन नहीं है और ऐसी विजय में ही सुख का वास है।

कदाचित् आप सोचते होंगे कि सीता में आत्मबल नहीं है, इस कारण वन उसके लिए कष्टकर होगा, लेकिन अवसर मिलने पर मैं अपना बल दिखलाऊँगी। स्त्री के लिए जितने भी व्रत, नियम और धर्म है, उनमें से किसी से भी चूक जाऊँ तो मैं जनक की पुत्री नहीं! अधिक क्या कहूँ, बस इतना ही निवेदन करना चाहती हूँ कि मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ, सुख-दुःख की साथिन हूँ। मुझे अलग मत कीजिए। वन के जो कष्ट आप सह लेंगे वह मैं भी सह लूँगी। कोमलता, कठोरता के सहारे और कठोरता, कोमलता के सहारे रहती है। डाली के बिना पत्ती और पत्ती के बिना डाली नहीं रह सकती। दोनों का अस्तित्व सापेक्ष है। मैं माताजी से भी यही प्रार्थना करती हूँ कि मुझे निःसंकोच होकर आज्ञा दें। स्त्री के हृदय को स्त्री जल्दी और खूब समझ सकती है। उनसे ज्यादा निवेदन करने की आवश्यकता ही नहीं है।'

अब लोगों को सोचना चाहिए कि जिस चीज़ में राम

नहीं हैं, वह सुखप्रद होने पर भी ग्राह्य है या नहीं ? और जिसमें सब दुख हैं मगर राम हैं तो वह ग्राह्य है या नहीं ? जिसमें राम नहीं हैं वह चीज़ अगर छूट रही हो तो उसे छोड़ना चाहिए या नहीं ? ऐसे प्रसंग पर क्या करना चाहिए, यह बात सीता से सीखने योग्य है। कामदेव श्रावक से देव ने कहा था—अपना धर्म छोड़ दे, नहीं तो तन के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा ! फिर भी कामदेव अटल रहा। उसने सोचा—तन जाता है तो जाय, जिसमें राम है-धर्म है-उसे नहीं छोड़ूंगा।

हनुमानजी वानरवंशी क्षत्रिय थे, वानर नहीं थे। वानर-वंशी होने के कारण वे वानर के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं। कहते हैं, एक बार उन्हें सीता ने एक हार दिया। हनुमानजी उस हार को पत्थर पर पटक कर फोड़ने लगे। यह देखकर लोग कहने लगे—अरे, हनुमानजी यह क्या कर रहे है ? हनुमानजी से हार फोड़ने का कारण पूछा गया। उन्होंने बतलाया—मै देखना चाहता हूॅ कि इसमें राम हैं या नहीं ? अगर राम हों तो यह मेरे काम का है। इसमें राम न हुए तो मेरे किस काम का ? हनुमानजी का यह उत्तर सुनकर लोग चकित रह गए। सोचने लगे—'हनुमानजी की राम के प्रति कैसी निष्ठा है ! कैसी अपूर्व भक्ति है ! सचमुच हनुमानजी रामभक्तों में शिरोमणि हैं।

सीता सोचती है—जहॉ राम है वहॉ सभी सुख है। जहाँ राम नहीं वहाँ दुःख ही दुःख है। राम स्वयं सुखमय

हैं। उनके वियोग में सुख कहाँ है।

सीता ने राम से कहा—आप वन में संताप कहते हैं पर वहाँ पाप तो नहीं है ? जहाँ पाप न हो वह संताप, संताप नहीं है, वह तो आत्मशुद्धि करने वाला तप है। आप भूख-प्यास का कष्ट बतलाते हैं लेकिन स्त्रियाँ इन कष्टों को कष्ट ही नहीं गिनतीं। अगर हम भूख-प्यास से डरतीं तो पुरुषों से अधिक उपवास न करतीं। भूख सहने में स्त्रियाँ पक्की होती हैं।

सीता की बातें सुनकर कौशल्या सोचने लगीं—सीता साधारण स्त्री नहीं है। इसका तेज निराला है। यह साक्षात् शक्ति है। राम और सीता मिल कर जगत् का कल्याण करेंगे। जगत् में नया आदर्श रखने के लिए इनका जन्म हुआ है। अतएव सीता को राम के साथ जाने की अनुमति देना ही ठीक है।

आज भारत की प्रजा आचार-विचार में शिथिल होती जाती है। जिस श्रेष्ठ आचार-विचार पर भारत की श्रेष्ठता निर्भर है, उसे त्याग देना हमारे लिए हितकर न होगा। अतएव भारतीय जनता को अपनी शिथिलता दूर करने के लिए राम और सीता के चरित्र पर दृष्टिपात करना चाहिए। यह देखकर कि अब तो सभी का आचार-विचार शिथिल पड़ गया है, किसी को अपने आचार-विचार में शिथिलता नहीं घुसने देना चाहिए। लखपति विरला होता है और गरीब

बहुत होते हैं। लेकिन लखपति यह नहीं सोचता कि बहुत-से लोग गरीब हैं तो मै अकेला ही क्यों लखपति रहूँ ? अगर कोई राजा है तो वह नहीं सोचता कि दूसरे राजा नहीं हैं तो मै अकेला ही क्यों राजा रहूँ ? ऐसे प्रसंग पर तो लोग सोचते हैं-अपना-अपना भाग्य है! जब निर्धन बनने में दूसरे का अनुकरण नहीं किया जाता तो आचार-विचार की शिथिलता का क्यों अनुकरण करना चाहिए ? आचरण-हीनता का अनुकरण करने से पतन होत है। अतएव हमारी दृष्टि उस ओर नहीं वरन् श्रेष्ठ आचरण करने वालों की ओर जानी चाहिए। ऐसा करने से जीवन उन्नत और पवित्र बनेगा। एक कवि ने कहा है—

निज पूर्वजों के चरित का,
जिसको नहीं अभिमान है।
उस जाति का जीना जगत् मे,
मित्र ! मरण समान है।
रखता सदा जो पूर्वजो के,
सद्गुणों का ध्यान है।
उस जाति का निश्चय समझ लो,
शीघ्र ही उत्थान है।

जिस जाति या समाज के हृदय मे अपने पूर्वजों के प्रति गौरव का भाव नहीं है, उनकी वीरता, धीरता, दानशीलता और शील-संपन्नता के प्रति आदर नहीं है, जो अपने पूर्वजो के सद्गुणों का

तिरस्कार करता है, समझना चाहिए कि उस जाति एवं उस समाज का पतन दूर नहीं है। जिस जाति की अवनति होनी होती है, उसके साहित्य का पतन पहले होता है। जिसको अपनी उन्नति की चिन्ता होगी वह अपने साहित्य को नहीं गिरने देगा। वह अपने साहित्य में अपने आदर्श पूर्वजों की गौरव-गाथा को अभिमान के साथ स्थान देगा और इस प्रकार अपनी जाति के समक्ष नवीन प्रेरणा उपस्थित कर देगा। इस प्रकार जो जाति अपने पूर्वजों का ध्यान रक्खेगी वह उन्नत होती चली जायगी। एक विद्वान् का कहना है कि चाहे लाखों मनुष्य मर जावे लेकिन यदि हमारे देश का साहित्य और हमारे पूर्वजों का गौरव बना रहे तो हमारा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

लोग राम का चरित्र क्यों सुनते हैं? यह चरित्र इतना प्यारा क्यों लगता है? इसका एक मात्र कारण यही है कि उससे आत्म-संतोष के साथ प्रेरणा मिलती है। अगर ऐसा चरित्र हमारे हृदय में बना रहे तो हम उन्नत हो सकते हैं। अतएव राम के इस चरित को कोई केवल मनोरंजन का साधन न माने इसे जीवन-जागृति का प्रेरक समझ कर और इसे सन्मुख रखकर अपना जीवन उन्नत बनाना चाहिए। इतनी सूचना कर देने के बाद फिर प्रकृत विषय पर आना उचित है।

सीता की बातों से प्रभावित होकर कौशल्या ने सीता को

आशीर्वाद दिया—बेटी, जब तक गंगा और यमुना की धारा बहती रहे तब तक तेरा सौभाग्य अखण्ड रहे। मैंने समझ लिया कि तू मेरी ही नहीं, सारे संसार की है। तेरा चरित देखकर संसार की स्त्रियाँ सती बनेंगी और इस प्रकार तेरा अहिवात अखण्ड रहेगा। सीते! तेरे लिए राजभवन और गहन वन समान हों—तू वन में भी मंगल से पूरित हो।

सीता सासू का आशीर्वाद पाकर कितनी प्रसन्न हुई, यह कहना कठिन है। आशीर्वाद देते समय कौशल्या के हृदय की क्या अवस्था हुई होगी, यह तो कौशल्या ही जानती है या सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं।

राम और सीता भावों के विचित्र सम्मिश्रण की अवस्था में कौशल्या के पैरों में गिर पड़े। कौशल्या ने अपने हृदय के अनमोल मोती उन पर बिखेर दिये और विदाई दी।



राम के साथ लक्ष्मण भी !



माता से विदा होकर राम, सीता के साथ रवाना होने लगे। उस समय लक्ष्मण पास में ही खड़े थे। राम को जाते देख लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। राम ने उन्हें छाती से लगा लिया। सिर पर प्यार का हाथ फेर कर राम कहने लगे—'वत्स ! चिन्तित न होना। आनन्द में रहना। विलम्ब होरहा है। विदा दो, मै जाऊँ।'

लक्ष्मण—'प्रभो ! विदा किसे कहते हैं, यह तो मुझे मालूम ही नहीं।'

राम—इतने दिन मेरे साथ रहकर भी और इतना सब सुनकर भी तुम नहीं जान पाये ? भैया, मै तेरा हृदय जानता हूँ। मै यह भी जाता हूँ कि तेरा हृदय मेरे वियोग से फट रहा है। पर यह तो नियति का विधान है। यह अदृश्य की प्रबल प्रेरणा है। इसमे कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। अब दूसरी बात सोचने के लिए एक भी क्षण नहीं है।

प्रिय लक्ष्मण ! मुझे जाने दो। तुम यहाँ रहकर माता-पिता और प्रजा की सेवा करना। यहाँ रहकर मै जो सेवा

करता था, उसका भार अब तुम्हारे कन्धों पर है। मेरे जाने के बाद कोई यह न कहने पावे कि राम के न होने से यह काम विगड़ गया है ! इसीलिए मै तुम्हें यहाँ रख जाता हूँ। तुम प्रजा पालन में भरत की सहायता करना। तुम भरत के सहायक रहोगे तो प्रजा शांति का अनुभव करेगी।

लक्ष्मण—भ्राता ! आपने नीति की सीख दी है। लेकिन नीति और धर्म की बात तो वही समझ पाता और पालता है ो बलवान् होता है। मै बालक की तरह आपकी छाया में पला हूँ और आपका अनुचर हू। मेरे लिए नीति, धर्म या चाहे सो कहिए, आप ही हैं। आपको छोड़कर और कुछ भी मेरे लिए रुचिकर नहीं है। आप मुझ पर जो भार डाल रहे है वह मेरी शक्ति से परे है। मै उस भार से दब जाऊँगा। मेरे लिए राम ही संसार है। राम को छोड़कर मै और कुछ नहीं जानता।

यह कहते-कहते लक्ष्मण का कंठ भर आया। वे राम के पैरों में गिर पड़े। पैर पकड़ कर कहने लगे—मै दास और आप स्वामी हैं। मैने उत्तर-प्रत्युत्तर करना छोड़ दिया है। जब से आपने मुझे समझाया, मै मौन हूँ। मैंने दासभाव पकड़ रक्खा है। अब आप मुझे अलग रहने को कहते हैं सो इस पर मेरा कोई वश नहीं है। लेकिन आपका यह कहना पानी से मछली को अलग करने के लिए कहने के समान है। मछली पानी से जुदी की जा सकती है मगर वह जुदाई सह

नहीं सकती। आप मुझे अपने से जुदा कर सकते हैं मगर मैं जुदा रह नहीं सकता। शरीर नहीं तो आत्मा तो आपके साथ ही रहेगी।

लक्ष्मण ने जब से राम का त्याग-वैराग्य देखा था, तभी से सबके साथ की प्रीति तोड़कर उन्होंने राम में ही समग्र प्रीति केन्द्रित कर ली थी। इसी कारण लक्ष्मण जगत् के बड़े से बड़े मूल्यवान् वैभव को भी ठुकरा सकते थे, मगर राम के चरणों से दूर नहीं हो सकते थे।

राम से प्रीति तो और लोग भी करते हैं पर उसकी परीक्षा समय आने पर ही होती है। आप यों तो राम से प्रेम करते हैं पर दुकान पर बैठ कर उन्हें भूल तो नहीं जाते? उस समय आपको राम की अपेक्षा दाम बड़ा तो नहीं मालूम होता? जिसने राम को बड़ा समझा होगा वह राज-पाट को भी तुच्छ ही समझेगा!

स्त्रियों को अगर सीता का चरित्र प्रिय लगेगा तो वे पहले पतिप्रेम के जल में स्नान करेंगी। पति-प्रेम के जल में किस प्रकार स्नान किया जाता है, यह बात सीता के चरित्र से समझ में आ सकती है। राम से पहले सीता का नाम लिया जाता है। सीता ने यदि पतिप्रेम के जल में स्नान न किया होता और राजभवन में ही वह रह जाती तो उसका नाम आदर के साथ कौन लेता?

राम-रावण-युद्ध के समय लक्ष्मण को जब शक्ति लगी

थी और लक्ष्मण मूर्छित हो गए थे, तब तुलसीदास के कथनानुसार संजीवनी बूटी लाई गई थी। लेकिन जैन रामायण का वर्णन कुछ भिन्न है। विशल्या नाम की एक सती थी। वह थी तो कुमारी, पर लक्ष्मण पर उसका अत्यधिक प्रेम था। राम को मालूम हुआ कि विशल्या के स्नान का जल आवे तो लक्ष्मण को लगी हुई शक्ति भाग जाएगी। लोक मे पानी तो गंगा आदि का भी पवित्र माना जाता है, लेकिन विशल्या के स्नान के जल में ही क्या ऐसी शक्ति थी कि उससे दैविक शक्ति भी नहीं ठहर सकती थी? शक्ति वास्तव में जल में नहीं, विशल्या के सत्य, शील में थी। उसी के सत्य, शील की शक्ति जल में आती थी। अगर जल में शक्ति होती तो विशल्या के स्नान के जल की क्या आवश्यकता थी? फिर तो कोई भी जल लक्ष्मण की लगी शक्ति को दूर कर सकता था।

हनुमानजी, विशल्या के स्नान का जल लेने गए। उन्होंने विशल्या से कहा—बहिन, अपने स्नान का जल दो?

विशल्या—मेरे स्नान के जल की क्यों आवश्यकता हुई?

हनुमान—लक्ष्मण को शक्ति लगी है। तुम्हारे स्नान के जल से उन्हें जीवित करना है।

विशल्या सोचने लगी—मुझे तो अपने इस सामर्थ्य का पता नहीं है। फिर भी जब राम ने जल चाहा है तो मुझ मे शक्ति होगी ही। मगर जिन्हें मै हृदय से पति मानती हूँ, उनके लिए स्नान का जल कैसे भेजूँ? मैं स्वयं क्यों न

चली जाऊँ ?

इस प्रकार सोचकर विशल्या स्वयं गई। उसके हाथ का स्पर्श होते ही शक्ति भाग गई और लक्ष्मण जीवित हो गए।

विशल्या में यह शक्ति उसके सतीत्व के कारण ही थी। जो स्त्री सतीत्व की आराधना करेगी वह अचिन्तनीय सामर्थ्य से युक्त बन जायगी। अतएव सीता के चरित को केवल सुनने की वस्तु न समझ कर आचरण की वस्तु समझना चाहिए। इस प्रकार राम और सीता के चरित का अनुकरण करने वाले नर और नारी अपने कल्याण के साथ जगत् का भी कल्याण कर सकेंगे।

लक्ष्मण फिर कहते हैं—'अग्रज! मै आप के साथ ही चलूँगा। 'विदा' शब्द ही मुझे भयंकर लगता है। संसार में एक का नाता अनेकों के साथ होता है। मगर मेरा नाता तो सिर्फ राम के साथ है। मै राम का ही भक्त हूँ। क्या आप नहीं जानते कि मेरे हृदय में लेश मात्र भी अभिमान नहीं है? मेरे दिल में पाप भी नहीं है। फिर दीनबन्धु होकर भी आप अपने बन्धु को तज देंगे? अगर आप यह न जानते हों कि आप के चले जाने पर और लक्ष्मण को साथ न ले जाने पर भी लक्ष्मण कुशलपूर्वक रह सकेगा, तो आप छोड़ जाइए। यदि आप जानते हों कि प्राण चले जाने पर लक्ष्मण का शरीर नहीं टिकेगा तो साथ रखिए। आप मुझसे अवध में रहने को कहते है किन्तु आपके अभाव में श्मशान बने अवध में रह-

कर मै क्या करूँगा ? अवध के प्राण तो आप ही हैं। आपके चले जाने पर यह निष्प्राण है। मै इस निष्प्राण अवध में क्या इसका प्रेतकर्म करने के लिए रहूँगा ?

संसार का स्वरूप समझ कर उससे विरक्त हो जाने वाला पुरुष मानता है, मानो संसार में आग लगी हुई है। उसी प्रकार लक्ष्मण कहते हैं, अवध में मानो आग लगी हुई है। ऐसा कहकर लक्ष्मण, रामविहीन स्थान की निन्दा कर रहे हैं। परस्त्री गमन का त्यागी पुरुष परस्त्री की और पर-पुरुष का त्याग करने वाली स्त्री परपुरुष की निन्दा करे तो कोई बुराई नहीं है। इसी प्रकार रामविहीन अवध की निन्दा करते हुए लक्ष्मण अपनी भावना की एकरूपता—निष्ठा—का परिचय दे रहे हैं।

लक्ष्मण ने कहा—'मै पामर और तुच्छ हूँ। मुझे छोड़कर आपका वन जाना मुझे दोषी बनाना है। आप मुझे दोषी मत बनाइए।'

लक्ष्मण अगर घर रहते तो उन्हें कौन दोषी बनाता था ? घर रह कर वे माता-पिता की सेवा करते और राज्य की व्यवस्था में भी सहायता पहुँचा सकते थे। उन्हें दोषी कौन कह सकता था ? लेकिन उनका तर्क दूसरा है। लक्ष्मण का कथन यह है कि स्वामी की सेवा में उपस्थित रहना सेवक का कर्त्तव्य है। सेवा का विशेष अवसर आने पर स्वामी से जुदा हो जाना सेवक का दोष है। इस दोष से बचने के

लिए लक्ष्मण, राम के साथ ही वन जाने को उद्यत हैं।

अरणक श्रावक का जहाज एक देव डुबाने को तैयार था। जहाज़ के दूसरे मुसाफिर अरणक से कह रहे थे कि हम सभी डूबे जा रहे हैं। आप जरा-सा हठ छोड़ दें तो हमारी जानें बच जाएँ। आप हठ न छोड़ेंगे तो हमारी मौत सामने है। लोगों के इस प्रकार कहने पर भी क्या अरणक ने धर्म छोड़ दिया था? अरणक ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—

जहाज डूबे तो माया किसका?
मैं क्या जहाज अपनी बोरूं,
अहो मेरी जान धर्म न छोड़ूं।
तन भी छोड़ूं धन भी छोड़ूं,
माया कहो तो अब छोड़ूं ॥धर्म न छोड़ूं॥

अरणक कहता है—हे देव! तुम और मेरे यह साथी मुझ से धर्म छोड़ने के लिए कहते हैं। साथी कहते हैं कि तुम धर्म न छोड़ोगे तो हम भी डूब मरेंगे और धर्म छोड़ दोगे तो बच जाएँगे। तुम भी कहते हो कि धर्म छोड़ दें अन्यथा जहाज़ डुबाता हूँ। लेकिन जहाज़ धर्म से तिरता है। पाप से तो वह डूब सकता है, तिर नहीं सकता। तुम्हारे दिल में पाप न होता तो जहाज़ डुबाते क्यों? इसी से स्पष्ट है कि जहाज़ धर्म से नहीं, पाप से डूबता है। जो पाप निष्कारण ही दूसरों का जहाज़ डुबाता है, मैं उसे कैसे ग्रहण कर सकता हूँ? धर्म रक्षा करता है तो रक्षा के लिए धर्म का परित्याग कैसे

किया जा सकता है ?

अरणक की इस दृढ़ता से देव का भी गर्व मिट गया। वह निरभिमान होकर अरणक के पैरों में गिरा और कहने लगा—'आप वास्तव में धन्य हैं। मै आपकी धर्मनिष्ठा की परीक्षा कर रहा था। आप धर्म में बहुत दृढ़ साबित हुए।'

रामायण में कहा है—रावण सीता से कहने लगा कि तुम मुझे स्वीकार कर लो, वर्ना मैं राम-लक्ष्मण आदि को यमलोक भेज दूंगा। सीता दयालु थी या पापिनी थी? वह दयालु होने पर भी अपने धर्म पर क्यों दृढ़ रही। धर्म पर दृढ़ रहने के कारण नाश किसका हुआ? यमलोक में कौन पहुँचा। धर्म पर दृढ़ रहने वाला कभी नष्ट नहीं होता।

लक्ष्मण कहते हैं—मैंने आपको ही धर्म और नीति मान लिया है। जब आप ही मुझसे बिछुड़ जाएँगे तो मेरे पास धर्म और नीति कैसे रहेगी? मुझे आपकी बतलाई हुई नीति भी उतनी प्रिय नहीं है, जितने आप स्वयं प्रिय हैं। जो अनन्य भाव से आपके चरणों में भक्ति रखता है, उसको भी आप त्याग कर जाएँगे?

करुणासिन्धु राम ने लक्ष्मण की प्रीति देख कर उन्हें छाती से लगा लिया। भावावेश में उनका भी हृदय गद्गद् हो गया। वे बोले—'लक्ष्मण! तुम्हारी परीक्षा हो गई। तुम्हें पाकर मैं निहाल हो गया। लोग कहते हैं कि राम ने राज्य छोड़ा है पर तुम्हारा-सा बन्धु पाकर मेरा राज्य त्यागना भी

सार्थक हो गया। तुम्हारी तुलना में राज्य तुच्छ—अति तुच्छ है। अब तुम्हें भी माताजी से अनुमति लेनी चाहिए। समय अधिक नहीं है।'

राम की इस स्वीकृति से लक्ष्मण को इतना आनन्द हुआ जितना अंधे को आँख मिलने पर होता है। राम के साथ वन जाने का सुअवसर पाकर वह जैसे कृतार्थ हो गए। लक्ष्मण की यह अवस्था देखकर देवता प्रसन्न हुए होंगे या दुखी हुए होंगे, कौन जाने ? लक्ष्मण की करुणा देखकर एक बार तो देवता भी कांप उठे होंगे।

कवियों ने लक्ष्मण के कथन को प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त किया है। वास्तव में लक्ष्मण की भक्ति को शब्दों में प्रकट करना कठिन है। हृदय की कोई भी गहरी मनोभावना शब्दों की पकड़ मे नही आती।

लक्ष्मण बड़े बलवान् थे। वह सारे संसार का सामना कर सकते थे सारा संसार कदाचित् उनके विरोध में खड़ा हो जाय तो वह भी घबराने वाले नहीं थे। लेकिन राम की विरह की कल्पना से उनमें घबराहट पैदा हो गई। वीरता के साथ राम के प्रति उनकी इतनी गहरी निष्ठा थी।

लक्ष्मण अगर घर रहते तो संसार के सभी सुख उनके सामने प्रस्तुत थे। कमी किस बात की थी ? उत्तम से उत्तम भोजन मिलता, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रथ आदि सवारियाँ मिलतीं, सुमन-शय्या पर सोते और सभी प्रकार के प्रमोद के साधन

मिलते। इसके विपरीत वन जाने में क्या सुख था ? जंगली फल-फूल खाकर पेट भरना, पैदल भटकना, कंकर-कंटक भरी जमीन पर सोना और अनेक प्रकार की मुसीबतें झेलना लक्ष्मण इन सब बातों से अपरिचित नहीं थे। फिर भी राम में क्या अलौकिक आकर्षण था कि वे उससे विवश होकर राम के साथ जाने को उद्यत हैं ? राम की सेवा करने की साध ही उन्हें वन की ओर खींच रही थी।

सुमित्रा की स्वीकृति

लक्ष्मन मन ही मन प्रसन्न होते हुए माता के पास पहुँचे। माता को प्रणाम करके सामने खड़े हो गए। बोले—'माता, मैं राम के साथ वन जाने के लिए आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।

लक्ष्मण का यह वाक्य सुनकर माता सुमित्रा एक बार घबरा उठी। जैसे कुल्हाड़े से काटने पर कल्पलता गिर जाती है, उसी प्रकार वह भी मूर्छा खाकर गिर पड़ी। लक्ष्मण यह देखकर बड़ी चिन्ता में पड़ गए। सोचने लगे—'कहीं स्नेह के वश होकर माता मनाई न कर दें। लेकिन सुमित्रा होश में आकर सोचने लगी—'हाय ! मेरी बहन कैकेयी ने यह कैसा वर मांगा कि राम जैसे आदर्श पुत्र को वनजाना पड़ रहा है ! उसने किये-कराये पर पानी फेर दिया। समस्त अवध-वासियों की आशा मिट्टी में मिल गई। हाय राम ! तुम क्यों संकट में पड़ गए ? मगर यह मेरी परीक्षा का अवसर है।

इस अवसर पर मुझे कैकेयी की बुद्धि लेनी चाहिए या कौशल्या की ?'

आखिर सुमित्रा ने अपना कर्त्तव्य तत्काल निश्चित कर लिया। मीठी वाणी में उन्होंने लक्ष्मण से कहा—वत्स ! जिसमें राम को और तुम्हें सुख हो वही करो। मै तुम्हारे कर्त्तव्यपालन में तनिक भी बाधक नहीं होना चाहती। थोड़े में इतना ही कहती हूँ कि-'इतने दिनों तक मै तुम्हारी माता और महाराज (दशरथ) तुम्हारे पिता थे। मगर आज से सीता तुम्हारी माता और राम पिता हुए। तुमने राम के साथ वन जाने का विचार किया है, यह तुम्हारा नया जन्म है। मैं तेरी पुण्य-सम्पत्ति का क्या बखान करूँ ? तू राम के रंग में गहरा रंग गया है, यह कम सौभाग्य की बात नहीं है। पुत्र ! तू ने राजमहल त्याग कर राम की सेवा के लिए वन जाने का विचार करके मेरी कूँख को प्रशस्त बना दिया है। तेरी बुद्धि अच्छी है, फिर भी मै कुछ सिखावन देना चाहती हूँ। वत्स ! अप्रमत्त भाव से राम की सेवा करना। उन्हीं को अपना पिता और जानकी को अपनी माता समझना। मै तुझे राम की गोद में विठलाती हूँ।'

क्या आप भी राम की गोद में बैठना चाहते हैं ? राम की गोद में बठने के लिए तो सभी तैयार हो जाएँगे, पर देखना चाहिए कि राम की गोद में बैठने की पात्रता किस प्रकार आती है ? कहावत है—

राम का वन-प्रस्थान

——::::()::::——

राम के वन-वास की बात सुनकर अयोध्या मे किस प्रकार शोक की लहर दौड़ गई थी और किस प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचना होने लगी थी, इसका कुछ दिग्दर्शन पहले करा दिया गया है। अब, राम को वन जाने के लिए उद्यत देखकर और यह जान कर कि उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी वन जा रहे है, जनता के धैर्य का बॉध टूट गया। लोग अत्यन्त व्याकुल, व्यथित विह्वल हो गए। जब राम, लक्ष्मण और सीता ही अयोध्या में न रहे तो अयोध्या सूनी ही समझो। अयोध्या की आत्मा जहाँ नहीं है वहाँ अयोध्या ही कहाँ? लोग विषाद से भरे हुए ऐसे मालूम होते, जैसे इनका सर्वस्व अभी-अभी ऑखों देखते २ लुट गया हो। किसी को सूझ नहीं पड़ता कि इस समय क्या करना चाहिए? राम स्वेच्छा से वन जा रहे हैं, यही सब से बड़ी कठिनाई है। अगर वे स्वेच्छा से न जाते होते तो किसकी ताकत थी जो उन्हें वन में भेज सके। आबाल-वृद्ध जनता का हार्दिक प्रेम और समर्थन जिसे प्राप्त हो, उसे कौन निर्वासित कर

चाहिए, यह बात कोई विरली ही समझती है। कहावत है—

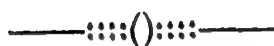
जननी जने तो ऐसा जन, कै दाता कै सूर।
नीतर रेजे वांझणी, मती गँवावै नूर॥

बहिनें पुत्र को चाहती है पर यह नहीं जानना चाहतीं कि पुत्र कैसा होना चाहिए? पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उसे सुसंस्कारी बनाने की कितनी जिम्मेवरी आ जाती है, इस बात पर ध्यान न देने से उनका पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ हो जाता है।

माता सुमित्रा कहती है—लखन! तेरा भाग्य उदय करने करने के लिए ही राम वन जा रहे हैं। वह अयोध्या में में रहते तो सेवा करने वालों की कमी न रहती। वन में जाने वाली सेवा मूल्यवान् सिद्ध होगी। सेवक की परीक्षा संकट के समय पर ही होती है। राम वन न जाते तो तेरी परीक्षा कैसे होती?

माता के हृदय में पुत्र और राम के वियोग की व्यथा कितनी गहरी होगी, इसका अनुमान करना कठिन है। लेकिन उसने धैर्य नहीं छोड़ा। वह लक्ष्मण से कहने लगी—वत्स! राग, द्वेष और मोह त्याग करके राम और सीता की सेवा करना! राम के साथ रह कर सब विकार तज देना। जब राम और सीता तेरे साथ हैं तो वन तुझे कष्टदायक नहीं हो सकता। हे वत्स! मेरा आशीर्वाद है कि तुम दोनों भाई सूर्य और चन्द्र की भाँति जगत् का अन्धकार मिटाओ। प्रकाश फैलाओ। तुम्हारी कीर्ति अमर हो।

राम का वन-प्रस्थान



राम के वन-वास की बात सुनकर अयोध्या में किस प्रकार शोक की लहर दौड़ गई थी और किस प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचना होने लगी थी, इसका कुछ दिग्दर्शन पहले करा दिया गया है। अब, राम को वन जाने के लिए उद्यत देखकर और यह जान कर कि उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी वन जा रहे हैं, जनता के धैर्य का बाँध टूट गया। लोग अत्यन्त व्याकुल, व्यथित विह्वल हो गए। जब राम, लक्ष्मण और सीता ही अयोध्या में न रहे तो अयोध्या सूनी ही समझो। अयोध्या की आत्मा जहाँ नहीं है वहाँ अयोध्या ही कहाँ? लोग विषाद से भरे हुए ऐसे मालूम होते, जैसे इनका सर्वस्व अभी-अभी आँखों देखते २ लुट गया हो। किसी को सूझ नहीं पड़ता कि इस समय क्या करना चाहिए? राम स्वेच्छा से वन जा रहे हैं, यही सब से बड़ी कठिनाई है। अगर वे स्वेच्छा से न जाते होते तो किसकी ताकत थी जो उन्हें वन में भेज सके। आबाल-वृद्ध जनता का हार्दिक प्रेम और समर्थन जिसे प्राप्त हो, उसे कौन निर्वासित

सकता है ? यह सोच कर लोग रह जाते थे।

देखते-देखते अयोध्या की समस्त जनता राजमहल की ओर उमड़ पड़ी। नर-नारी, बालक-वृद्ध, जिसे देखो वही, शोक की गहरी छाया लिए दशरथ के भवन की ओर चला जा रहा है। थोड़ी ही देर में महल प्रजा से घिर गया। स्त्रियाँ अलग और पुरुष अलग हो गए। स्त्रियों ने सीता को घेर लिया और पुरुषों ने राम को।

सौम्यवदना जानकी को देख कर अधिकांश स्त्रियाँ अपना रुदन न रोक सकीं। कहने लगीं—आह! सुकुमारी सीता, किस स्थिति में रहने वाली और आज किस स्थिति में जा रही है! अदृष्ट! तू कितना निष्ठुर है!

स्त्रियों में जो गम्भीर और पक्के जी की थीं, उन्होंने कहा—रोती क्यों हो ? रोता वह है जो निराशावादी होता है। आशावादी कभी नहीं रोता। अगर कोई व्यक्ति व्यापार के निमित्त विदेश जाता है तो उसके लिए रोया नहीं जाता, क्योंकि उसके लौट कर आने की आशा है। जानकी जा रही हैं, यह ठीक है; पर यह भी तो देखना चाहिए कि वह क्यों जा रही हैं ? जानकी को न राजा भेज रहे हैं, न रानी कैकेयी भेज रही है। सीता को कोई कलंक भी नहीं लगा है, कि कलंक की मारी वन जाती हो। ऐसा होने पर भी जानकी के जाने का हमे गुण लेना चाहिए। इनके चरित से हमें बहुत सीख लेनी चाहिए। रोने से नहीं, शिक्षा लेने से ही हमारा

कल्याण होगा और हमारे ऐसा करने से जानकी का वन जाना भी सार्थक हो जाएगा। इनका गुण गाओ बहिन, कि इन्होंने अपने असाधारण त्यागमय चरित के द्वारा स्त्री-समाज के सामने ऐसा उज्ज्वलतर आदर्श उपस्थित कर दिया है जो युग-युग में नारी का पथप्रदर्शन करेगा। पथ-भ्रष्ट स्त्रियों के लिए यह एक महान् उत्सर्ग बड़े काम का सिद्ध होगा।

एक हम हैं जिन्हें वन का नाम लेते ही बुखार चढ़ आता है और दूसरी यह सुकुमारी राजकुमारी हैं जो वन की विपदाओं को तुच्छ समझ कर अपने पति का अनुगमन करके वन को जा रही हैं। इन्होंने सुसराल और मायके को उजागर कर दिया।

सीता के कष्टों की कल्पना करके रोना वृथा है। जिसे कष्ट सहना है वह रोती नहीं, इसका ध्यान अपने धर्म की ओर ही है और तुम रोती हो! तुम भी अपने कर्त्तव्य की ओर दृष्टि दौड़ाओ।

इसी बीच दूसरी स्त्री ने कहा—हाय! कैकेयी का कलेजा कितना कठोर है! यह दृश्य देख कर तो पत्थर भी पिघल सकता है! वह नहीं पसीजती!

तीसरी ने कहा—फिर वही बात तुम कहती हो! सीता वन जाकर स्त्रियों को अबला कहने वाले पुरुषों को एक प्रकार से चुनौती दे रही है। सीता ने सिद्ध किया है कि

स्त्रियाँ शक्ति हैं। इनका वन जाना हमारे लिए अनमोल शिक्षा है।

चौथी स्त्री—ठीक कहती हो बहिन, पर हृदय नहीं मानता। जी चाहता है, सीता के साथ ही रहें—लौट कर घर न जाएँ।

पाँचवी स्त्री—ऐसा सोचना वृथा है। सीता के चरित से जो शिक्षा मिल रही है उसे न ग्रहण करके सीता को ग्रहण करना भी व्यर्थ होगा। असली तत्त्व तो सीता द्वारा प्रदर्शित पथ है। उसी पथ पर हमें चलना चाहिए।

सीता का पथ कौन-सा है? कैसा है? इसका उत्तर देना कठिन है। पूरी तरह उस पथ का वर्णन नहीं किया जा सकता। एक कवि ने कहा है—

बेना आपणो बनाव,
घणा मोल को करा।
पैली आगली सत्यारा,
पग लागणी करा ॥बेना०॥
पति-प्रेम रा पवित्र,
नीर मांय सांपड्यां,
पीर सासरा रा वखाण रा,
सुवेष पैर ला।
मेंहदी राचणी विचार,
घरे काम आटरा ॥बेना०॥

बुद्धिमती, धैर्य वाली और सती के महात्म्य को समझने वाली स्त्रियां सीता के वियोग में रोने वाली स्त्रियो से कहती हैं—हम भी सीता का मार्ग पकड़ें और अपना बहुमूल्य बनाव करें। इसके लिए सब से पहले पतिप्रेम के जल मे स्नान करना पड़ेगा। साधारण जल ऊपर का मैल दूर करता है और वह भी सदा के लिए नहीं, किन्तु—

शील स्नानं सदा शुचिः ।

शील का स्नान सदा के लिए पवित्र कर देता है। इसलिए पतिप्रेम के जल में स्नान करो और यह निश्चय करके स्नान करो कि चाहे आग मे जलना पड़े, मगर पतिप्रेम से कभी विमुख न होंगी। इस प्रकार का स्नान करके फिर सीताजी जैसा वेष धारण करो। सीताजी ने क्या वेष लिया है ? सुसराल और पीहर की प्रशंसा कराने का जो वेष उन्होंने पहना है, वह वेष हमें भी अपनाना है। सीताजी अब तक मूल्यवान वस्त्र और आभूषण पहनती रही हैं मगर उनकी प्रशंसा उन वस्त्राभूषणों के कारण नहीं हुई है। उनकी प्रशंसा तो उनके इन कार्यों से है जो सुसराल और मायके का यश उज्ज्वल बनाने के लिए वे अब कर रही हैं। स्त्रियों को मेंहदी लगाने का बहुत शौक होता है मगर हमें मेंहदी भी वैसी ही लगानी चाहिए, जैसी जानकी ने लगाई है। सीता जब राम को वरने के लिये आई होगी तो हाथों-पैरों में मेंहदी लगाई

होगी। पर आज उनकी मेंहदी देखो ! पति के अनुराग की लालिमा से उनका हृदय अनुरक्त हो रहा है। असल में स्त्री का हृदय पति प्रेम में रंगा होना चाहिए, खाली चमड़ी रंगने से क्या होता है ! उनके हृदय का अनुराग ही हिलोरें मार रहा है और उन्हीं हिलोरों में सीता वन की ओर वही चली जा रहीं है। सीता ने सोचा होगा—घर पर रहकर दास-दासियों के मारे पति की पुनीत सेवा करने का पूरा अवसर नहीं मिलता। वन मे अच्छा अवसर मिलेगा। इस प्रकार सीता पति की सेवा के लिए वन जा रही है तो क्या हम घर रहकर भी पति की सेवा नहीं कर सकतीं !

प्राचीन काल का दाम्पत्य संबंध कैसा आदर्श था ! पत्नि अपने आपको पति में विलीन कर देती थी और पति उसे अपनी अर्धांगना, अपनी शक्ति, अपनी सखी और अपनी हृदय स्वामिनी समझता था ! एक पति था, दूसरी पत्नी थी, पुरुष स्वामी और स्त्री स्वामिनी थी। एक का दूसरे के प्रति समर्पण का भाव था। वहाँ अधिकारों की मांग नहीं थी, सिर्फ समर्पण था। जहाँ दो हृदय मिलकर एक हो जाते हैं वहाँ एक को हक मांगने का और दूसरे को हक देने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। ऐसा आदर्श दाम्पत्य संबंध किसी समय भारतवर्ष मे था। आज विदेशों के अनुकरण पर-जहाँ दाम्पत्य संबंध नाम मात्र का है—भारत में भी विकृति आ ई है। नतीजा यह हुआ है कि पति-पत्नी का अद्वैत भाव

नष्ट होता जा रहा है और राजकीय कानूनों के सहारे समानाधिकार की स्थापना की जा रही है! आज की पढ़ी-लिखी स्त्री कहती है—

अंगरेजी पढ़ गई सैया।
रोटी नहीं पकाऊँगी॥

शिक्षा का परिणाम यह निकला है! पहले की स्त्रियाँ प्रायः सब काम अपने हाथों से करती थीं। आजकल सभी काम नौकरों द्वारा कराये जाते हैं। परिणाम यह हुआ कि डाक्टरों की बाढ़ आ गई और स्त्रियों को डाकिन-भूत लगने लगे। स्त्रियों के निकम्मे रहने के कारण हिस्टीरिया आदि रोग होते हैं और डाकिन-भूत के नाम पर लोग ठगाई करते हैं। अगर स्त्री को मार्ग पर चलना है तो इन सब बुराइयों को छोड़ना पड़ेगा।

कई एक भोली बहिनें हाथ से पीसने में पाप लगता समझती हैं और दूसरे से पिसवा लेने में पाप से बच जाने की कल्पना करती हैं। पीसने में आरम्भ तो होता ही है लेकिन अपने हाथ से यतना और विवेक के साथ काम किया जाय तो बहुत से निरर्थक पापों से बचाव भी हो सकता है। शक्ति होते हुए दूसरे से काम कराना एक प्रकार की कायरता है और कहना चाहिए कि अपनी शक्ति का विनाश करना है। इस प्रकार का परावलम्बी जीवन बिताना अपनी शक्ति की घोर अवहेलना करना है।

पग धरिता सतोष ने वर्या ने कठा।
हिया कठ मे खरा हार नो सर्या धरा॥
लोग दोई ने सुधार वारा चूडला करा।
मान राखणो वड़ा रो सिर चोर गूंथ ला॥ वेना० ॥

बुद्धिमती स्त्रियाँ कहती हैं—'जिस प्रकार सीता ने पैर के आभूषण उतार दिये हैं, उसी प्रकार अगर हम भी दिखावे के लिये पैर के गहने उतार दें तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। पैर के आभूषण पैर में भले ही पड़े रहें, मगर एक शिक्षा याद रखनी चाहिए। अगर सीता में धैर्य और संतोष न होता तो वह वन में जाने को तयार न होती। सीता में कितना धैर्य और कितना संतोष है कि वह वन की विपदाओं की अवगणना करके और राजकीय वैभव को ठुकरा करके पति के पीछे-पीछे चली जारही है! हमे सीता के चरित से इस धैर्य और संतोष की शिक्षा लेनी है। यह गुण न हुए तो आभूषणों को धिक्कार है।

जहाँ ज्यादा गहने हैं वहाँ धैर्य की और संतोष की उतनी ही कमी है। वन-वासिनी भीलनी पीतल के गहने पहनती है और रूखा सूखा भोजन करती है, फिर भी उसके चेहरे पर जसी प्रसन्नता और स्वस्थता दिखाई देगी, बड़े घर की महिलाओं में वह शायद ही कहीं दृष्टिगोचर हो! भीलनी जिस दिन बालक को जन्म देती है उसी दिन उसे झौंपड़ी में रखकर घी बेचने चल देती है। यह सब किसका प्रताप है?

संतोष और धैर्य की जिंदगी साक्षात् वरदान है। असंतोष अधीरता जीवन का अभिशाप है।

बुद्धिमती स्त्रियाँ कहती हैं-सीता ने क्षमा का नौलड़ा हार पहन रक्खा है। ऐसा ही हार हमें पहनना चाहिए। यद्यपि कैकेयी की वर-याचना के फलस्वरूप उनके पति को और उनको वन जाना पड़ रहा है, फिर भी इनके चेहरे पर रोष का लेशमात्र भी कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता। उनकी मुद्रा कितनी शान्त और गंभीर है! अगर इनमें धैर्य न होता तो वह तुम्हारी तरह रोने लगती। अगर वह अपनी आँख टेढ़ी करके कह देती कि मेरे पति का राज्य लेने वाला कौन है! तो किसका साहस था कि वह राज्य ले सके। सारी अयोध्या उनके पीछे थी। लक्ष्मण उनके परम सहायक थे और वे अकेले ही सब के लिए काफी थे। सीता चाहती तो मिथिला से फौज मंगवा सकती थी। लेकिन नहीं, सीता ने क्षमा का हार पहन रक्खा है। ऐसा हार हमें भी पहनना चाहिए।

सीता के हाथ में आज केवल मंगल-चूड़ी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मगर उन्होंने अपने हाथों में इस लोक और परलोक को सुधारने का चूड़ा पहन रक्खा है। ऐसा ही चूड़ा हमें भी पहनना चाहिए। उभय लोक के सुधार का मंगलमय चूड़ा न पहना तो न मालूम अगले जन्म में कैसी बुरी गति मिलेगी।

आजकल मारवाड़ में आभूषण पहनने की प्रथा

है। वोर तो अनार हो गया है। वोर तो वोर (बेर) के बराबर ही हो सकता है, पर बढ़ते-बढ़ते वह अनार से भी बाजी मार रहा है। जेवरों के वृद्धि के साथ ही विकार मे भी प्रायः वृद्धि होने लगती है।

बुद्धिमती स्त्रियाँ कहती हैं—सीताजी ने गुरु जनों की आज्ञापालन रूपी वोर अपने मस्तक पर धारण किया है। ऐसा ही बोर स्त्रियों को धारण करना चाहिए। उन्होंने कैकेयी जैसी सास का भी मान रक्खा है। अगर हम जरा-सी बात पर भी बड़ों का अपमान करें तो हमारा यह वोर पहनना वृथा हो जायगा।

अच्छी सीख ने करणफूल,
कानरा करां।
झूठा बारला बनाव,
देख क्यों वृथा लड़ां।
हिया मांय अमोल,
खान खोल पैर लां।
सब बाहर का बनाव,
वा पै वारणां करां॥

वहिनो! सीता ने मणि जड़े कर्णफूल त्याग कर उत्तम शिक्षा के जो कर्णफूल पहने हैं, उन्हें ही हमें पहनना चाहिए। सीता विदेहपुत्री है और विदेह आत्मज्ञानी है। सीता ने न्हीं की शिक्षा ग्रहण की है। चलो अपन भी शिक्षा

रूपी कर्णफूल पहनने का निश्चय करें। अगर शिक्षा के कर्णफूल न पहिने तो इन दिखावटी कर्णफूलों का पहनना वृथा हो जाएगा। बाहर का बनाव सच्चा होता तो सीताजी उसका त्याग क्यों करतीं? बाहरी बनाव का त्याग करके और भीतरी बनाव को धारण करके आज वह कितनी भव्य, कितनी सौम्य और कितनी श्रद्धास्पद हो गई है! सीता को देखते हुए भी हम उनका अनुकरण न कर सकीं और बाहरी बनाव के लिए ही झगड़ती रहीं तो हमारा यह सौभाग्य भी निरर्थक हो जायगा। बाहर के शृंगार को जो नहीं छोड़ सकता, कदाचित् न छोड़े। मगर उसी को सब कुछ समझ लेना बड़ी नासमझी है। हमारी अन्तारात्मा में शील और संतोष का जो खजाना भरा पड़ा है, उसी को प्रकट करने की आवश्यकता है। उस पर अधिकार कर लिया जाय तो बाहरी आभूषण चाहे हों, चाहे न हों। फिर इनका कोई मूल्य नहीं है।

इस प्रकार सीता का सच्चा अनुकरण करने से ही हमारा मङ्गल होगा। हमें मोह त्याग कर ज्ञान की दृष्टि से सीता का स्वरूप देखना चाहिए।

सीता जब वन-वास के लिए निकली थीं तब के लिए कवि ने जो कल्पना की है, वह इस प्रकार है—कैकेयी की कुबुद्धि के कारण अयोध्या में आग-सी लग गई थी। सब ओर हाय-हाय की ध्वनि ही सुनाई देती थी। नगर की स्त्रियां

उस आग में जल रहीं थी। स्त्रियाँ सोचती थीं कि कैकेयी राजरानी के रूप में क्यों जन्मी, जिसने ऐसी आग लगा दी! कैकेयी की करतूत से सब स्त्रियाँ लज्जित हो रही थीं। उनकी आँखों से आँसू ऐसे निकल रहे थे जैसे कैकेयी की लगाई आग में पिघल कर चर्बी बाहर निकल रही हो। मगर सीता का शांत रूप देख कर स्त्रियों को ज्ञान हुआ। वे विचार करने लगी—जब इस आग की केन्द्र बनी हुई सीता स्वयं ही आग से संतप्त नहीं है, वह प्रसन्न और शान्त हैं तो हम क्यों दुखी हों? अगर कैकेयी आग की प्रचंड ज्वाला है तो सीता गंगा की शीतल धारा है। इस धारा में अवगाहन करने पर ज्वाला का असर नहीं रह सकता।

स्त्रियों में जो कोलाहल मचा हुआ था और कैकेयी को कोसा जा रहा था, सीता को देख कर शान्त हो गया। होली के दिन गालियां गाई जा रही हों और किसी के उपदेश से गालियां गाना बन्द हो जाय तथा उनकी जगह भक्ति के भजन गाये जाने लगें तो कैसा सात्विक परिवर्त्तन मालूम होगा। इसी प्रकार का परिवर्त्तन सीता को शान्त और प्रसन्न देख कर स्त्रियों की उस भीड़ में हो गया। स्त्रियां कहने लगी—सीता कैकेयी का उपकार मान रही हैं तो हम उन्हें अनुकरणीय समझती हुई भी उनके विचारों का अनुकरण न करें, यह मूर्खता होगी। इस प्रकार शांति तो हो गई, लेकिन स्त्री-स्वभाव में जो स्वाभाविक कोमलता है

उनके कारण बहुनों के आँसू बहते ही रहे। बहुत-सी फूल-सी सुकुमारी स्त्रियां सीता के सामने दोनों ओर खड़ी होकर आंसुओं से उनकी अर्चना करने लगीं।

सीता, राम और लक्ष्मण जिस मार्ग से जा रहे थे, उसके दोनों ओर पुरनारियों और पुरकन्याओं की कतारें खड़ी हो गईं। उनके नयन-कमलों के आंसू रूपी फूल सीता-राम को विदाई दे रहे थे।

कोई कहता था—वज्रहृदय कैकेयी ने राम का राज्य छीन लिया मगर हमारे हृदय पर उनका जो राज्य है, देखें उसे कौन छीन सकता है।

बहुत-से नर-नारी कहते थे—जहाँ राम रहेंगे, जहाँ सीता और लक्ष्मण रहेंगे, वहीं हम भी रहेंगे। हम इन्हें हर्गिज नहीं छोड़ेंगे। भरत अयोध्या की ईंटों पर—अयोध्या के खाली मकानों पर अपना शासन चलावे। हम वहीं अवध बना लेंगे जहां राम होंगे। इस प्रकार निश्चय करके अयोध्यावासी राम के पीछे-पीछे चलने लगे।

लक्ष्मण सोचने लगे—प्रजा को समझाना बहुत कठिन है। उन्होंने सीताजी की ओर देखा और संकेत करके कहा—जरा पीछे तो देखो। हम तो राम की सेवा के लिए उनके साथ वन जा रहे हैं, मगर इस प्रजा का क्या हाल है? लोग किस दुःख से दुखी हैं? भैया ने मुझे तो समझा लिया, लेकिन इस जनसमूह को किस प्रकार समझाएंगे!

सीता ने प्रजा की ओर दृष्टि फेरी। सब की आँखों से मोतियों की तरह आँसुओं की कतार गिर रही थी। इतने बड़े जनसमूह को रोते देख कर स्त्री के स्वभाव के अनुसार सीता का धैर्य छूट जाना अस्वाभाविक नहीं था, लेकिन जिसे संसार विभूति मानता है, जो महान् है और जो संसार को आदर्श समझाता है, वह कभी रोता नहीं है। महत्ता की यही पहचान है। साधारण मनुष्य संपत्ति में प्रसन्न हो जाते और विपत्ति में रोने लगते हैं, लेकिन महापुरुष किसी भी स्थिति में अपना धैर्य नहीं छोड़ते। 'होकर सुख में मग्न न फूले, दुख मे कभी न घबरावे' यह महापुरुषों का स्वभाव होता है।

सीता स्त्रियों के आदर्श को अन्तिम सीमा तक पहुँचाने वाली सती थी। बड़े जनसमूह को देख कर और कोलाहल सुन कर उसका हृदय पुलकित हो गया। सीता का हृदय हर्ष से भर गया। उनके हर्ष का कारण यह नहीं था कि इतने लोग वन में साथ रहेंगे और अकेली नही रहना पड़ेगा। प्रजा को साथ न रखने का विचार होने पर भी उसकी प्रसन्नता का कारण दूसरा ही था। सीता के रोम-रोम में पुनीत पतिभक्ति बसी हुई थी। उन्होंने सोचा—'मेरे पति आज अपने असाधारण स्वभाव के कारण इतने लोगों के हृदय में प्रवेश कर चुके हैं। धन्य हैं यह महापुरुष, जिन्हें लोगों की ऐसी श्रद्धा-भक्ति प्राप्त है। मेरे स्वामी की माता-पिता के प्रति भक्ति, आज्ञाकारिता और विनयशीलता धन्य

है, उनका भ्रातृप्रेम धन्य है और प्रजाप्रेम भी धन्य है। इन्हीं गुणों से खिंचे हुए नर-नारी उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। इन्होंने अवध का छोटा-सा राज्य त्याग कर प्रजा के हृदय पर कैसा आधिपत्य जमा लिया है! यह कोलाहल तभी तक है जब तक स्वामी बोलते नहीं हैं। उनकी मधुर वाणी सुनते ही लोग एकदम शांत हो जाएंगे। इस प्रकार का विचार करके सीता हर्षित हुई।

लोग कहते थे—'स्वार्थ तो सब में होता है लेकिन उसकी सीमा होती है। कैकेयी ने उस सीमा को भी भंग कर दिया। सीमा टूट जाने पर स्वार्थ क्या-क्या नीच काम नहीं करवा लेता! उसने एक राजरानी को भी इतना पतित कर दिया।

स्वार्थ ऐसे-ऐसे जघन्य कार्य करवाता है कि कहा नहीं जा सकता। खाचरौद (मालवा) की बात है। एक पिता ने अपना लड़का उसके मामा को सौंप कर कहा—इसे अपने साथ लेते जाना। उस लड़के के हाथ में दस-पांच रुपये के कड़े थे। कड़े देखकर मामा के मन में लालच आ गया। उसने भानजे को मार कर जंगल में गाड़ दिया और कड़े ले लिए। दस-पांच रुपयों के लिए मामा अपने भानजे की हत्या कर बैठा! यह स्वार्थ का नग्न स्वरूप है। स्वार्थ के वश होकर जरा-सी चीज के लिए भाई, अपने सगे भाई का प्राण लेने पर उतारू हो जाता है।

कैकेयी ने भी स्वार्थ की सीमा लांघ दी और राम ने भी

स्वार्थ-त्याग की सीमा का उल्लंघन कर दिया। एक ही साथ स्वार्थ और स्वार्थ-त्याग के उदाहरण यहाँ सामने आ जाते हैं। अब आप को कौन-सा उदाहरण ग्रहण करना है? अगर आपने राम का स्वार्थत्याग का उदाहरण अपना लिया तो राम की तरह ही आपका कल्याण होगा। अगर कैकेयी का अनुकरण किया तो कैकेयी की नाईं ही पश्चात्ताप की आग में जलना होगा। दोनों मार्ग आपके सामने हैं। जी चाहे जिस पर चल सकते हो। मनुष्य हो, विवेक को आगे करके चलो।

राम ने स्वार्थत्याग की पराकाष्ठा कर दी थी। कहाँ अयोध्या का राज्य और कहां वन-वास! किसी साधारण आदमी को ऐसी परिस्थिति में कितना कष्ट न होता! किसी का जूता गुम जाय और नंगे पैर चलना पड़े तब भी उसे कष्ट होता है, फिर राम का तो राज्य ही चला जा रहा था। उन्हें कितना कष्ट होना चाहिए था? मगर राम को देखो तो सही। उनका चेहरा वैसा ही शांत, वैसा ही सौम्य और वैसा ही गंभीर है, जैसा सदा रहता था। विषाद की कहीं रेखा तक नहीं है। शोक की छाया भी नहीं है। दुख का कोई चिह्न नजर नहीं आता। चेहरे पर कोई सिकुड़न नहीं, झुंझलाहट नहीं, दैन्य नहीं, संताप नहीं, क्रोध नहीं।

किसी वस्तु के जाने पर आपको दुःख होता है, मगर दुःख मनाने से क्या गई वस्तु आ जाती है? बल्कि अधिक [illegible] करने से अच्छी वस्तु और भी दूर पड़ जाती है। फिर

भी लोग दुःख मनाते हैं। यह नहीं सोचते कि वास्तव में जो मेरा है वह मेरे पास से जा नहीं सकता और जो जा सकता है वह मेरा नहीं है। जो वास्तव में मेरा नहीं है, उसके लिए मैं चिन्ता क्यों करूं ? प्रिय वस्तु के विछोह के समय हृदय से राम का स्मरण करो। तुम्हारी सब चिन्ताएं चूर-चूर हो जाएंगी और शांति मिलेगी। मत भूलो कि राज्याभिषेक के मंगल-मुहूर्त में वन-वास मिलने पर भी राम प्रसन्न ही बने रहे थे।

समुद्र वर्षा या गर्मी के कारण घटता-चढ़ता नहीं है। महापुरुष को 'सागरवरगंभीरा' की उपमा दी जाती है। इसका आशय यही है कि वे सुख के समय फूलते नहीं और दुःख के समय घबराते नहीं हैं।

जब राम वन को जाने लगे तो महाराज दशरथ ने कहला भेजा था कि राम, लक्ष्मण और सीता कम से कम नगर से पैदल न चलें—रथ में बैठकर जावें। मेरी अंतिम इच्छा को राम अवश्य स्वीकार करें।

प्रजा का सत्याग्रह

जो राम पिता की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए इतना त्याग करने के लिए तैयार हो गए थे, उनसे यह आशा कैसे की जा सकती थी कि वे पिता के इस छोटे से आदेश का पालन न करेंगे। यद्यपि उनकी इच्छा राज्य की किसी भी वस्तु का उप

योग करने की नहीं थी, तथापि पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने नगर में रथ पर सवार होकर निकलने का निश्चय किया। जैसे-जैसे राम का रथ आगे बढ़ता गया तैसे-तैसे प्रजा की अधीरता और व्याकुलता भी बढ़ती गई। आखिर कुछ लोगों का धैर्य समाप्त हो गया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि या तो राम को रोकेंगे या हम भी उन्हीं के साथ जाएंगे। इस प्रकार निश्चय करके सैकड़ों मनुष्य रथ के रास्ते में लेट गए। उन्होंने कहा-'अगर आपको जाना ही है तो रथ हमारी छाती के ऊपर से ले जाइए। अन्यथा या तो आप नहीं जा सकते या हम लोग भी साथ चलेंगे।

राम ने सारथी को रथ रोकने का आदेश दिया। रथ रोक दिया गया। प्रजा की ऐसी प्रीति देखकर गम्भीर राम का हृदय भी विचलित हो गया। कंठ गद्गद हो गया। मगर अवसर देखकर उन्होंने तत्काल अपने आपको सँभाल लिया। राम ने रथ को ही व्यासपीठ बनाया और उसके ऊपर खड़े होकर कहने-लगे प्रजाजनो! उठो। यह क्या कर रहे हो? तुमने यह क्या दृश्य उपस्थित कर दिया है? उठो और ध्यान से मेरी बात सुनो।

राम का यह कथन सुनकर प्रजाजन सोचने लगे-अगर हम लोग उठे और रास्ता साफ होने पर राम का रथ दौड़ गया तो हम क्या करेंगे? इस प्रकार विचार कर लोग पड़े-पड़े ही राम की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। राम ने

कहा–चाहे तुम उठकर सुनो, चाहे पड़-पड़ सुनो, पर सुनो। किसी भी तरह सुनो पर मेरी बात सुनो और उस पर विचार करो।

इतना कहकर प्रजाजनों को सम्बोधन करके राम बोले–क्या आप रो-रो कर हमें विदाई देना चाहते हैं? अपने इष्ट मित्र को क्या इसी प्रकार विदा किया जाता है? रो कर विदाई उसे दी जाती है जो वापिस लौटकर आने वाला न हो। क्या आप यह चाहते हैं कि हम लौट कर न आवें? अगर आपको हमारा वापिस आना अभीष्ट है तो आप हँसते हुए ही विदा दीजिए और अपने-अपने घर लौट जाइए। सब काम अवसर पर ही होते हैं। जाने के अवसर पर हम जा रहे हैं तो आने के अवसर पर लौट भी आएंगे। इसलिए आप चिन्ता और शोक त्याग कर लौट जाइए।

राम की बात सुनकर प्रजाजन कहने लगे–आपकी वाणी ने तो उलटा हमें ही अपराधी बना दिया। आपने हमें रोने के योग्य भी नहीं रक्खा। आप हम से हाथ छुड़ाकर जाते हैं और कहते हैं कि विदा के समय रोना नहीं चाहिए। लेकिन हमने आपको विदा ही कब दी है? हम लोग विदा देते हुए नहीं किन्तु विदा न देने के लिए रोते हैं। जैसे बालक रोकर अपनी माता से रोटी माँगता है, उसी प्रकार हम भी रोकर आपसे यह मांगते हैं कि आप अयोध्या का त्याग न करें। महाराजा ने आपको राजा चुना है और यह चुनाव प्रजा को भी इष्ट है।

भी लोग दुःख मनाते हैं। यह नहीं सोचते कि वास्तव में जो मेरा है वह मेरे पास से जा नहीं सकता और जो जा सकता है वह मेरा नहीं है। जो वास्तव में मेरा नहीं है, उसके लिए मैं चिन्ता क्यों करूं? प्रिय वस्तु के बिछोह के समय हृदय से राम का स्मरण करो। तुम्हारी सब चिन्ताएं चूर-चूर हो जाएगी और शांति मिलेगी। मत भूलो कि राज्याभिषेक के मंगल-मुहूर्त में वन-वास मिलने पर भी राम प्रसन्न ही बने रहे थे।

समुद्र वर्षा या गर्मी के कारण घटता-बढ़ता नहीं है। महापुरुष को 'सागरवरगंभीरा' की उपमा दी जाती है। इसका आशय यही है कि वे सुख के समय फूलते नहीं और दुःख के समय घबराते नहीं हैं।

जब राम वन को जाने लगे तो महाराज दशरथ ने कहला भेजा था कि राम, लक्ष्मण और सीता कम से कम नगर में पैदल न चलें—रथ में बैठकर जावें। मेरी अंतिम इच्छा को राम अवश्य स्वीकार करें।

प्रजा का सत्याग्रह

जो राम पिता की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए इतना त्याग करने के लिए तैयार हो गए थे, उनसे यह आशा कैसे की जा सकती थी कि वे पिता के इस छोटे से आदेश का पालन न करेंगे। यद्यपि उनकी इच्छा राज्य की किसी भी वस्तु का उप

योग करने की नहीं थी, तथापि पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने नगर में रथ पर सवार होकर निकलने का निश्चय किया। जैसे-जैसे राम का रथ आगे बढ़ता गया तैसे-तैसे प्रजा की अधीरता और व्याकुलता भी बढ़ती गई। आखिर कुछ लोगों का धैर्य समाप्त हो गया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि या तो राम को रोकेंगे या हम भी उन्हीं के साथ जाएंगे। इस प्रकार निश्चय करके सैकड़ों मनुष्य रथ के रास्ते में लेट गए। उन्होंने कहा-'अगर आपको जाना ही है तो रथ हमारी छाती के ऊपर से ले जाइए। अन्यथा या तो आप नहीं जा सकते या हम लोग भी साथ चलेंगे।

राम ने सारथी को रथ रोकने का आदेश दिया। रथ रोक दिया गया। प्रजा की ऐसी प्रीति देखकर गम्भीर राम का हृदय भी विचलित हो गया। कंठ गद्‌गद हो गया। मगर अवसर देखकर उन्होंने तत्काल अपने आपको सँभाल लिया। राम ने रथ को ही व्यासपीठ बनाया और उसके ऊपर खड़े होकर कहने-लगे प्रजाजनो ! उठो। यह क्या कर रहे हो ? तुमने यह क्या दृश्य उपस्थित कर दिया है ? उठो और ध्यान से मेरी बात सुनो।

राम का यह कथन सुनकर प्रजाजन सोचने लगे-अगर हम लोग उठे और रास्ता साफ होने पर राम का रथ दौड़ गया तो हम क्या करेंगे ? इस प्रकार विचार कर लोग पड़े-पड़े ही राम की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। राम ने

कहा—चाहे तुम उठकर सुनो, चाहे पड़े-पड़े सुनो, पर सुनो। किसी भी तरह सुनो पर मेरी बात सुनो और उस पर विचार करो।

इतना कहकर प्रजाजनों को सम्बोधन करके राम बोले—क्या आप रो-रो कर हमें विदाई देना चाहते हैं? अपने इष्ट मित्र को क्या इसी प्रकार विदा किया जाता है? रो कर विदाई उसे दी जाती है जो वापिस लौटकर आने वाला न हो। क्या आप यह चाहते हैं कि हम लौट कर न आवें? अगर आपको हमारा वापिस आना अभीष्ट है तो आप हँसते हुए ही विदा दीजिए और अपने-अपने घर लौट जाइए। सब काम अवसर पर ही होते हैं। जाने के अवसर पर हम जा रहे हैं तो आने के अवसर पर लौट भी आएंगे। इसलिए आप चिन्ता और शोक त्याग कर लौट जाइए।

राम की बात सुनकर प्रजाजन कहने लगे—आपकी वाणी ने तो उलटा हमें ही अपराधी बना दिया। आपने हमें रोने के योग्य भी नहीं रक्खा। आप हम से हाथ छुड़ाकर जाते हैं और कहते हैं कि विदा के समय रोना नहीं चाहिए। लेकिन हमने आपको विदा दी कब है? हम लोग विदा देते हुए नहीं किन्तु विदा न देने के लिए रोते हैं। जैसे बालक रोकर अपनी माता से रोटी माँगता है, उसी प्रकार हम भी रोकर आपसे यह मांगते हैं कि आप अयोध्या का त्याग न करें। महाराजा ने आपको राजा चुना है और वह चुनाव प्रजा को भी इष्ट है।

हम हृदय से आपको ही राजा मानते हैं। फिर हम लोगों की अवहेलना करके क्यों जा रहे हैं? प्रजा का अभिमन आपको नही ठुकराना चाहिए। आप अकेली कैकेयी के कहने से समस्त प्रजा की इच्छा विरुद्ध कार्य कैसे कर सकते हैं? क्या अयोध्या की समस्त प्रजा अकेली महारानी कैकेयी के मुकाबिले में कुछ नही है? क्या हम सब एक व्यक्ति के सामने तुच्छ हैं? नहीं जनमत का आदर आपको करना चाहिए। अपनी यात्रा स्थगित कीजिए और अयोध्या का राज्य सँभालिए।

मुख्य-मुख्य लोगों ने जब इस प्रकार कहा तब भी लोग रास्ते में लेटे रहे।

प्रजा को प्रतिबोध

राम कहने लगे-प्रजाजनो! तुम्हारी बात सुनकर मुझे तुम्हारे प्रति और अधिक प्रेम हुआ है। जिसे प्रजा का ऐसा प्रेम प्राप्त है वह भाग्यवान् है। मगर मै जानना चाहता हूँ कि प्रजा मुझ से प्रेम क्यों करती है? मै धर्म को और न्याय को अपने सामने रखकर कार्य करने का प्रयत्न करता हूँ। इसी कारण प्रजा मुझसे प्रीति करती है। अगर मै धर्म का पालन करना छोड़ दूँ तो क्या आप मुझे चाहेंगे? जिस धर्म के कारण आप मुझे चाहते हैं, मै उसी धर्म का पालन करने के लिए वन को जा रहा हूँ। वन न जाने पर मै धर्म से विमुख

हो जाऊंगा। क्या आप इसे पसंद करेंगे ? क्या आप मुझे धर्म से भ्रष्ट हुआ देखना चाहते हैं ? धर्म से पतित राम अगर आपके बीच में रहा भी तो आपका क्या गौरव है ? आप जिस धर्म की बदौलत मुझे चाहते हैं, उस धर्म का पालन करने के लिए मुझे सभी कुछ करना होगा--सभी कुछ सहना होगा। इसी में मेरा और आपका गौरव है। जिस धर्म के कारण आप मुझे मानते हैं, वही धर्म मुझसे छुड़वा रहे हैं, इसी को मोह कहते हैं। आप मेरे वियोग के दुःख से घबरा कर मेरे जाने का विरोध करते हैं। लेकिन धर्म-पालन के अवसर पर सब एक साथ नहीं रह सकते। विवाह के समय ग्रंथिबन्धन होता है। अगर वह जैसा का तैसा बना रहे-ग्रंथिमोचन न किया जाय तो काम नहीं चल सकता। इसी-लिए बांधी हुई गांठ खोल दी जाती है। लेकिन आप तो उस ग्रंथि को बंधी हुई ही रखना चाहते हैं। उचित यह है कि वह ग्रंथि हृदय में बनी रहे-स्नेह के रूप में पक्की होकर रहे, मगर शरीर से धर्म-पालन के लिए हटा दी जाय। मगर आप तो धर्म पथ को ही रोक रहे हैं। यह कैसे उचित हो सकता है ? मैं अधर्म करने जाता होऊं तो आपको रोकने का अधिकार है--बल्कि ऐसा करना आपका कर्त्तव्य है मगर धर्मपालन में रुकावट डालना उचित नहीं है। मेरी जगह आप होते तो क्या करते ? आप धर्म का पालन करते या कष्टों से घबरा कर धर्मविमुख हो जाते ? जिस धर्म का पालन

करना कठिन माना जाता है, उसके पालन करने का मुझे सहज ही योग मिला है। फिर सहज सुयोग पाकर कौन विवेकी धर्म नहीं पालेगा ?

आप माता कैकेयी को वृथा दोष देते हैं। यह तो मेरे सद्भाग्य का ही फल समझिए कि अचानक सत्कर्म करने का अवसर मुझे मिल गया है। नहीं तो कौन जानता था कि मुझे यह अपूर्व लाभ मिलेगा ? माता कैकेयी को आप भी धन्यवाद दीजिए, जिनकी कृपा से मुझे धर्मपालन का अवसर मिल सका है।

प्रजाजनो! मै रूठ कर वन नहीं जा रहा हूँ। न भय से, न दुर्बलता से और न स्नेह-रहित होकर ही जा रहा हूं। क्या आपको यह अभीष्ट होगा कि पिताजी की प्रतिज्ञा असत्य साबित हो ? आप हम भाइयों में आपसी कलह होना पसंद करेंगे ? मैं चाहूँ तो अभी-अभी राज्य पर अधिकार कर सकता हूँ, मगर पिता का और धर्म का न होने वाला राम क्या प्रजा का होगा ? और फिर ऐसे धर्मत्यागी अयोग्य पुरुष को आप राजा बनाना अच्छा समझेंगे ?

इसके अतिरिक्त भरत मेरा भाई है। वह आपका राजा हुआ है। उसमें राजा होने की सब योग्यताएँ हैं। अगर वह योग्य न होता तो मैं माता के प्रस्ताव का घोर विरोध करता। आप नहीं जानते कि भरत कौन है ? भरत को जब आप ॰ भाँति पहचान जाएंगे तो उसके राजा होने पर आपको

उतनी ही प्रसन्नता होगी, जितनी मेरे राजा होने पर होती। मुझमें और भरत में कोई भेद नहीं है। प्रेम और भक्ति में जो संबंध है वही मुझमें और भरत में है। भरत और राम एक ही मूंग के दाने की दो फाड़ हैं। अगर आपको मुझ पर विश्वास है और आपने मुझे राजा चुना है तो आपको मेरी बात मानना चाहिए। मैं कहता हूँ—आपका राजा भरत है। आप भरत को ही अपना राजा समझें। अगर आप ऐसा नहीं करते तो मैं समझूंगा कि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा भाई भरत मेरी ही तरह प्रजा का पालन करेगा। इसीलिए आप उठें और रथ आगे बढ़ने दें। मुझे आशीर्वाद दें कि वन में मैं अपना कर्त्तव्य पालन कर सकूं। आप सब की सद्भावनाओं से वन के कांटे भी मेरे लिए फूल हो जाएंगे।

राम ने प्रजा का आशीर्वाद मांगा है। अब विचारणीय यह है कि राम बड़े हैं या प्रजा बड़ी है? अगर प्रजा बड़ी न होती तो राम प्रजा का आशीर्वाद क्यों मांगते? वास्तव में संघ की शक्ति बड़ी मानी जाती है। संघ के होने पर ही तीर्थंकर हो सकते हैं। इसीलिए राम ने प्रजा का आशीर्वाद मांगा है।

विवाह के समय सगे-सम्बन्धी बुलाये जाते हैं। इनका प्रयोजन भी आशीर्वाद प्राप्त करना है। उन सब के आशीर्वाद से विवाह और विवाहित जीवन में आनंद, कुशल [illegible]

आशा से उनसे आशीर्वाद लिया जाता है।

राम ने प्रजाजनों से कहा—मित्रो ! उठ खड़े होओ। धर्म के मार्ग मे विघ्न मत डालो। मै यह आशा रखता हूं कि आपकी शुभ कामनाओं से वन के कांटे भी फूल बन जाएं और आप स्वयं ही काँटे बन रहे है ! यह उचित नहीं है। धर्म का मार्ग मत रोको।'

'आप कहते हैं-हम क्या करे ? इस संबंध में मेरा यही कहना है कि अगर आप मुझसे प्रेम करते है तो धर्म से भी प्रेम करो। धर्म के मार्ग पर ही चलो। मै पिता का ऋण चुकाने के लिए वन को जाता हूँ। पिता का ऋण आपके ऊपर भी है या नहीं ? आप पर भी है और आप भी उसे उतारने का प्रयत्न करते रहें। पितृ-ऋण चुकाने में जो कठिनाइयां आवे उन्हें सहर्ष सहन करो। भोग-विलास का जीवन त्याग कर त्यागमयी प्रकृति बनाओ। तुच्छ स्वार्थों के लिए भाई के साथ मत लड़ो पिता को पूर्ण शान्ति और सुख मिले, ऐसे उद्योग करो। ऐसा करने पर मै आपके पास ही हूँ। आपने इतना किया तो मै समझूंगा कि आप मुझसे सच्ची प्रीति करते है।

मित्रो ! आप राम का चरित सुन रहे है। राम की इस बात पर विचार करके आपको भी त्याग अपनाना चाहिए। त्यागमय आचरण से मनुष्य का जीवन धन्य बनता है। राम का यह त्याग साधारण नहीं था परन्तु भगवान् महावीर का इससे भी कई गुना अधिक था। आप उनकी सन्तान

है। फिर भी आप भोगों के कीड़े बने रहे और भोग-विलास की सामग्री के लिए परस्पर लड़ते-झगड़ते रहे तो यही कहा जायगा कि आपने न राम को पहचाना है और न महावीर को ही जाना है। बहिनों से भी यही कहना है कि सीताजी ने जिन गहनों को हँस कर त्याग दिया था, उन गहनों के लिए तुम आपस में कभी मत लड़ो। जब आत्मा सद्गुणों से अलंकृत होता है तो शरीर को विभूषित करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। सीता और राम के प्रति आपके हृदय में इतनी श्रद्धा क्यों है? उन्होंने त्याग न किया होता तो जो गौरव उन्हें मिला है, वह कभी मिल सकता था? त्याग के बिना कोई किसी को नहीं पूछता।

प्रजाजनों पर राम के वक्तव्य का तत्काल प्रभाव पड़ा। लोग सोचने लगे—जब हम राम को चाहते हैं तो राम की बात हमें माननी ही चाहिए। अगर हम राम की तरह वीर नहीं बन सकते तो कम से कम कायर तो नहीं बनना चाहिए। राम धर्म के लिए वन जा रहे हैं। उसमें विघ्न डालना उचित नहीं है।

इस प्रकार विचार कर लोग खड़े हुए और मार्ग के दोनों किनारे खड़े हो गये। राम के वचनों के जादू से वे उठ तो गए मगर उनके हृदय का दुःख दूर नहीं हुआ। वरन यह सोचकर कि राम का रथ पार आगे बढ़ता जा रहा है और थोड़ी देर में वह आँखों से ओझल हो जाएगा, उनकी व्याकुलता

बेहद बढ़ गई। सब लोग मौन हो रहे। चिन्तित भाव से, राम की ओर दृष्टि जमा कर लोग खड़े हो गए। आज प्रजा ने राम का नवीन रूप देखा। जिन राम का राज्याभिषेक होने वाला था, वह राम मानो इनसे अलग है।

राम ने विचार किया कि अब विलम्ब करना उचित नहीं है। थोड़ी-सी देर में ही प्रजा का मोह फिर भड़क उठेगा। तपे हुए लोहे पर चोट लगने से चीज़ बन जाती है। देर करने से वह ठंडा हो जाता है और चीज़ बनाने के लिए फिर उसे गर्म करना पड़ता है।

राम ने सारथी को रथ बढ़ाने की आज्ञा दी। रथ आगे बढ़ा और राम सब की शुभकामनाएं साथ लेकर वन की ओर रवाना हुए। अयोध्या से बाहर कुछ दूर जाकर राम ने रथ रुकवाया। सारथी से कहा—'अब हमें रथ की आवश्यकता नहीं है। हम पैदल ही वन में भ्रमण करेंगे। रथ हमारे लिए उपाधि है। अतएव तुम रथ को लौटा ले जाओ।

इतना कह कर राम रथ से उतर पड़े। लक्ष्मण भी उतरे और फिर सीता उतरी। सारथी और रथ के घोड़े आंसू बहाने लगे। उन्होंने सोचा होगा—हाय, यह निष्ठुर कार्य हमें ही करना पड़ा! हम राम को वन में भेजने के निमित्त बने! सारथी ने कहा—दीनबन्धु! नहीं जानता किस पाप के उदय से मुझे यह जघन्य कृत्य करना पड़ा है! आपको वन भेजने का निमित्त मैं भी हुआ। मैं लौटकर जाऊंगा

और लोग कहेंगे कि यह सारथी राम को वन में छोड़ आया है तो मै उन्हें किस प्रकार मुँह दिखलाऊँगा ?

राम ने सान्त्वना देते हुए कहा—चिन्ता मत करो सारथी, तुम्हें पाप नहीं धर्म का फल मिला है। मुझ पर कोई मिथ्या दोषारोपण किया गया होता और उसका दण्ड भोगने के लिए मुझे वनवास करना पड़ता और तुम मुझे छोड़ने आए होते तो चाहे दोष के भागी होते। मगर हम तो धर्म-कार्य के लिए वन में आये हैं। इसलिए तुम्हें दोष नहीं होगा, धर्म का फल मिलेगा।

लोग समझते हैं कि हमने रथ और घोड़ों पर अधिकार कर लिया है, मगर देखा जाय तो अधिकार करने वाला व्यक्ति रथ आदि की परतन्त्रता स्वीकार करके स्वयं उनके अधिकार में चला जाता है। जब तक वह उन्हें पकड़े है, स्वेच्छापूर्वक कहीं जा नहीं सकता।

राम कहते हैं—सारथी ! तुम रथ लौटा ले जाओ। रथ ले जाने पर तुम मुझे बन्धन से छुड़ाने वाले होगे। चिन्ता और शोक मत करो। शरीर रूपी रथ और इन्द्रियाँ रूपी घोड़े भी मै त्यागना चाहता हूँ। मै इन्हें मन रूपी सारथी को सौंप देना चाहता हूँ। ऐसी स्थिति में तुम इस रथ के लिए क्यों चिन्ता करते हो ?

सारथी अपने प्राणाधिक स्वामी को जिस स्थिति में त्याग रहा है, उससे शोक होना स्वाभाविक है। फिर भी

सारथी को इस बात का संतोष है कि यहाँ तक रथ लाने के उपलक्ष्य में मुझे राम के कुछ उपदेश-वाक्य सुनने को मिल गए। यद्यपि राम के विरह से उसका हृदय जल रहा था, फिर भी राम के शांतिदायक वचन सुन कर उसे संतोष भी हुआ। सारथी अत्यन्त अनमने भाव से रथ लेकर नगर की ओर लौट पड़ा।

जैन रामायण मे इस प्रसंग का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। उसमें यह भी लिखा है कि अनेक सामन्त और सरदार आदि अनेक प्रकार से समझाने-बुझाने पर भी नहीं माने और राम के साथ-साथ चले और बहुत दूर तक गये। आखिर राम ने उन्हें विदा दी। उन सामन्तों को राम के वन-गमन से इतना अधिक विषाद हुआ कि उन्हें संसार का वैभव तृण के समान तुच्छ प्रतीत होने लगा। राम के वियोग में उन्होंने खूब विलाप किया। अन्त में कई-एक सामन्तों ने विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

वास्तव में राम का चरित बड़ा विशाल है और वर्णन करने योग्य भी है। पर उस विस्तृत वर्णन में उतरने का अवकाश न होने के कारण मै चरित्र के ब्यौरे मे उतरना नहीं चाहता। राम-चरित की एक मुख्य घटना को ही मै चित्रित करना चाहता हूँ। साथ ही उससे फलित होने वाला आशय जनता के सामने रखना चाहता हूँ। अतएव ब्यौरे की बातों पर प्रकाश न डालने के लिए पाठक क्षमा करें।

अवध को श्रद्धाञ्जलि ।

सारथी के चले जाने पर राम ने अवध की ओर भावभरी दृष्टि डाली। फिर सीता और लक्ष्मण से कहा—इस सुहावने अवध को प्रणाम करो। मोती समुद्र में उत्पन्न होता है। वह चाहे कहीं जाय फिर भी कहलाता है समुद्र का ही। समुद्र का मोती समुद्र में ही रहे तो उसकी कीमत नहीं होती। बाहर निकलने पर ही उसकी कीमत कूँती जाती है और उसकी बदौलत समुद्र की प्रशंसा होती है। समुद्र को 'रत्नाकर' की पदवी और कैसे मिली है? मैं इस अवध-समुद्र में उत्पन्न हुआ हूँ। कहीं भी जाऊँ, कहलाऊँगा अवध का ही। मगर अवध का गौरव बढ़ाने के लिए मुझे अवध से बाहर निकलना ही चाहिए। हे अवध, हम तेरे हैं और तेरे ही रहेंगे तथापि तेरा गौरव बढ़ाने के लिए तुझसे बिछुड़ते हैं।

राम कहते हैं—हे अवध! मोती की कीमत पानी से होती है। तू ने मोती की तरह मुझे उत्पन्न किया है और मुझे पानी दिया है। तू ने मुझे दया का पानी दिया है। इस पानी का बहुत महत्व है। तू ने दया का जो अंकुर मेरे अन्तःकरण में उत्पन्न किया है वह उन दीन, हीन, गरीब और मूक जीवों पर छाया करेगा। जो सताये जा रहे हैं—मारे जा रहे हैं वे तेरी दी हुई दया की छाया पाएँगे और उनकी रक्षा होगी।

साथ ही जो लोग उन निरपराध प्राणियों का घात करते हैं उन्हे भी दया के उस अंकुर की शीतल छाया मिलेगी। वे हत्या के पाप से बच सकेंगे। इस प्रकार मरने वाले और मारने वाले —दोनों की रक्षा करने के लिए, तेरा यह पुत्र—राम रूपी मोती—दया का पानी लेकर बाहर निकल रहा है।'

'हे अवध ! तू ने दया के पानी के साथ मुझे प्रेम का भी पानी दिया है। प्रेमहीन दया लँगड़ी होती है। वह एक ओर दया करती है और दूसरी ओर हत्या भी करती है। प्रेम के बिना दया का विकास नहीं होता। किसी दुर्बल और दीन भिखारी को रोटी का टुकड़ा दे देना दया है, मगर प्रेम के अभाव में यह विचार नहीं किया जाता कि यह इस स्थिति से किस प्रकार ऊपर उठ सकता है ! जहाँ दया प्रेम के साथ होगी वहाँ रोटी का टुकड़ा दे देना ही बस नहीं समझा जायगा, वरन् उस दीन दुखिया के भविष्य का भी विचार किया जायगा। इस कारण प्रेमयुक्त दया ही परिपूर्ण होती है। प्रेमपूर्ण दया से युक्त माता अपने बालक के साथ जैसा सलूक करती है वैसा ही सलूक प्राणी मात्र के साथ करने वाला पुरुष सच्चा दयालु है। हे अवध, मै ऐसी ही दया करने जा रहा हूँ, जिससे प्राणी मात्र के हृदय में बस जाऊँ।'

राम कहते हैं—हे अवध ! तुझ से तीसरा पानी मुझे न्याय का मिला है। प्रेम में अन्धा होकर मनुष्य कभी-कभी न्याय को भूल जाता है। जिस पर उसका प्रेम होता है

उसके लिए दूसरों के प्रति अन्याय भी कर बैठता है। लेकिन मै प्रेम के साथ न्याय का भी विचार रक्खूँगा। मै सारे जगत् को विशाल न्याय का सिद्धांत समझाना चाहता हूं। प्रेम होने पर भी मै कभी अन्याय नहीं करूंगा।

न्याय करने की भावना जीवन-विकास का मूल मंत्र है। प्रिय से प्रिय जन चाहे छूटता हो, मगर न्याय नहीं छोड़ना चाहिए। आप भी राम की तरह संकल्प करो कि मैं कदापि अन्याय नहीं करूँगा।

राम कहते हैं—'जगत् में जो अन्याय फैल रहा है, उसे मिटा कर न्याय की प्रतिष्ठा करना और प्रचार करना मेरे प्रवास का हेतु होगा।'

'हे अवध ! न्याय के पानी के साथ विनय और नम्रता का भी पानी मुझे मिला है। संसार में आज जहाँ-तहाँ उद्दण्डता दिखाई दे रही है। लोग नम्रता और विनय को भूल रहे हैं। माता-पिता तक का विनय नहीं करते ! अतएव मैं विनय और नम्रता भी फैलाऊँगा।'

राम विनीत न होते तो कैकेयी जैसी माता को प्रणाम करने न जाते। उनकी विनयशीलता ने ही उन्हें कैकेयी के चरणों में झुकाया था। वास्तव में जो अपने से बड़े हैं, उनका विनय करना ही चाहिए।

गुणी जनों को वन्दना, अवगुण जान मध्यस्थ।
दुखी देख करुणा करे, मैत्री भाव समस्त ॥

बड़ों को वन्दना करना उचित है। उसमें बराबरी नहीं

की जाती कि वह मुझे वन्दना करे तो मै उसे वन्दना करूँ। जो जिसे श्रेष्ठ समझता है उसे उसका विनय करना साधारण कर्त्तव्य है।

राम कहते हैं—हे अवध! तू ने मुझे विनय का पानी दिया है। उसका महत्व बताने के लिए मै जा रहा हूँ। तू ने मुझे सदाचार का भी पानी दिया है। लोग कहते हैं, द्रव्य होने पर ही सदाचार का पालन हो सकता है, अन्यथा सदाचार भुला दिया जाता है। यह विचार भ्रमपूर्ण है, यह बात मै अपने व्यवहार से सिद्ध करूँगा! मै अकिंचन होकर जा रहा हूँ। सिर्फ सदाचार की सम्पदा मेरे पास है और यही मेरे लिए काफी भी है। कोई कितना ही क्यों न गिर गया हो, अगर उसका नैतिक पतन नहीं हुआ है तो वह एक न एक दिन उन्नत हो जायगा। इसके विपरीत, जिसमें सदाचार नहीं है वह चाहे चक्रवर्त्ती हो तो भी उसका पतन अवश्यंभावी है। किसी भी मनुष्य का पतन होने से पहले उसके सदाचार का पतन होता है। सदाचार मनुष्य की अक्षय निधि है। अतएव सदाचार का महत्व बतलाने के लिए मै कोई कसर नहीं रक्खूँगा।'

'हे अवध! सदाचार का महत्व बताने के साथ मै लोगों को स्वत्व का भी महत्व बतलाऊँगा। आज स्वत्वविहीन लोग दुःख से परतंत्र होकर जीवन बिता रहे हैं। लेकिन मैं बतलाना चाहता हूँ कि वन में रहते हुए भी स्वत्व किस

प्रकार क़ायम रक्खा जा सकता है।

शरीर पाँच भूतों का सम्मिश्रण कहलाता है। इसमें एक भूत वायु है। अगर श्वास न चले तो शरीर निर्जीव हो जाता है और श्वास-वायु है। शरीर में दूसरा तत्त्व जल है। शरीर में जितना रस भाग है वह सब जल तत्त्व है। तीसरा अग्नि तत्त्व है। शरीर में अग्नि न हो तो रोटी न पचे। चौथा तत्त्व या भूत पृथ्वी है। चमड़ी, हड्डी आदि जितना भी ठोस भाग है वह सब पृथ्वी तत्त्व है। पाँचवाँ भूत आकाश है। शरीर का पूरा ढाँचा आकाश में ही है और इस ढाँचे के भीतर भी आकाश है। इन पाँच तत्त्वों के विषय में राम अवध को लक्ष्य करके कहते हैं:—

राम कहते हैं'—हे अवध ! मै तुझे त्याग नहीं सकता। मै त्यागूँ भी तो किस प्रकार ? मेरे शरीर में तेरे ही समीर का श्वास है। तेरा स्वच्छ और पावन पवन (श्वास) मेरे साथ है, जो प्राण के रूप में मुझमें व्याप रहा है। मै जब तक श्वास लूँगा, यह स्मरण करता रहूँगा कि यह श्वास अवध का है।'

जब आप श्वास लेते हैं तो आपको अपने माता-पिता का स्मरण आता है या नहीं ? अगर नहीं आता तो आप अपने माता-पिता को ही भूल रहे हैं। तब देशको क्या याद रक्खेंगे ! राम कहते है कि मै जब तक श्वास लेता रहूँगा, याद रक्खूंगा कि यह श्वास अवध का ही है। आप कह सकते हैं कि अवध का पवन और श्वास तो अवध में ही रह जाएगा। वह

के साथ कैसे जाएगा ? राम जहा जाएंगे, वहीं के पवन से श्वास लेंगे ! फिर वह श्वास अवध का कैसे रहा ? इसका उत्तर यह है कि वैज्ञानिकों के कथनानुसार बारह वर्ष में शरीर के सब पुद्गल बदल जाते हैं। इस कथन को सही मान लिया जाय तो आपके शरीर के परमाणु कई बार बदल गये हैं। फिर भी आपका शरीर क्या माता-पिता का दिया हुआ नहीं है ? परमाणु चाहे कितनी बार बदल जाए मगर मूल पूँजी तो माता-पिता की दी हुई ही है। अतएव परमाणु बदल जाने पर भी यही कहा जायगा कि यह शरीर माता-पिता का दिया हुआ है। इसी प्रकार राम का कहना है कि मेरा मूल श्वास तो अवध का ही है। वहाँ मेरे शरीर में प्राण का संचार हुआ है। भूलने वाले तो माता की गोद में बैठे हुए भी माता को भूल सकते है परन्तु सपूत उसी को समझना चाहिए जो प्रत्येक श्वास मे उसे याद रखता है।

यही बात परमात्मा के स्मरण के संबंध में भी समझनी चाहिए। परमात्मा का भी प्रत्येक श्वास में स्मरण करना चाहिए।

दम पर दम हरि भज,
नही भरोसा दम का।
एक दम में निकल जावेगा,
दम आदम का ।
दम आवे न आवे इसकी,

आश मत कर तू ।
नर ! इसी नाम से तर जा,
भव—सागर तू ।
एक नाम साईं का जप,
हिरदे में धर तू ।
बड़ा अदल पडा इन्साफ,
जरा तो डर तू ।

इस प्रकार प्रत्येक श्वास में परमात्मा का स्मरण रहने पर ही समझा जा सकता है कि परमात्मा भुलाया नहीं गया है।

राम कहते हैं कि मै अवध का श्वास नही भूलूँगा। इसका तात्पर्य यह है कि मुझे अवध से दया, प्रेम, सत्य, आदि जो सद्गुण मिले हैं, उन्हें नहीं भूलूँगा।

राम ने फिर कहा-हे अवध ! मेरा यह शरीर तेरे ही जल से बना है। अतएव अब लाख जल बाहर से मिलने पर भी मै तुझे नही भूल सकता हूँ। हे अवध माता ! मेरे श्वास में अवध का पवन है और अवध की ही अग्नि है। अवध की अग्नि से ही मेरा श्वास गर्म है। इसलिये तुझे कैसे भूल सकता हूँ ? हे माता ! तेरे यहां का आकाश चाहे छूट जाए पर तेरे आकाश से मैंने जो अनासक्ति का गुण ग्रहण किया है वह सदैव मेरे साथ रहेगा और जब तक वह मेरे साथ रहेगा तब तक मै अवध को कैसे भूलूँगा ?

आकाश अनासक्त है। कोई उसे रंगना चाहे तो वह रंगा नहीं जा सकता। वह किसी की पकड़ में भी नहीं आ सकता। यही तो अनासक्ति है।

राम कहते हैं—मैंने अवध के आकाश से ही अनासक्ति का सद्गुण सीखा है। मैं कहीं आसक्त होकर फँसना नहीं चाहता। आसक्त पुरुष जगल मे भी फँस सकता है और अनासक्त पुरुष रंगमहल में भी आकाश की तरह अलिप्त रह सकता है।

राम कहते हैं-'हे अवध भूमि! मै तुझे तज नही रहा हूँ। तेरा स्वभाव अचल है। तू किसी बड़े तूफान से भले ही कपित हो जाय, अन्यथा तेरा स्वभाव निश्चल है। तेरा यह स्वभाव मुझे भी मिला है। इस देन के लिये मै सदैव तुझे स्मरण रक्खूंगा'।

निश्चलता पृथ्वी से सीखी जा सकती है। कितने ही आघात हों, पृथ्वी अचल बनी रहती है। पृथ्वी में यह विशेष गुण है। पर पृथ्वी बड़ी है या पृथ्वीपति बड़ा है? अगर पृथ्वी बड़ी है तो यह अर्थ निकला कि पुरुष बड़ा नहीं है, स्त्री बड़ी है। अगर पुरुष बड़ा है तो उसमे पृथ्वी से अधिक निश्चलता होनी चाहिये। जो पुरुष पृथ्वीपति होकर पृथ्वी के बराबर भी अचल नहीं बना है, उसे क्या कहा जाय!

सीता में कितनी निश्चलता थी! प्रतापी रावण के सामने टिका रहना कोई साधारण बात नहीं थी। लेकिन सीता

पर्वत की तरह अचल रही।

राम फिर कहने लगे-हे अवधभूमि ! मै तेरी ही गोदी में पला हूँ, तेरी ही गोद में खेला हूँ, तेरी ही गोद में गिरा हूँ और उठकर चला हूँ, तेरा सहारा लेकर ही मैंने चलना-फिरना सीखा है। इसलिये तू मेरी है और मै तेरा हूँ। तू सदा मेरे साथ ही रहेगी। मै किसी भी दशा में तुझे भूल नही सकता। तूने मुझे जो साहस दिया है, उसी के वल पर मै इस कठिन पथ पर चलने को उद्यत हुआ हूँ और लोभ-मोह मुझे छल नहीं सके हैं।

कमल के पत्ते को चाहे जितनी देर जल में रखा जाय, जब निकलेगा सूखा ही निकलेगा। कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता। उसमें यह गुण कहीं दूसरी जगह से नहीं, उसी जल से आया है। उस जल ने ही कमल में ऐसा गुण उत्पन्न कर दिया है। राम कहते हैं-मै अवधभूमि में पला, खेला और वड़ा हुआ। उसी भूमि के प्रताप से मुझमें यह साहस हुआ कि मै उसका भी मोह त्याग दूँ-उसमे लिप्त न होऊँ।

राम कहते हैं-हे अवध माता ! मै तुझे किस दृष्टिसे देखूँ ? वास्तव मे मै वड़ा नहीं, तू वड़ी है। तू हम सूर्यवंशियों की पूर्व दिशा है। पूर्व दिशा ही सूर्य को जन्म देती है। परमात्मा की स्तुति करते हुए कहा गया है-

सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ।

नक्षत्र और तारे तो सभी दिशाओं मे उत्पन्न हो जाते हैं किन्तु सूर्य को जन्म देने वाली एक मात्र पूर्व दिशा ही है।

राम कहते है-हे अवध माता! दूसरों को जन्म देने वाली तो बहुत होंगी किन्तु हम सूर्य-सन्तानों को जन्म देने वाली तो तू ही है। तू हमारी अधिष्ठात्री है। हमारी देवी है। जो पूर्व से नहीं जन्मा है वह सूर्य होने का गौरव नहीं पा सकता। इसी प्रकार मैने अयोध्या मे जन्म न लिया होता तो मेरा भी गौरव न बढ़ता। सूर्य पूर्व दिशा में उत्पन्न हो करके पूर्व दिशा में ही नहीं बैठा रहता, वह दूसरी दिशा में जाता है। इसी प्रकार मै भी अन्यत्र जा रहा हूँ। इसी से तेरा गौरव है। मैं जहाँ कहीं भी जाऊँगा, तेरी कीर्ति बढ़ाऊँगा।

एक व्यक्ति सारे देश को सुख्यात भी कर सकता है और कुख्यात (बदनाम) भी कर सकता है। सुना है, एक भारतीय ने लन्दन की किसी लाइब्रेरी में जाकर एक चित्र चुरा लिया था। परिणाम यह हुआ कि उस लाइब्रेरी मे भारतीयों का प्रवेश करना निषिद्ध ठहरा दिया गया। इस प्रकार एक भारतीय ने समस्त भारतवासियों को बदनाम कर दिया।

आप इस देश में जन्मे हैं। अगर आपमें इसकी ख्याति बढ़ाने की योग्यता नहीं है तो इतना तो करो कि आपके

किसी व्यवहार से इसकी बदनामी न हो। बहुत से लोग अविवेक के कारण ही देश और धर्म को बदनाम करते हैं। उन्नत होने का आधार विवेक है। अतएव विवेक प्राप्त करो। विवेक से आपकी भी उन्नति होगी और देश की भी कीर्ति बढ़ेगी।

राम कहते हैं—हे अवध ! तूने मुझे मनुष्यत्व की मर्यादा दी है। तू मनुष्यता की धात्री है। तुझसे मिली मर्यादा को मैं संसार के सामने रखना चाहता हूँ और बता देना चाहता हूँ कि अवध से मुझे कैसी मर्यादा मिली है। तुझसे सीखे हुए मनुष्यत्व का आदर्श उपस्थित करके मैं संसार से राक्षसी प्रकृति भगाना चाहता हूँ।

हे अवध ! तू एक प्रकार की चित्रशाला है। तेरे भीतर अनेक चित्रकार अपने भावों के चित्र बना गए हैं। जिस चित्रशाला में कलापूर्ण सुन्दर चित्र होते हैं उसमें और लोग भी चित्र बनाने की इच्छा रखते हैं। तेरे अन्दर हमारे पूर्वजों ने अपने भावों के जो चित्र बनाये हैं, उन्हें देखकर मैं भी एक नया चित्र अंकित करना चाहता हूँ। तू भगवान् ऋषभदेव के समय से चित्रशाला बनी हुई है। अनेक बलदेव, वासुदेव तीर्थंकर आदि महापुरुष अपने-अपने चित्र खींच चुके हैं। उन सब चित्रों को दृष्टि के सामने रखकर मैं भी एक चित्र बनाने का प्रयत्न करूँगा।

माता अवध ! तू सिर्फ चित्रशाला ही नहीं है वरन् एक

नाट्यशाला भी है। इस नाट्यशाला में अनेक अभिनय हो चुके हैं। तेरे रंगमंच पर एक-एक अभिनेता ने ऐसा ऐसा अभिनय किया है कि इन्द्र भी दंग रह गया है। अब मैं एक बाल-नट भी इसी रंगभूमि में प्रवेश करता हूं। यहां के पूर्ववर्ती अभिनेताओं ने हँसते २ राज्य त्याग दिया था और आज मैं भी अपना राज्य अपने भाई के पक्ष में त्याग आया हूँ। देखो मै अभिनय में कितना सफल होता हूं!

हे अवध! तू एक पाठ्यपुस्तक है, जो बतलाती है कि आर्य पुरुष के कर्त्तव्य कैसे होने चाहिए! तू आर्य जाति के कुल-कर्म को दिखलाने वाली पाठ्यपुस्तक है।

जो हेय-त्याज्य कामों से दूर रहता है उसे आर्य कहते हैं। कागज़ की पुस्तक तो सड़-गल भी जाती है, पर तू ऐसी नहीं है। तेरे एक-एक पृष्ठ पर ध्रुव धर्म की छाप लगी हुई है, जैसे पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर पुस्तक का नाम लिखा रहता है। तेरे पृष्ठों पर जिन आर्य पुरुषों का चरित्र लिखा गया है, उनसे स्पष्ट है कि आर्य कुल में सभी कुछ त्याज्य हो सकता है, पर धर्म त्याज्य नहीं है।

हे अवध! मै कहीं भी रहूं मगर मेरा पालना तो यहीं है। बालक इधर उधर फिरकर आखिर पालनेमें बैठता है, उसी प्रकार मै भी अवध में आऊंगा! संसार के लिए मै कितना ही बड़ा हो जाऊं, तेरे समीप तो बालक ही रहूंगा।

भील का बालक भी पालने में झूला होगा; गरीब से

गरीब माता भी अपने बालक के लिए झोली बना देती है। माता का बनाया पालना सदा बालक के साथ नहीं रहता। बालक घूमता-फिरता है और पालना एक जगह स्थायी रहता है। फिर भी बालक उसे भूल नहीं सकता। इसीलिए राम कहते हैं कि मै चाहे जहाँ रहूँ मगर मेरा पालना अवध ही है।

ज्ञानियों का कथन है कि बालक का जितना सुधार पालने में होना है, उतना और कहीं नहीं होता। मान लीजिए किसी वृक्ष का अंकुर अभी छोटा है। वह फल-फूल नहीं देता। उस अंकुर से लाभ तो फल-फूल आने पर ही होगा, लेकिन फल-फूल आदि की समस्त शक्तियाँ उस अंकुर में उस समय भी अव्यक्त रूप में मौजूद रहती हैं। अंकुर अगर जल जाय तो फल-फूल आने की कोई क्रिया नहीं होती। इसी प्रकार बालक में, मनुष्य की सब शक्तियाँ छिपी हुई हैं। योग्य दिशा में उसका विकास होने पर समय पाकर उसकी शक्तियाँ खिल उठती हैं। मगर बालक को पालने में डाल कर दबा रखने से उसका विकास नहीं होता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक जगह लिखा है कि पाँच वर्ष तक के बालक को सिले कपड़े पहनाने की आवश्यकता नहीं है। इस अवस्था में बालक को कपड़ों से लाद देने का परिणाम वही होता है जो अंकुर को ढाँक रखने से होता है। बालक स्वयं कपड़ा पहनने से घबराता है। प्रकृति ने उसे ऐसी संज्ञा दी है कि कपड़ा उसे सुहाता नहीं और जबर्दस्ती करने पर वह रोने

भी लगता है। लेकिन उसके रोने को माँ-बाप उसी तरह नहीं सुनते जैसे भारतीयों के रोने को अंग्रेज नहीं सुनते। लोग अपने मनोरंजन के लिए या अपना बड़प्पन दिखाने के लिए बच्चे को कपड़ों में जकड़ देते हैं और इतने से संतुष्ट न होकर हाथों-पैरों मे गहनों की बेड़ियाँ भी डाल देते हैं। पैरों में बूट पहना देते हैं। इस प्रकार जैसे उगते हुए अंकुर को ढक कर उसका सत्यानाश किया जाता है उसी प्रकार बालक के शरीर को ढक कर जकड़ कर उसका विकास रोक दिया जाता है। अशिक्षित स्त्रियाँ बालक के लिए गहने न मिलने पर रोने लगती हैं, जब कि उन्हें अपना और अपने बालक का सौभाग्य समझना चाहिए।

राम कहते हैं—'हे अवध! तू मेरा पालना है। मै तुझे भूल नहीं सकता। लोग मुझे कितना ही बड़ा समझें, तेरे आगे तो मैं बालक ही रहूँगा।

राम की तरह आप भी अपनी मातृभूमि का आदर करते हैं या नहीं? यदि आपने अपनी जन्मभूमि का आदर किया, उसे कभी विस्मृत न किया तो आप ही आनन्द में रहेंगे। अगर आप उसे भूल गए तो आपकी कृतघ्नता आपको किसी काम का नहीं रहने देगी।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़ कर है। जो पुरुष अपनी जन्मभूमि के लिए प्राण भी निछावर कर सकते हैं, जन्मभूमि के मङ्गल में ही अपना मङ्गल मानते हैं, वे पुण्य-शाली हैं। इससे विपरीत जो अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए उसे भूल जाते हैं, वे पापात्मा हैं।

इस प्रकार राम ने अनिश्चित काल के लिए अवध को प्रणाम किया और साथ ही अपने संकल्प को भी प्रकाशित किया। अवध को प्रणाम करने के उनके भावों पर विचार किया जाय और तदनुसार वर्त्ताव किया जाय तो कल्याण होने में देर न लगे। सब लोग राम जैसे नहीं हो सकते। सभी पालकी में बैठने लगें तो पालकी उठाने वाला कहाँ मिले? संसार में पालकी में बैठने वाले भी हैं और उसे उठाने वाले भी है और रहेंगे। फिर भी पालकी में बैठने योग्य बनने के लिए कौन प्रयत्न नहीं करता? सफलता थोड़ी मिले मगर प्रयत्न तो उस दिशा में करना ही चाहिए। अगर सब राम सरीखे नहीं बन सकते तो भी उद्योग तो निरन्तर वैसा बनने के लिए ही करना चाहिए।

राम के साथ सीता और लक्ष्मण ने भी अवध को अन्तिम प्रणाम किया। तत्पश्चात् एक अनिर्वचनीय गंभीरता के साथ तीनों ने आगे प्रस्थान किया। असीम ऐश्वर्य और अपरिमित सुख की मृदुल गोद में पले और बढ़े राम तथा लक्ष्मण के पास आज एक जून के खाने की सामग्री भी नहीं है। पास में एक दमड़ी भी नहीं है। उनमें सिर्फ आत्मबल है और आत्मबल की पूँजी का भरोसा करके वे वन की ओर बढ़े चले जा रहे हैं।



गुह की अद्भुत भक्ति !

——::::():::: ——

यहाँ एक ऐसी घटना का उल्लेख किया जाता है, जिसका उल्लेख जैन रामायण में नहीं है। किन्तु जिस किसी भी बात से उपदेश मिलता हो, वह चाहे जहाँ हो, ग्रहण करने योग्य है। सदुपदेश की प्रत्येक बात को ग्रहण करना स्याद्वाद की विशेषता है। जहां मूलभूत सिद्धान्त में बाधा उपस्थित न होती हो, और किसी घटना के वर्णन का अभिप्राय सिर्फ सत्शिक्षा देना हो, ऐसी घटना का वर्णन पढ़ना-सुनना कोई बुराई की बात नहीं है। किसी भी कथा में घटना मुख्य वस्तु नहीं होती, वरन घटना से फलित होने वाला कथानायक या अन्य पात्र का चरित्र ही मुख्य होता है। उस चरित्र का बोध कराने के लिए ही घटनाओं की संकलना की जाती है। यहां जिस घटना का वर्णन किया जा रहा है वह जैन रामायण में नहीं है। फिर भी उससे राम के चरित्र की कुछ विशेषता मालूम होती है।

राम के वन-गमन का समाचार सर्वत्र फैल गया। वन में रहने वाला गुह नामक निषाद (भील) था। उसने भी

सुना कि राम वन में आये हैं। उसने सोचा—हम वनवासियों के सौभाग्य से ही राम वन में आये हैं। वे अवध में ही रहते तो उनके दर्शन भी दुर्लभ थे। वन में आने पर उनसे मिलना सरल होगा। उनसे भेंट करने का यह अच्छा अवसर है।

गुह राम की खोज मे निकला और वहीं पहुँचा जहां सीता सहित राम लक्ष्मण जा रहे थे। राम पर दृष्टि पड़ी तो वह सोचने लगा—आज राम हमारे जैसे ही हो गये हैं ! अगर इनके मस्तक पर मुकुट और कानों में कुंडल होते तो इनसे मिलने में बड़ी झिझक होती। मगर अब राम हमारे ही समान हैं। इस प्रकार विचार कर उसका रोम-रोम हर्षित हो गया। उसने अपने साथियों से कहा—जाओ, जल्दी फल-फूल ले आओ। राम को भेंट देकर उनकी सेवा करें।'

अमीरों की अपेक्षा गरीबों में अधिक स्नेह-भाव पाया जाता है। निषाद के साथी दौड़ कर फल-फूल ले आये। निषाद फल फूल लेकर राम के सामने पहुँचा। भेंट धरी। फिर प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया। कहने लगा—आज का दिन और यह घड़ी बड़ी धन्य है कि मुझ जैसे जङ्गली को आपके दर्शन का सौभाग्य मिला।

महापुरुष दीन की नम्रता देख कर पानी-पानी हो जाते हैं। राम ने गुह का भक्तिभाव देखा तो गद्‌गद हो गए। गुह को गले से लगा कर प्रेम के साथ मिले। राम का यह स्नेह

पाकर गुह कृतार्थ हो गया। उसे जो मिला, उसकी तो वह आशा ही नहीं कर सकता था।

राम ने पूछा—मित्र ! तुम सकुशल तो हो ?

गुह सोचने लगा—अहा ! राम मुझे मित्र कहते हैं ! मैं इनके साथ मित्रता कैसे निभाऊँगा ? मै इनकी क्या सेवा बजा सकूँगा ? बड़े भाग्य से कभी ऐसे अतिथि मिलते हैं। मेरे पास इनके स्वागत के योग्य क्या है ? लेकिन हृदय की सच्ची भक्ति अर्पण करके ही इनका सत्कार करूँगा। राम को वन में भेजने वाले धन्य हैं। मै उनका कृतज्ञ हूँ, जिनके प्रताप से मुझे ऐसे अतिथि मिल सके।

लोग कैकेयी को बुरा कहते है। निषाद उसे धन्य समझता है। इसीलिए कहा गया है—

न जाने संसारे किममृतमयं किं विषमयम् ?

जो पतित समझा जाता है, लोग जिसे छूना भी पसंद नही करते, वही गुह निषाद भेंट लेकर राम से मिलने आया है। उसके पास राजत्यागी राम को भेंट देने योग्य कौन-सी वस्तु हो सकती है ? उसके पास मोती नहीं है, हीरा नहीं है, पन्ना नहीं है। राम को भी इन चीज़ों की आवश्यकता नहीं है। जिन्हे त्याग कर वे वन मे आये है, उन्हे ग्रहण करने की इच्छा भी क्यों करेंगे ?

लोग असली चीज को नकली समझते है और नकली पर टूट पड़ते है। जब भूख से आंते सिकुड़ रही हों तब

मोतियों का थाल भर कर आपके सामने रक्खा जाय तो आपको रुचिकर होगा? आपको प्यास लगी हो और कोई पानी के बदले गुलाब का इत्र भेट करे तो आप क्या कहेंगे? इनसे आपका काम चल जाएगा? नहीं। भूख प्यास के अवसर पर जंगली फल-फूल और दोना भरा पानी आप जितना पसंद करेंगे, उतनी कोई दूसरी कीमती चीज नहीं। फिर भी लोग असली चीज़ को भूल जाते हैं और नकली के पीछे पड़ते हैं।

सांसारिक विषमता ने मनुष्य के विवेक को धुंधला बना दिया है। यही कारण है, जिससे लोग भाव को भूल गए हैं और वस्तु की कीमत के फेर में पड़ रहे हैं। चन्दनबाला द्वारा भगवान महावीर को दिये हुए उड़द के बाकले क्या कीमती थे? फिर इन्द्र आदि देवों ने भी क्यों धन्य-धन्य कहकर उस दान की सराहना की थी? उस दान में भावना की ही कीमत थी। भावना के मूल्य से वह दान मूल्यवान् बन गया था। चन्दनबाला तेला की तपस्या मे थी। हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी पहनी थी। कछौटा लगाया हुआ था। सिर मुंडन किया हुआ था। ऐसी स्थिति में बाकलों का दान दिया गया था। उस दान के साथ चन्दनबाला की गहरी धर्मप्रीति थी। इसी प्रीति के कारण वह दान धन्य हो गया। उन बाकलों की कीमत इन्द्र भी नहीं चुका सकता था।

राम अयोध्या के राजा होते तो उन्हे कीमती से कीमती

भेट देने कौन न दौड़ता आता ? लेकिन जब राम का राज्य छूट गया है, वृक्ष की छाल के वस्त्र उन्होंने पहन रक्खे हैं और जंगल में भटक रहे हैं, ऐसी दशा के राम जिस निषाद को प्रिय लगे उसका भाव कैसा रहा होगा ? राम जैसा वेष बनाये कोई आपके यहाँ आ जाय तो आप उसे धक्के देकर भगा देंगे। मगर निषाद को राम उस वेष में भी प्रिय लगे।

निषाद विचार करने लगा—'मैंने पहले भी राम को देखा था और आज भी देख रहा हूँ। कहाँ मुकुट से मंडित और कुंडलों से अलंकृत वह वेष और कहाँ यह वन्य वेष ! मगर उस वेष मे ये उतने प्रिय नहीं लगते थे जितने इस वेष में लगते है। इनका यह भव्य रूप हम गरीबों का उद्धार करने वाला है। कौन जाने हम जैसों के उद्धार के लिए ही अदृष्ट ने यह रचना रची हो ?'

आपको राम का यह वेष प्रिय लगता है ? सचमुच आपको प्रिय लगता होता तो आपके जीवन में बहुत सादगी आ गई होती। गांधीजी को कहते-कहते इतने दिन हो गए। फिर आप उनकी बात मानकर सादगी क्यों न धारण करते ? गांधीजी खुद सादगी के आदर्श हैं और सादगी की शिक्षा देते है। मगर आप से विलास नहीं त्यागा जाता !

महापुरुष प्रत्येक परिस्थिति में सम ही रहते है। न संपत्ति मे हर्ष मानते हैं और न विपत्ति में विषाद। राम राज्याभिषेक के समय प्रसन्न नहीं थे और वनवास के समय

दुखी नहीं हैं। तथापि गुह की भक्ति देखकर उन्हें हर्ष हुआ।

शाम हो आई थी। राम ने लक्ष्मण से कहा-'लक्ष्मण! आज यह मित्र मिला है और शाम हो रही है। आज इसी वृक्ष के नीचे रात क्यों न विताई जाय ? आज की रात इस मित्र के साथ ही रहें।'

यों तो राम को कोई साधारण राजा भी ठहराने का साहस नहीं करता था, पर आज वे गुह के लिए वृक्ष की छाया में ठहरे। गुह की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने सोचा-राम मेरे लिए आज यहीं ठहर रहे हैं! वह दौड़ कर आस-पास से पत्ते तोड़ लाया। पत्तों का बिछौना वनाकर उसने कहा-प्रभो! आप निश्चिन्त होकर निद्रा लीजिए और थकावट मिटाइए। मै जाग कर आपकी रक्षा करूंगा।

लक्ष्मण ने कहा-'मित्र! वैसे तो तुम रक्षा करने मे समर्थ हो, वलवान् हो और वन के भेद से परिचित हो, इस कारण हिंसक पशु आदि से हमारी रक्षा कर सकते हो, लेकिन हमारी प्रतिज्ञा यह है कि हम परतंत्र नहीं रहेंगे। हम अपने ही सामर्थ्य से रक्षित होंगे। अतएव मै जागूंगा। तुम सो जाओ। मै सेवक हूँ। सेवा करने के लिए ही साथ आया हूँ। मेरे लिए यहाँ और कोई काम न था।

गुह-जैसे राम, दशरथ महाराज के पुत्र हैं वैसे ही आप भी हैं। आप भी महलों में, कोमल सेज पर सोने वाले हैं। आप कभी पैदल नहीं चले। आज पैदल चलते

थक गये होंगे। इसलिए आप भी सो जाइए। मैं जाग कर रक्षा करूँगा। हाँ, अगर मेरे ऊपर भरोसा न हो और मुझे बेईमान समझते हों तो बात अलग। पर यक़ीन रखिए, मैं धोखेबाज़ नहीं हूँ।'

लक्ष्मण ने सोचा-'गुह बड़ा सेवापरायण और भक्त है। अधिक आग्रह करने से इसके चित्त को क्लेश पहुंचेगा। वह बोले-मित्र! तुम्हारे ऊपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। फिर भी मैं सोचता हूँ कि सबेरा होते ही राम तुम्हें विदा कर देंगे--साथ नहीं रक्खेंगे! ऐसी दशा में हम लोग बातचीत कब करेंगे? तुम से वन्य जीवन के संबंध में बहुत-सी बातें सीखनी हैं। इस नवीन जीवन के लिए तैयारी किये बिना कैसे काम चलेगा?'

आलसी आदमियों ने संसार को बिगाड़ दिया है। नागश्री ब्राह्मणी ने मुनि को कड़ुवा तूंबा-जिसके खाने से उनकी मृत्यु हो गई थी-आलस्य के कारण ही वहरा दिया था। उसने सोचा था-कौन बाहर फेंकने जाय? इस आलस्य के मारे उसने घोर अनर्थ कर डाला। लक्ष्मण आलसी होते तो गुह की बात मानकर सो जाते। पर आलस्य तो उनके पास ही नहीं फटका था। इस प्रकार गुह भी प्रसन्न हो गया और लक्ष्मण की स्वतंत्रता भी कायम रह गई।

रात हुई। शीतल मंद पवन चलने लगा। चांदनी छिटक गई। राम और सीता पत्तों के बिछौनों पर सो गये। राम को

इस प्रकार सोते देखकर गुह सोचने लगा-राम जब राज-महल में सोते होंगे तो कितनी सुन्दर सेज और कितना बढ़िया पलंग बिछाया जाता होगा ! आज वही राम पत्तों के बिछौने पर पेड़ के नीचे पड़े हैं ! राम संसार की विचित्रता के मूर्तिमान् उदाहरण हैं। राज्याभिषेक हो गया होता तो वे किस स्थिति में होते और अब किस स्थिति में हैं ? और यह माता सीता ! जनक राजा की पुत्री और दशरथ की पुत्रवधू हैं। अनेक दासियाँ इनकी सेवा में हाजिर रहती थीं। कितने सुखों में पली हैं और रही हैं। हाय ! आज इन्हें भी पर्ण-शय्या पर, भुजा का तकिया लगाकर सोना पड़ा है। संसार की दशा बड़ी ही विचित्र है !

इस प्रकार विचार करते-करते गुह को रोना आ गया। गुह का रोना भीतर ही न रुक सका। बाहर रोने की आवाज निकल पड़ी। गुह का रोना सुनकर लक्ष्मण पशोपेश में पड़ गए। अचानक गुह क्यों रोने लगा ? उन्होंने पूछा-'सखे ! यह क्या ? तुम अभी-अभी रोने क्यों लगे ? सेवक होकर रोना कैसा ? सेवक को रोने का अधिकार नहीं है। उठो संभलो। क्या डर लगता है ?

गुह ने रोना रोककर कहा-मै डरता नहीं। नित्य जंगल में रहने वालों को जंगल में डर कैसा ? यह तो मेरा घर है-क्रीड़ाभूमि है। मुझे यह विचार कर उद्वेग हो आया कि राम और सीता जिस दशा मे आज यहाँ सो रहे हैं, वह कैसी

विकट है ! मेरे झौंपड़े में भी इससे अच्छी तैयारी है। मेरे झौंपड़े में भी एक टूटी-सी खटिया है, मगर राजमहल में रहने वाले राजकुमार और राजकुमारी के लिए आज वह भी नसीब नही है। कैसी विचित्रता है !

गुह की बात सुन कर लक्ष्मण ने कहा—'मित्र ! तुम वृथा रोते हो। तुमने अकारण ही दुख पैदा कर लिया है। जान पड़ता है, मोह ने तुम्हें घेर लिया है। आखिर राम और सीता के लिए ही दुःख मना रहे हो न ? मगर उन्हें तो दुःख ही नही है। जिस दुख से तुम रो रहे हो वह दुख राम को क्यों नहीं रुलाता ? यह समझने की बात है। रोना अज्ञान का फल है। राम के सत्संग में आकर तुम्हें अपना अज्ञान छोड़ना चाहिए। अज्ञान हटने पर दुख-सुख सरीखे जान पड़ते हैं। जिसे तुम दुख मानते हो, राम उसे दुख नहीं मानते। अगर वास्तव में वह दुख ही होता तो राम भी उससे दुखी होते। आग गर्म है तो वह सभी के लिए गर्म है। किसी को गर्म और किसी को ठंडी नहीं लगती। इसी प्रकार वनवास अगर दुख होता तो राम भी उससे दुखी होते। मित्र ! तुम वनवासी होकर भी वनवास को कष्ट समझते हो ?

राम ने स्वेच्छापूर्वक यह स्थिति स्वीकार की है। किसी ने उन्हें अयोध्या से निर्वासित नहीं किया है। वे इस दशा में संतुष्ट और सुखी हैं। इस सुख के लिए उन्होंने राजपाट भी निछावर कर दिया है। हां, राजपाट इस सुख पर निछावर

ही हुआ है। उसकी कीमत नहीं चुकाई जा सकती। राम की दृष्टि में यह सुख बहुत सस्ता मिला है।'

लक्ष्मण की बात सुनकर गुह चकित रह गया। उसने कहा-सब कुछ ठीक कहते हैं आप, मगर जी नहीं मानता।

लक्ष्मण-'हे गुह! तुमने थोड़ी देर पहले कहा था कि आप पतितों को पावन करने आये हैं। यह बात इतनी जल्दी कैसे भूल गए? वास्तव में तुम मोह में पड़ गए हो। इसीलिए रोते हो। मोह त्यागो। राम के वनवास का रहस्य समझो। राम अयोध्या में रहते तो संसार के सब प्राणियों के हृदय में नहीं बस पाते। उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। इसी कारण वे सब के हृदय में बसने योग्य बन गये हैं।'

राम ने धर्म के लिए राज्य त्याग दिया, लेकिन आप में कोई ऐसा तो नहीं है जो आठ-चार आने के लिए धर्म छोड़ देता हो? झूठ बोलना भी धर्म छोड़ना है। अगर कोई झूठ बोलता है तो उसे सोचना चाहिए कि क्या वे आठ आना साथ जाएँगे? जब काया ही न रहेगी तो माया क्या काम आएगी? अतएव राम की बात हृदय में लेकर धर्म के लिए कुछ त्याग करो। त्याग बिना धर्म नहीं होता।

लक्ष्मण कहते हैं—निषाद! तुम और गुप्त भाव सुनो। क्या संसार में ऐसा कोई फूल है, जिस में कीड़े न लगते हों? क्या ऐसी कोई पृथ्वी है जहाँ काँटे न होते हों? सभी फूलों में कीड़े होते हैं और पृथ्वी पर सर्वत्र काँटे हैं। इन से बच

निकलने वाला ही सच्चा वीर है।'

लक्ष्मण फिर कहते हैं–आत्मा ही कर्त्ता है और आत्मा ही भोक्ता है। लोग स्थूल को देखते हैं, सूक्ष्म को नहीं देखते। दृश्य को देखते हैं, अदृश्य को नहीं देखते। लोग प्रत्यक्ष कार्य को देखते हैं, लेकिन प्रत्यक्ष का कार्य जिसका परिणाम है उसे नहीं देखते। ज्ञानी कहते हैं, तुम जो कुछ देख (भोग) रहे हो वह सब तुम्हारे किये का ही परिणाम है। तुम्हारे अदृश्य कार्य अब दृश्य में परिणत हो गए हैं। और समय पाकर यह दृश्य भी अदृश्य में परिणत हो जाएँगे। इस प्रकार आत्मा स्वयं कर्त्ता और भोक्ता है। फिर किस पर रोष किया जाय? किस बात की चिन्ता की जाय?'

लक्ष्मण और गुह इसी प्रकार बातें करते रहे। रात समाप्त होने आई। तब लक्ष्मण ने कहा–'मित्र! अब रात समाप्त हो रही है। उषा का प्रकाश फैल रहा है। मैं प्रभाती गाकर राम को जगाता हूँ।' लक्ष्मण प्रभाती गाने लगे—

जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले।
चन्द्रकिरण मलिन भई चकवी पियमिलन गई,
त्रिविध मंद चलत पवन, पल्लव-द्रुम डोले।
प्रात भानु प्रकट भयो, रजनी को तिमिर गयो,
भ्रमर करत गुंजगान, कमलन दल खोले।
जागिए . . .. बोले॥

लक्ष्मण के साथ-साथ गुह भी गाने लगा। गुह पहले तो

रोता था पर लक्ष्मण की बातों ने उसे सचेत कर दिया है। अब वह प्रसन्न है। वह सोचता है—'अच्छा हुआ मुझे रोना आ गया। रोना न आता तो इतना ज्ञान कैसे मिलता ?'

लक्ष्मण ने प्रभाती गाकर राम को जगाया। राम ने लक्ष्मण और गुह—दोनों को प्रफुल्लित और एक-रस देखा। वे सोचने लगे—'कहाँ लक्ष्मण और कहाँ गुह ? एक राज-महल में जनमा और दूसरा जङ्गल में। दोनों की शिक्षा भी भिन्न है। दोनों का कर्त्तव्य-कर्म अलग-अलग है। फिर भी दोनों कैसे एक-रस दिखाई देते हैं ! यह एकरूपता इस तथ्य को सिद्ध करती है कि ऊपर से कोई कैसा ही हो, पर आत्मा सब की समान है।' राम यह देख और सोच कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

आप किसी मनुष्य से घृणा तो नहीं करते। स्मरण रक्खो-घृणा करने वाला स्वयं घृणास्पद बन जाता है। भारतीयों ने दलितों से घृणा की तो वे स्वयं विदेशियों की दृष्टि मे घृणा-स्पद हो गए। अतएव ऊपर की बातें देख कर आत्मा को मत भूलो। मान लो, कपड़ों की दो गाँठे है। एक गाँठ पर शाल लिपटी है और दूसरी पर डामर पुत गया है। दोनों का बीजक एक है और दोनों में एक-सा माल भरा है। ऐसी स्थिति मे ऊपर से देखने वाले भले एक गांठ को अच्छी और दूसरी को बुरी कहे, मगर जिसके हाथ मे बीजक है वह ऐसा नहीं समझेगा। वह दोनों को समान समझेगा। इसी प्रकार

ऊपर से कोई कैसा ही दीखे, मगर अन्तरात्मा से तो सब समान है। ज्ञानी पुरुष आत्मा की अपेक्षा सबको समान समझते हैं। कहा भी है—

सिद्धा जैसा जीव है, जीव सोई सिद्ध होय।
कर्म-मैल का आँतरा, बूझै विरला कोय ।

जीव सब का समान है। इसलिए किसी पापी से भी घृणा न करके उसके आत्मा के असली स्वरूप को ही देखना चाहिए।

राम, लक्ष्मण और गुह की प्रीति देख कर प्रसन्न हुए। उन्होंने भी गुह की आत्मा को ऊपर उठाने का उपदेश दिया।

गुह कहने लगा—'मैं आपको क्या दे सकता हूँ? मेरे पास है ही क्या? मेरे पास अवध सरीखा राज्य नहीं है। हां, जिस गांव से मैं रहता हूँ, आप उस शृंगवेरपुर की ठकुराई करना स्वीकार करें तो पधारिये।

गुह की बात सुनकर राम मुस्किराये। सोचने लगे—मैंने जो त्याग किया है उससे गुह का त्याग कम नहीं है। लखपति के लाख रुपयों के दान की अपेक्षा गरीब का छोटा-सा दान कम नहीं है।

बाइबिल की एक कहानी में लिखा है कि एक बार किसी जगह दुष्काल पड़ा था ईसा वहाँ के लोगों की सहायता के लिए चंदा कर रहे थे। वहाँ एक बुढ़िया रहती थी। वह तीन पैसे रोज कमाती थी। उसने सोचा-मैं एक दिन भूखी रहूँ

गी और उस दिन की सारी आमदनी उस फंड में दे दूँगी। यह सोचकर वह ईसा के पास गई। बुढ़िया ने कहा--मुझसे भी चदा लो। लोग उस दरिद्र बुढ़िया को देखकर खीझने लगे। किसी ने उसे वहाँ से हट जाने को कहा। ईसा ने उसे देखकर लोगों से कहा-इसकी अवहेलना मत करो । फिर बुढ़िया से कहा—आओ माँ, तुम क्या देना चाहती हो ?

बुढ़िया ने अपने पास के तीन पैसे निकाल कर कहा—मेरे पास यही तीन पैसे हैं, जो मै दे रही हूं। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है। आज उपवास करके मै यह पैसे देती हूँ।

ईसा ने प्रसन्नता के साथ तीन पैसे लेकर लोगों से कहा-अरे करोड़पतियो! तुम्हारे त्याग से इस बुढ़िया का त्याग वहुत ज्यादा है। तुमने थोड़ा-सा देकर वहुत वचा लिया है, लेकिन इसने अपना सर्वस्व दे दिया है। इसका त्याग अनुकरणीय है। मैं इसकी सराहना करता हूँ।

राम सोचते हैं—गुह मुझे श्रृंगवेरपुर का राज्य देता है। यह थोड़ा त्याग नहीं है।

राम को मुस्किराते देखकर गुह ने पूछा-स्वामिन्! आप हँसते क्यों हैं ?

राम ने प्रेमपूर्वक कहा—'मुझे राज्य करना होता तो अवध का राज्य क्यों छोड़ता ?

राम, लक्ष्मण और सीता गुह के साथ आगे चले' कुछ

दूर चलने पर गंगा नदी आई। विना नौका की सहायता लिये वह पार नहीं की जा सकती थी। इसलिए राम ने गुह से कहा—'क्या तुम हमें पार उतार दोगे?

गुह—आप संसार को पार उतारने वाले महापुरुष हैं, मै आप को क्या पार उतारूँगा? लेकिन आप कहते हैं तो आइए। नाव यह है ही। मै परले पार ले चलता हूँ।

तीनों को नाव में बिठलाकर गुह ने पार उतार दिया। पार उतर कर राम ने सोचा—'इसने हमारे ऊपर बड़ा उपकार किया है। इसे क्या देकर प्रत्युपकार करूँ?' सीता ने पति के मन की बात जान ली। उन्होंने सोचा—मै अपने साथ एक मणि-जड़ी अंगूठी लाई हूँ। इस समय वह दे देना अच्छा होगा। सीता ने अंगूठी उतारी और गुह की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—'यह लो।'

सीता पति के लिए सब कुछ निछावर कर सकती थी। उन्होंने अपनी कीमती अंगूठी नदी-उतराई में देते देर नहीं की। पति के चित्त को संतोष हो जाय तो अंगूठी की क्या बिसात है? आज की स्त्रियाँ गहनों के लिए पति को चैन नहीं लेने देतीं। कई-एक कहती हैं-हम पति का कहना मानने लगें तो वे हमें नंगी किये विना न रहें।

एक कथा में लिखा है कि सीता ने अपनी अंगूठी उतार कर राम को दे दी और दूसरी कथा में कहा है कि वह स्वयं गुह को देने लगी।

गुह ने पूछा—माता ! यह क्या है ? क्यों दे रही हो ?

सीता—तुमने हमारी बड़ी सेवा की है। तुम्हारी सेवा के सामने हमारे देवर की सेवा भी फीकी पड़ जाती है। फिर हम उनके भाई-भौजाई हैं। लेकिन तुम्हारी सेवा तो एकदम निष्काम है। निष्काम सेवा का बदला नहीं चुकाया जा सकता। हमारे पास चुकाने को कुछ है भी नहीं। लेकिन हमारे मिलने की स्मृति बनाए रखने के लिए तो यह अंगूठी दे रही हूँ। इसे ले लो।

यह कहकर सीता, गुह को अंगूठी देने लगीं। अंगूठी सोने की बनी थी और उसमें मणि जड़ी थी। उसकी कितनी कीमत होगी? कहावत है—एक माणिक की कीमत तो दूर उसकी दलाली में ही बारह बादशाहत जाती है। कहते हैं-चिन्तामणि रत्न भी माणिक की ही जाति का होता है। गुह ने ऐसा कौन-सा बड़ा काम कर दिया था ? नदी पार ही तो उतारा था और रात भर पहरा दिया था। उसकी मजदूरी कुछ पैसे ही हो सकते हैं। इस साधारण मजदूरी के बदले मणिमय मुद्रिका गुह को दी जारही है।

सीता की बात के उत्तर मे गुह ने जो कुछ उत्तर दिया उसे जरा युक्तिपूर्वक कहता हूँ। गुह कहता है—जब एक नाई दूसरे नाई से बाल बनवाता है तो बाल बनाने वाला नाई बनवाने वाले से पैसा नही लेता। नाई, नाई का काम निष्काम भाव से करता है। सजातीय से मजदूरी के पैसे लिए जाएँ

तो जाति डूब जाती है। मै और आप एक ही जाति के हैं। फिर मै आपसे मजूरी कैसे लूं ?

गुह की बात सुनकर लक्ष्मण ने कहा—गुह ! तुम भक्ति के वश होकर ऐसा कह रहे हो। फिर भी यह अंगूठी लेने में कोई हर्ज़ नहीं। इसे ले लो।

गुह—'नहीं, मै भक्ति के वश ऐसा नहीं कहता। मेरा कहना वास्तव में ही सत्य है। मेरा काम पार करना है और आप का काम भी पार करना है। मै नदी में डूबते को पार करता हूँ और आप संसार के ममत्व में डूबने वाले को पार करते है। पार करना दोनों का ही समान कार्य है। इस नाते आप मेरे सजातीय है। सजातीय से मजदूरी ले लेने से जाति चली जाती है। मै अपनी जाति नहीं खोना चाहता। हाँ, आपको बदला ही देना हो तो किसी दिन, जब मै संसार की मोह-ममता में डूबने लगूं तब मुझे उबार लेना। अंगूठी दे देने से आपको छुटकारा नहीं मिलेगा। एक अंगूठी के लिए मै अपना महान् कार्य कैसे बिगाड़ दूंगा ? आप मुझपर यह कृपा न करें। अंगूठी देकर मुझे धक्के न मारें। अंगूठी देने का अर्थ अपने आपको बचा लेना है-अपने को अलग कर लेना है। मै यह नही चाहता। आप अपने हाथ से राम के चरण की रज दे दें तो उसे मै अवश्य स्वीकार कर लूंगा। उसका आशय यह होगा कि राम ने जो महान् त्याग किया है, उसकी धूल के बराबर मै भी त्याग कर सकूं। यानी

इनके आचरण को मैं भी थोड़ा-सा अपना सकूँ।

संसार में सर्वत्र स्वार्थ का साम्राज्य है। मनुष्य एक हाथ से कुछ देता भी है तो दूसरे हाथ से उसके बदले चौगुना लेने की आशा रखता है। निष्काम त्याग करने वाले पुण्यशील विरले ही होते हैं। गुह ऐसा ही निस्वार्थ पुरुष है। इसकी कथा जैन रामायण में न होने पर भी उपदेशप्रद है। त्याग का सुन्दर आदर्श इसमें बतलाया गया है।



भील कन्या की कथा ।

——::::()::::——

गुह की कथा के अतिरिक्त एक कथा और भी है जो जैन रामायण में नहीं है मगर शिक्षाप्रद है। अतएव उस पर भी विचार कर लेना उचित है।

एक भील-कन्या थी। वह अपने माँ-बाप के घर रहती थी। वह जब जङ्गल में घूमती तो प्रकृति की शोभा देख कर विचार करती—यह वृक्ष और यह पहाड़ तो मुझे कुछ निराला ही पाठ सिखाते हैं! प्रकृति की रचना पर विचार करते-करते उसके दिल में दयाभाव उत्पन्न हुआ। वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। धीरे-धीरे उसे ईश्वर के नाम की भी धुन लग गई। जिसके दिल में दया होती है, उसे परमात्मा के प्रति प्रीति भी जल्दी हो जाती है। यों तो सभी किसी न किसी प्रकार से परमात्मा का नाम लेते हैं, लेकिन प्रयोजन में बड़ा अन्तर होता है। कहा है—

राम नाम सब कोई कहे, ठग ठाकुर अरु चोर।
विना प्रेम रीझे नहीं, तुलसी नन्दकिशोर ॥

ठग भगवान् का नाम लेकर ठगाई करने निकलता है

और ठाकुर ठगाई से बचने के लिए उसका नाम लेता है। दोनों का प्रयोजन कितना भिन्न है? दया के साथ परमात्मा को जपना और बात है तथा लोभ-लालच से जपना और बात है।

शबरी में दया थी इसलिए उसे परमात्मा के नाम की लौ लग गई। और उसकी परमात्मप्रीति बढ़ती गई। यह सब दया का ही प्रताप था।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लग घट में प्राण।

अगर घट में दया है तो जो भी कार्य किया जायगा, अच्छा ही होगा। दया के अभाव में धर्म की जड़ ही कट जाती है।

पाँच और पाच दस होते हैं। कोई गणित का प्रोफेसर किसी से कहने लगे—तुम मूर्ख हो कि पाँच और पाँच दस मानते हो। हम पढ़े-लिखे विद्वान हैं। हम कहते हैं—ग्यारह होते हैं। ऐसा कहने वाले प्रोफेसर से आप यही कहेंगे कि हम विना पढ़े-लिखे ही भले जो पाँच और पाँच के योग को ग्यारह तो नहीं कहते! ज्ञानी कहते हैं कि दया का धर्म भी 'पाँच और पाँच दस' की तरह सरल है। उसे सभी सहज ही समझ सकते हैं। वह सब के अनुभव की चीज है। कोई न्यायशास्त्र और व्याकरण का पंडित आकर आप से कहने लगे कि धर्म अहिंसामय नहीं, हिंसामय है; तो आप

उसे मान लेंगे ? नहीं, आप यही कहेंगे कि तुम पंडित हो करके भी असत्य कहते हो। भारत का भाग्य अच्छा है कि यहाँ सब लोग अहिंसा को ही धर्म मानते हैं। किन्तु स्वार्थी लोग भुलावे में डालने की कोशिश करते हैं। अगर कोई भुलावे में डालने की कोशिश करे तो आप यही कहिए कि तुम वृथा कहते हो। धर्म तो अहिंसा में ही है।

दया धर्म के प्रताप से शबरी का ईश्वरप्रेम बढ़ता ही गया। वह बड़ी हुई। माँ-बाप ने उसका विवाह करना निश्चित किया। शबरी मन में सोचने लगी—माँ-बाप मेरा विवाह अब किसके साथ करना चाहते हैं ? जिसके साथ विवाह होना था, उसके साथ मैं हृदय से विवाहित हो चुकी हूँ। लेकिन मेरी बात वे मानेंगे कैसे ? इस प्रकार के विचार से वह शबरी-कन्या चिन्ता में पड़ गई। उसने परमात्मा से प्रार्थना की—प्रभो ! मेरी लाज रक्खो।

मीरां ने भी ईश्वर को अपना पति बनाया था। उसने कहा था—

संसारी नो सुख काचो,
परणीने रंडावूं पाछो।
तेने घेर सिद जइए,
रे मोहन प्यारा, मुखड़ा नी प्रीति लागी रे ॥
परणूं तो प्रीतम प्यारुं,
अखंड अहिवात म्हारुं।

राडवा नो भय टालो,
रे मोहन प्यारा ॥
मुखड़ा नी प्रीति लागी रे ॥ मोहन० ॥

शबरी भी सोचती थी—क्या कोई ऐसा पति मिल सकता है जो मुझे कभी रांड न बनावे ? पहले सुहागिन बनूं और फिर रांड होऊँ, यह ठीक नहीं है। मैं विवाह करूंगी तो ऐसे के साथ करूँगी कि अहिवात अखण्ड रहे।

शबरी के पिता ने उसकी सगाई कर दी। फिर भी शबरी घबराई नहीं। वह सोचती थी कि मेरे हृदय में भगवान् है तो सब ठीक ही होगा। अगर पिता ने व्याह भी दिया तो भी क्या है ? मेरे हृदय में तो परमात्मा बस रहा है। मैं उसी की हूँ।

विवाह का समय आया। बरात आ पहुँची। शबरी-कन्या के पिता ने बरातियों को जिमाने के लिए मुर्गी तीतर आदि पक्षी इकट्ठे कर रक्खे थे। उन सब को एक पींजरे में डाल रक्खा था।

रात का समय था। शबरी सोई हुई थी। किसी कारण से सब पक्षी चूं-चाँ करने लगे। प्रकृति न मालूम किस तरीके से क्या काम करती है ? शबरी की नींद खुल गई। पक्षियों का कोलाहल सुन कर शबरी सोचने लगी—पक्षी क्यों चिल्ला रहे हैं ? यह क्या कहते हैं ? अचानक उसे ध्यान आया—पक्षी शायद कह रहे हैं कि तू विवाह करती है और हम मारे

जाएंगे! शवरी उठी और उसने पींजरा खोल दिया। पक्षी अब स्वतन्त्र थे। अपनी जान लेकर भागे।

इधर शवरी ने सोचा—मेरे विवाह करने से पहले इतने जीव बंधन में पड़ेंगे। अगर विवाह कर लूंगी तो न जाने कितने वन्धन में पड़ेंगे! मैंने इन्हे स्वतन्त्र कर दिया है। मेरे ऊपर जो वीतेगी, भुगत लूंगी। पर इन्हें स्वतन्त्र करने वाली स्वय वन्धन में क्यों पड़ूं?

इस प्रकार विचार कर शवरी-कन्या रात्रि मे ही घर से निकल पड़ी। वह सोचने लगी—लेकिन मैं जाऊँगी कहाँ? जहाँ जाऊँगी वहीं से पिता पकड़ लाएँगे। मगर—

समझ सोच रे मित्र! सयाने,
आशिक हो फिर रोना क्या रे!
जिन अँखियन मे निद्रा गहरी,
तकिया और बिछौना क्या रे!
रूखा-सूखा गम का टुकडा,
फीका और सलौना क्या रे!
पाया है तो दे ले प्यारे,
पाय पाय फिर खोना क्या रे!

शवरी-कन्या सोचती है—मन भगवान् पर आशिक हुआ है तो डर किसका? वे जानवर मौत के नज़दीक थे। मैने उनकी पुकार सुनी और उन्हें स्वतन्त्र कर दिया है। तो मैं भी कुछ पुण्य लेकर ही जनमी होऊंगी। नहीं तो उन

पक्षियों को खोल देने की भावना मुझ में कहाँ से आई ? इसलिए चलना चाहिए।

कहत कबीर सुनो भाई साधो,
शीश दिया फिर रोना क्या रे !

सिर दिया है तब सोच कैसा ? चल, निकल चल। रात है, अंधेरा है, यही भाग निकलने का उपयुक्त अवसर है। शबरी निकल चली। उसने निश्चय किया—इन पक्षियों की रक्षा हुई तो मेरी भी रक्षा होगी।

सवेरा हुआ। घर के लोग जागे। देखा, पींजरा खाली पड़ा है। सोचा—हाय, अनर्थ हो गया ! किस पापी ने यह कुकर्म कर डाला ! अब मेहमानों का सत्कार कैसे होगा ? ऐन वक्त पर सारी बात बिगड़ गई !

जब किसी के स्वार्थ में बाधा पड़ती है तो वह दूसरों को पापी कहने लगता है। पाप-पुण्य की कसौटी उसका स्वार्थ ही होता है।

थोड़ी देर बाद पता चला कि कन्या भी गायब है। अब घर वाले बड़े चिंतित हुए। बरात वालों को कैसे मुख दिखलाएंगे ! क्या कहकर उनसे क्षमा मांगेंगे ? सब इधर-उधर भागे। सब जगह खोज की। कन्या का पता न चला। शबरी जंगल में स्वतन्त्रता के साथ रहने लगी। वह सोचने लगी—मैंने घर त्याग दिया है। सत्संग करने की मेरी तीव्र लालसा है। लेकिन मैं भील के घर जनमी हूँ ! ऋषि मुझे पास भी

नहीं फटकने देंगे। ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए? ऋषि कुछ भी करें, मुझे सत्संग करना ही है। वह भले मुझे न छूने दें, मैं उनकी सेवा दूर से ही करूंगी। यह विचार कर वह सेवा करने के उद्देश्य से ऋषियों के पास गई। मगर उन्होंने पापिनी कह कर उसे दुत्कार दिया। ऐसे समय में क्रोध आना स्वाभाविक था, मगर सच्चा भक्त कभी क्रोध नहीं करता। वह शान्त रही।

मन मस्त भयो फिर क्या बोले,
हीरा पाया गांठ गठियाया,
बार-बार याको क्यों खोले?
थोड़ी थी जब चढ़ी तराजू,
पूरी हुई अब क्या तोले?
हंसा माया मान सरोवर,
डाबर-डाबर क्यों डोले?
तेरा साहिब तेरे घट में,
बाहर नयना क्यों खोले?
मन . . . . . . बोले॥

शवरी सोचने लगी—मेरी समीपता से ऋषियों का धर्म जाता है तो मैं दूर ही रहूंगी। मैं क्यों उनका धर्म बिगाड़ूं? मैंने भक्ति करने की ठानी है। वह तो कहीं भी हो सकती है? वह पिछली रात में जल्दी ही उठ बैठती और जिस रास्ते ऋषि आते-जाते थे, उसे साफ कर देती थी। वह सोचती—यही

उनकी भक्ति है कि उन्हें काँटे न लगें।

ऋषियों ने पहले दिन सवेरे उठ कर देखा कि मार्ग एकदम साफ है। किसी ने झाड़-बुहार दिया है। तब वे आपस में कहने लगे—यह हमारी तपस्या का प्रताप है। हमारी तपस्या के प्रताप से देव आकर मार्ग साफ कर गये हैं। इस प्रकार सभी ऋषि अपनी-अपनी तपस्या का फल बतला कर आपस में वाद-विवाद करने लगे। शबरी यह जानकर हँसी। उसने सोचा—चलो ठीक है। मुझे देव की पदवी मिली! जब ऋषि लोग आपस में विवाद करने लगे तो एक वृद्ध ऋषि ने कहा—हम कल निर्णय कर लेंगे कि किसके तप के प्रताप से कौन देव आकर मार्ग साफ करता है। अभी आप लोग अपना-अपना काम कीजिए।

दूसरेदिन शबरी फिर मार्ग साफ करने लगी। श्रृंगी ऋषि रखवाली कर रहे थे। उन्होंने दूसरे ऋषियों से कहा—देख लो, यह देवता मार्ग साफ कर रही है। आप सब इसे प्रणाम कीजिए। यह हम लोगों से भी ऊँची है।

श्रृंगी ऋषि की बात सुनकर बहुत-से ऋषि कुपित हो गए। कहाँ एक शबरी और कहाँ हम ऋषि! हमसे कहते हैं—शबरी को प्रणाम करो! यह तो कहते नहीं कि उसने मार्ग अपवित्र कर दिया, उलटी उसकी प्रशंसा करते हैं। श्रृंगी प्रायश्चित्त करे, अन्यथा उन्हें अलग कर दिया जाय!

श्रृंगी ऋषि ने शांतिपूर्वक कहा—तुम झूठे तपस्वी हो। सच्ची तपस्विनी तो यही है।

ऋषिगण—ऋषियों की निन्दा करने वाला हमारे आश्रम में नहीं रह सकता। तुम आश्रम से बाहर निकल जाओ।

श्रृंगी—मिथ्या अभिमान रखने वालों के साथ रहने से कोई लाभ भी नहीं है। लो, मै जाता हूँ।

श्रृंगी ऋषि आश्रम से बाहर निकल पड़े। उन्होंने शबरी से कहा—माता, आओ। अगर तुम मुझे अपना पिता समझती हो तो तुम मेरी पुत्री हो।

दोनों कुटी बना कर रहने लगे। श्रृंगी ऋषि शबरी को ज्ञान सुनाने लगे। शबरी कहती—पिता न मालूम किसके साथ मेरा विवाह कर रहे हैं। अब आपकी दया से ज्ञान के साथ मेरा विवाह हो गया।

इसी तरह कुछ दिन बीत गये। ऋषि का अंतिम समय आ गया। शबरी ने कहा—अब कौन मुझे ज्ञान देगा!

ऋषि ने धीमे स्वर में कहा—अब तुझे ज्ञान सुनाने की आवश्यकता नहीं। दशरथपुत्र राम वन में आएँगे और तेरे अतिथि बनेंगे। इस तरह तेरा कल्याण होगा।

ऋषि का देहान्त हो गया। शबरी को पूर्ण विश्वास था कि ऋषि की अंतिम बात अवश्य सत्य होगी। वह सोचने लगी—'राम मेरे अतिथि होंगे तो मै उनका क्या सत्कार करूंगी? यहाँ बेर के सिवाय और क्या है? बेरों से ही राम

का सत्कार करूँगी। उसे ध्यान आया—अगर बेर खट्टे हुए तो? खट्टे बेर राम को नहीं देने चाहिए। फिर खट्टे-मीठे का निर्णय कैसे हो? अन्त में उसने कहा—यह निर्णय करने के लिए मेरी जीभ है ही, फिर चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? जीभ से बेर चखती जाऊगी। मीठे-मीठे राम के लिए बचाती जाऊंगी और खट्टे-खट्टे मै खाती जाऊँगी।'

आज लोग खुद कैसा खाते हैं और दूसरों को कैसा देते हैं? लोग दूसरों को बुरा देना चाहते है और आप अच्छा-अच्छा खाना चाहते हैं। घर में मक्की की घाट बनी हो और बच गई हो तो भले खराब हो जाने के डर से दूसरों को दे दें। अगर हलुवा बना हो तो कौन दे देता है? उसे रखकर और फिर गर्म करके खाया जाता है। और एक यह शबरी है जो खुद खराब खाकर अच्छा दूसरे के लिए रख रही है। इसी से राम ने उसके जूठे बेर खाये थे। राम को प्रेम चाहिए था। बेरों की अपेक्षा शबरी के प्रेम मे ही अधिक मिठास थी।

शबरी ने सोचा—ऋषि के कथनानुसार राम, सीता और लक्ष्मण के साथ आएंगे। उनके लिए अभी से बेर तोड़ कर रख लूं। कौन जाने, किस समय आ जाएंगे? वक्त पर कहाँ से लाऊँगी? इस प्रकार विचार कर वह मीठे-मीठे बेर संग्रह करने लगी।

आप एक भील की कथा सुन चुके हैं और एक भीलनी

की कथा सुन रहे हैं। यह उदाहरण अपनी सद्बुद्धि जगाने के लिए हैं। इनसे स्पष्ट मालूम होता है कि इन नीच कहलाने वालों में भी कैसी उज्ज्वल भावनाएँ भरी रहती । हैं भील-भीलनी में प्रायः दया नहीं होती। उन्हें मार--काट की शिक्षा मिलती है। लेकिन इस भीलनी में कैसी दया थी कि उसने पक्षियों को स्वतंत्र कर दिया और बरात आ जाने पर भी विवाह न करके घर से बाहर निकल आई ! जब एक भीलनी भी इतना त्याग कर सकती है तो आपको कितना त्याग करना चाहिए ? अपनी आत्मा से पूछो'—हे आत्मन् ! तू क्या कर रही है ?' उस भीलनी ने विवाह करना त्याग दिया तो तुम क्या लड़की के बदले में पैसा लेना भी नहीं त्याग सकते ? भारतवर्ष का करोड़ों रुपया सिर्फ तमाखू के बदले बाहर चला जाता है। भारत को उससे क्या लाभ होता है ? करोड़ों का धुआं उड़ जाता है। बदले में बीमारियाँ मिलती हैं। मुंह से दुर्गंध निकलती है। तमाखू में निकोटाइन नामक विष होता है। डाक्टरों के कथनानुसार अगर बीड़ी में से तमाखू निकाल कर उसका सत्व निकाला जाय तो उस सत्व के विष से सात मेंढक मर सकते हैं। ऐसी विषैली तमाखू को भी लोग खा जाते हैं। मनुष्य कुसंस्कारों के कारण तमाखू त्यागने में असमर्थ बना हुआ है। इस भीलनी के साथ उसे अपने त्याग का मुकाबिला करना चाहिए। फिर उसे जान पड़ेगा कि भीलनी ऊँची है या वह ऊँचा है !

शबरी राम के लिए बेर बीन-बीन कर इकट्ठा कर रही थी। उसे अगर दुःख था तो यही कि श्रृंगी ऋषि ने मुझ पर इतना उपकार किया लेकिन उनके साथी ऋषियों ने उन्हें लांछन लगाया। मेरे और उन ऋषि के पवित्र प्रेम का साक्षी राम के सिवाय और कौन हो सकता है? राम आएंगे तो पता चलेगा।

शबरी जिस वन मे रहती थी, राम सीता और लक्ष्मण उसी वन में पहुँचे। ऋषियों को राम का आगमन मालूम हुआ। सब ऋषि यह सोच कर प्रसन्न हुए कि राम का सत्संग होगा और उनसे तत्त्वज्ञान की बातें होंगी। उन्होंने संसार के राज्य आदि सुखों को त्याग दिया है,इसलिए वे महापुरुष हैं। सभी ऋषि सोचने लगे कि राम हमारे आश्रम में टिकेंगे क्योंकि हमारी तपस्या बहुत है।

मगर राम वहाँ पहुँचे तो सीधे शबरी की कुटिया पर गये। शबरी में सत्य का बल था। ऋषि कहने लगे-राम भी भूल गए जो हमारे यहाँ न आकर भीलनी के यहाँ गये हैं। आखिर वह भी तो मनुष्य ही ठहरे।

राम शबरी के पास पहुँचे। राम को शबरी का हाल कैसे मालूम हुआ, यह कौन कह सकता है? मगर सत्य छिपा नहीं रहता। सत्य में अद्भुत आकर्षण होता है। उसी आकर्षण से राम शबरी के पास खिंचे चले गये। राम के पहुंचते ही शबरी हर्ष-विभोर हो गई। जैसे अंधे को आंख मिलने पर

हर्ष होता है, उसी तरह राम के मिलने पर शबरी को हर्ष हुआ। वह भक्ति से विह्वल होकर राम के पैरों में गिर पड़ी।

राम ने कहा-'शबरी, तेरा हृदय मुझ से पहले ही मिल चुका है। अब कुछ बिछाने को ला तो बैठें।'

शबरी के पास बिछाने को क्या था? उसने कुश की एक चटाई बना रक्खी थी। वह उठा लाई और बिछा दी। राम उस पर बैठ गए। वह लक्ष्मण से कहने लगे-'लक्ष्मण! यह कुशासन कितना नम्र है? हम लोग उत्तम से उत्तम बिछौनों पर सोये हैं मगर जो आनन्द इसमें है वह उनमें कहाँ?

लक्ष्मण—इस चटाई के आनन्द के आगे मैं तो अवध का आनन्द भी भूल गया हूँ।

सीता—जिसके दिये बिछौने से आपने और देवर ने इतना आनन्द माना उस शबरी का भाग्य मेरे भाग्य से भी बड़ा है! मै महल मे कितनी तैयारी किया करती थी, लेकिन कभी आपने ऐसी सराहना नहीं की। वास्तव में शबरी मेरे लिए ईर्षा का कारण बन गई है!

शबरी—प्रभो! कुछ खाने को लाऊँ?

राम—हाँ, मुझे ऐसी भूख लगी है कि तेरे हाथ के भोजन के बिना मिट ही नहीं सकती।

शबरी अपने वल्कल वस्त्र में बेर भर लाई। शबरी के जूठे बेर कौन खाता? मगर वह राम थे। वास्तविकता को समझने वाले और भावना के भूखे थे। बेर खाकर राम

कहने लगे—बड़े मीठे बेर हैं शबरी। तबीयत प्रसन्न हो गई। बड़ा आनन्द हुआ।

शबरी के बेरों में क्या विशेषता थी ? औरों ने राम को मीठा खिलाया होगा और स्वयं भी मीठा खाया होगा। लेकिन शबरी ने खट्टे बेर खाये और राम के लिए मीठे रक्खे। इसके सिवाय शबरी का प्रेम निस्वार्थ था। किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर उसने राम का सत्कार नहीं किया था।

चन्दनबाला के उड़द के बाकले भी ऐसे ही थे। भगवान् महावीर पाँच महीना और पच्चीस दिन से उपवासी थे। फिर भी उन्होंने बाकलों मे आनन्द माना। देवों ने उस दान की सराहना की थी।

लक्ष्मण कहने लगे—आपने बेरो की प्रशंसा कह बताई, लेकिन मै तो इनकी तारीफ ही नहीं कर सकता ! इतना कह कर लक्ष्मण ने शबरी से कहा—माता, और बेर ले आ। सीताजी ने भी बेर खाये उन्हे भी मालूम हुआ, जैसे भीलनी ने बेरों में अमृत भर दिया है।

राम ने कहा—सीता, तुमने उत्तमोत्तम भोजन कराये हैं, मगर पति-पत्नी के सम्बंध से। शबरी ने किस सम्बंध से बेर खिलाये हैं ?

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई,
घर गुरगृह प्रिय सदन सासुरे भई सब जह पहुँनाई।

तब तहँ कहि शबरी के फलन की रुचिमाधुरी बताई।
जानत ' .. रघुराई।

राम की पहुँनाई कहाँ न हुई होगी ? आज राम नहीं हैं फिर भी उनकी पहुँनाई के नाम पर लाखों खर्च हो जाते हैं तो उस समय कैसी न हुई होगी ? मगर जब और जहाँ उनकी पहुँनाई हुई तब वहाँ उन्होंने शबरी के फलों की ही सराहना की।

आज लोग राम को रिझाने के लिए चतुराई से काम लेते हैं। वे सरलता का त्याग कर देते हैं। किन्तु—

चतुराई रीझै नहीं,
महाविचक्षण राम।

राम हृदय की सरलता पर रीझते थे। कपट उन्हें रिझा नहीं सकता था।

ऋषि आलोचना करने लगे—शृंगी ऋषि भूला ही था, राम भी भूल गये! कलियुग आ रहा है न ? राम को ऋषियों का आश्रम प्यारा नहीं लगा और भीलनी की कुटिया अच्छी लगी। खैर, राम गये तो जाने दो। चलो, हम लोग स्नान-भोजन करें।

ऋषि स्नान करने सरोवर पर गये। सरोवर पर नज़र पड़ी तो चकित रह गए। सरोवर का पानी रक्त की तरह लाल-लाल हो गया और उसमें कीड़े बिलबिला रहे हैं।

काठियावाड़ के इतिहास की एक बात स्मरण हो आती है। काठियावाड़ के एक चारण की दो भैंसे चोर चुराकर ले

जा रहे थे। एक काठी सरदार ने चोरों से वह भैंसें छुड़ा लीं और अपनी भैंसो के साथ रख लीं। चारण को मालूम हुआ कि हमारी भैंसें अमुक सरदार के पास हैं। वह कुछ लोगों को साथ लेकर सरदार के पास पहुँचा। उसने कहा—हमारी दो भैंसें आपके यहाँ हैं, वह हमें दे दीजिए।

भैंसें दोनों अच्छी थीं। सरदार लालच में फँस गया। उसने कहा— हमारे यहाँ तुम्हारी कोई भैंसें नहीं हैं।

चारणों ने कहा—हैं, आपके यहाँ हैं। आप अपनी भैंसें हमें देखने दें।

सरदार ने सोचा—इन्हें भैंसें दिखलाई तो पोल खुल जायगी। मैं झूठा ठहरूँगा। बदनामी होगी। उसने इधर चारणों को बातों मे लगा रक्खा और उधर दोनों भैंसें कटवा डालीं और जमीन में गड़वा दीं। इसके बाद चारणों को अपनी भैंसें दिखला दीं।

चारणों को विश्वास नहीं हुआ। अन्त में शाप देकर वे वहाँ से चले। चारणों के शाप से या किसी अज्ञात कारण से, सरदार जब दूध खाने बैठता तो दूध में कीड़े बिलबिलाने लगते!

शृंगी ऋषि जैसे तपस्वी को लाञ्छन लगाने वाले, शबरी जैसी सरल और भक्त महिला की अवहेलना करने वाले और अन्ततः राम के विरुद्ध विचार करने वाले उन ऋषियों के लिए सरोवर का जल अगर रक्तवत् हो गया और उसमें

कीड़े विलविलाने लगे तो क्या आश्चर्य है ?

सरोवर के स्वच्छ जल की यह दशा देखकर एक ऋषि ने कहा—हमने पहले ही कहा था कि शृंगी और शवरी को दोष मत लगाओ। मगर तुम लोग नहीं माने। यह उसी का परिणाम है।

दूसरों ने कहा—जो हुआ सो हुआ। वीती वात की आलोचना करना वृथा है। अब वर्तमान कर्त्तव्य का विचार करना चाहिए।

अन्त में ऋषियों ने स्थिर किया कि राम को यहाँ लाना चाहिए। ऋषि मिलकर राम के पास पहुँचे और निवेदन किया-महाराज, पधारो। सरोवर का जल बिगड़ गया है। उसमें कीड़े कुलबुला रहे हैं। हमारा सब काम रुका हुआ है। आप वहाँ पधारो और जल को शुद्ध करो।

राम ने कहा—मेरे चलने से कोई लाभ नहीं होगा। आप लोग इस शवरी के स्नान का जल ले जाइए और सरोवर में छिटक दीजिए। जल शुद्ध हो जायगा।

ऋषि दंग रह गये। सोचने लगे-हम शवरी को पतिता समझते हैं और राम ऐसा कह रहे हैं!

शवरी ने कहा—महाराज! आप मेरे ऊपर बहुत बड़ा वोझा डाल रहे हैं। मै पतिता अपने स्नान का जल इन ऋषियों के हाथ में कैसे दे सकती हूँ? आप ही पधारिए।

राम—माया में फंसे लोग वास्तविक वात नहीं समझ

सकते। मुझे तुम्हारे बीने बेर खाने में जो आनन्द अनुभव हुआ है, वह दुर्लभ है। यह सब तुम्हारी पवित्र भावना का प्रताप है। तुम पवित्र हो। अपने स्नान का जल इन ऋषियों को देकर सरोवर का जल शुद्ध कर दो।

शबरी—वैसे तो मैं आपकी आज्ञा नहीं लांघ सकती। आप जो कहें वह मुझे शिरोधार्य है परन्तु मुझे अपने स्नान का जल ऋषियों के हाथ में देना उचित मालूम नहीं होता। अगर आपका आदेश हो तो मैं स्वयं चली जाऊ?

राम ने अनुमति दे दी। शबरी ऋषियों के साथ सरोवर पर पहुँची। जैसे ही सरोवर में उसने अपना पांव रक्खा कि जल निर्मल हो गया। यह चमत्कार देखकर ऋषियों की आँखें खुलीं। अपने किये पर पछताने लगे। कहने लगे—ओह! हमने वृथा ही इस सती की अवहेलना की।

शबरी लौट कर राम के पास आई। उसने कहा—महाराज! मैं अब समझ गई। मुझे इस विचार से बहुत कष्ट होता था कि मेरे कारण शृंगी ऋषि को कलंक सहना पड़ा। आपने मेरा यह दुःख आज दूर कर दिया है। शृंगी ऋषि मुझे सिखा गए हैं—

ग्रंथ पंथ सब जगत के, बात बतावत तीन।
राम हृदय मन में दया, तन सेवा में लीन॥

अर्थात् हृदय में राम, मन में दया और तन सेवा में लगा रहे। बस, इतनी ही बात मैं जानती हूं। इससे अधिक

कुछ नहीं जानती। मेरा विवाह होने वाला था। विवाह के भोज के लिए पिता ने पक्षी पकड़े थे। वे तड़फड़ा रहे थे। मुझसे नहीं रहा गया और उन्हें मैंने मुक्त कर दिया। मैं ने सोचा—बेचारे पक्षी बिना किसी अपराध के मारे जाएँगे और मै इनकी हत्या में निमित्त बनूँगी।

भगवान् अरिष्टनेमि के विवाह के अवसर पर भी मारे जाने के लिए बहुत-से पशु एकत्र किए गए थे। उन्हें देखकर भगवान् ने कहा था—'मेरे निमित्त से इतने जीवों की हिंसा हो, यह बात मेरे लिए परलोक में शांतिदायक नहीं हो सकती।, क्या हिंसा होने से परमात्मा का भी परलोक बिगड़ता था? नहीं, लेकिन उन्होंने जगत् के जीवों को समझाने के लिए ऐसा कहा है।

शबरी के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोग क्रोध, ईर्षा या अभिमान के कारण चाहे जिसे कलंक लगा देते हैं, परन्तु सत्य अंत में सत्य ही ठहरता है। झूठ अधिक समय तक नहीं ठहर सकता।

जब शबरी ने तालाब का जल निर्मल कर दिया तो उसका सत्य स्थूल रूप में चमक उठा। उसकी झोंपड़ी तीर्थस्थान के समान बन गई। सब ऋषि उसके आश्रम में आकर कहने लगे—हमने आज ही राम का मर्म समझ पाया है। हम लोग जप-तप करते थे पर यह नहीं जानते थे कि राम किस बात से प्रसन्न होते हैं? आज यह बात समझ गए। वास्तव

में यह सरोवर क्या बिगड़ा था, हमारा मस्तक ही बिगड़ा था। हमने शृंगी ऋषि का अपवाद किया, यह कितने खेद की बात है !

असल में हृदय में खराबी आने पर ही सब खराबियाँ होती हैं। हृदय अच्छा है तो सब अच्छा दिखाई देता है। हृदय बुरा है तो सभी जगह बुराई नजर आती है। पाप के कारण ही उस ठाकुर के सामने दूध में कीड़े पड़ जाते थे। इसी प्रकार पाप से ही सब बिगाड़ होता है। हृदय की शुद्धि होने पर पाप नहीं होगा और पाप न होने पर किसी प्रकार का विकार न होगा। हृदयशुद्धि की परीक्षा है—हृदय में राम, मन में दया और तन में सेवा होना। शबरी के मन में दया उपजी थी तो उसे राम मिल गये। लोग 'एकं ब्रह्म, द्वितीय नास्ति' की ऊँची-ऊँची बातें बघारते हैं किन्तु दया के अभाव में वह सब थोथी है। सर्वप्रथम दया सीखना आवश्यक है। ऐसा न हो कि—

काट कर औरों की गर्दन खैर अपना मांगता।
दो जगह इंसाफ को अहले वफा के वास्ते।

अरे दूसरे की गर्दन काट कर अपनी कुशल मांगने वाले ! न्याय को भी तू कुछ ख्याल दे। दूसरों के प्रति निष्ठुर व्यवहार करने वाला कैसे सकुशल रह सकता है ? सकुशल तो वही रहेगा जो दूसरों की अकुशल नहीं करेगा। शबरी ने दूसरों की कुशल चाही—पक्षियों की रक्षा की—तो देखो, उसे

राम मिले।

शवरी की कथा जैनरामायण में नहीं है। तथापि दया और प्रेम की उससे अच्छी शिक्षा मिलती है। इस कथा से पाठक और भी अनेक सद्‌गुण सीख सकते हैं। इसी कारण उसका यहां व्याख्यान किया गया है।

इस कथा से पाठक और भी अनेक सद्‌गुण सीख सकते हैं।

यहाँ इतना स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि तुलसी-रामायण में शवरी की कथा आगे चल कर है। मगर मैंने यहाँ उसका विवेचन कर दिया है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सम्पूर्ण रामायण बांचने के लिए पर्याप्त समय नहीं है। अतएव अवसर देख कर और उपयोगी समझ कर ही यहाँ उसका उल्लेख कर दिया है। मेरा मुख्य लक्ष्य रामायण बांचना नहीं है, रामायण से मिलने वाली शिक्षा को प्रकट करना है। शिक्षा को स्पष्ट करने के लिए घटनाओं का आधार लेना आवश्यक है और इसीलिए मैं अमुक-अमुक घटनाएँ भी बांच रहा हूँ।



राम-सीता का चर्चा-विनोद।

——::::()::::——

राम ने तृष्णा जीत ली थी। तृष्णा न जीती होती तो अयोध्या का राज्य त्याग कर वन मे क्यों आते? सारे जगत् को एक भाव से क्यों देखते? राज्य त्यागने पर भी अगर उनमें तृष्णा होती तो ऋषियों का आश्रम छोड़कर शबरी के यहाँ न जाते। तृष्णा वाले को वही व्यक्ति प्रिय लगता है, जिससे उसकी तृष्णा की पूर्ति हो सकती हो। मक्खी को अशुचि प्रिय लगती है। वह अशुचि की ओर दौड़ जाती है, चन्दन की ओर नहीं जाती। भ्रमर फूल के पास ही जाता है। इस प्रकार तृष्णावान् उसी से मिलता है जिससे तृष्णा की पूर्ति हो। तृष्णाविजयी ऐसा भेदभाव नहीं रखता। शबरी ऊपर से कैसे भी रही हो, राम उसके हृदय को जानते थे। इसलिए वे उसके पास पहुचे।

शबरी के यहाँ का दृश्य देखकर सीता सोचने लगी—अगर मैं अयोध्या मे ही रह जाती तो शबरी जैसी पवित्रात्मा से मेरी भेंट कैसे होती? रानियाँ तो बहुत मिलतीं मगर शबरी तो वन में ही मिल सकती थी। इसने मुझे भी बोध दिया है।

राम, लक्ष्मण और सीता के साथ शबरी से विदा लेकर आगे चले। शबरी ने किस प्रकार उनकी अभ्यर्थना-प्रार्थना की और किस प्रकार राम ने उसे ज्ञान दिया, यह बात बहुत लम्बी है। उसका उल्लेख नहीं किया जाता। राम आगे बढ़े। ऋषियों ने अपने आश्रम में चलने की प्रार्थना की। राम ने उन्हें कहा—'जिस शबरी के पैर के स्पर्श से सरोवर का जल निर्मल हो गया, वह शबरी यहाँ है। उसका निवासस्थान तीर्थधाम है। आप लोग तपस्वी हैं तो लोकमूढ़ताओं का परित्याग करें। लोकमूढ़ताओं का त्याग किये बिना अलौकिक सिद्धि नहीं मिल सकती।'

इस प्रकार राम आगे चले। राम और लक्ष्मण के बीच सीता ऐसी मालूम होती थी जैसे परमात्मा और आत्मा के बीच माया हो अथवा चन्द्र और बुध के बीच रोहिणी हो। कवियों ने ऐसी अनेक उत्प्रेक्षाएँ की हैं।

सीता चलती-चलती कहतीं—नाथ, देखिए, वन का यह दृश्य कितना भव्य और सुहावना है। आप मुझे अयोध्या में ही रख आना चाहते थे। मै राजमहल के कारागार में ही कैद रहती तो यह अद्भुत दृश्य कहाँ देखने को मिलते? वन में मुझे जो आनन्दानुभव हो रहा है, वह सुषमा के भव में तो क्या, अनेक भवों में भी नहीं मिला है!

इस प्रकार की बातें करते-करते तीनों चले जा रहे हैं। सीता ने फिर कहा—'नाथ, भाग्य बड़ा है या उद्योग? अगर

भाग्य बड़ा है तो क्या वह उद्योग के बिना फल सकता है? अगर उद्योग बड़ा है तो क्या वह भाग्य के बिना सफल हो सकता है?

राम ने सीता के प्रश्नों का प्रेमपूर्वक उत्तर दिया। दोनों में खूब चर्चा हुई। लक्ष्मण ने भी उसमें भाग लिया। अन्त में राम ने कहा—नाम कुछ भी हो, वास्तविकता देखनी चाहिए। तुम्हारे साथ तो दोनो हैं-उद्योग भी है और भाग्य भी है। मेरा भाग्य और लक्ष्मण का उद्योग तुम्हारा साथी है। दोनों के सहयोग से सब काम होते हैं। भाग्य के भरोसे रहकर उद्योग को छोड़ बैठना उचित नहीं है और भाग्य का निर्माण उद्योग से ही होता है।

सीता ने कहा—भाग्य आपका नहीं, मेरा बड़ा है। लक्ष्मण के भाग्य से भी मेरा भाग्य बड़ा है। आप के साथ आने में लक्ष्मण को कोई कठिनाई नहीं पड़ी। इन्हें किसी ने रोकने का प्रयत्न नहीं किया। लेकिन मुझे रोकने के लिए क्या कम प्रयत्न हुआ था? फिर भी मैं आप के साथ यहाँ आ गयी। इसी से जानती हूँ कि मेरा भाग्य बड़ा है।

राम—प्रिये! जो माया के सुख देखकर परमार्थ को भूल जाते हैं, वे एक तरह से भाग्य को ही भूल जाते हैं। भाग्य का सदुपयोग करने वाले वह हैं जो कल्पित सुखों के भुलावे में न पड़कर पारमार्थिक कार्य करते हैं। अर्थात् धर्म को न भूलने वाला ही भाग्य का उपयोग करता है। सीते!

राम, लक्ष्मण और सीता के साथ शबरी से विदा लेकर आगे चले। शबरी ने किस प्रकार उनकी अभ्यर्थना--प्रार्थना की और किस प्रकार राम ने उसे ज्ञान दिया, यह बात बहुत लम्बी है। उसका उल्लेख नहीं किया जाता। राम आगे बढ़े। ऋषियों ने अपने आश्रम में चलने की प्रार्थना की। राम ने उन्हें कहा—'जिस शबरी के पैर के स्पर्श से सरोवर का जल निर्मल हो गया, वह शबरी यहाँ है। उसका निवासस्थान तीर्थधाम है। आप लोग तपस्वी हैं तो लोकमूढ़ताओं का परित्याग करें। लोकमूढ़ताओं का त्याग किये बिना अलौकिक सिद्धि नहीं मिल सकती।'

इस प्रकार राम आगे चले। राम और लक्ष्मण के बीच सीता ऐसी मालूम होती थी जैसे परमात्मा और आत्मा के बीच माया हो अथवा चन्द्र और बुध के बीच रोहिणी हो। कवियों ने ऐसी अनेक उत्प्रेक्षाएँ की हैं।

सीता चलती-चलती कहतीं—नाथ, देखिए, वन का यह दृश्य कितना भव्य और सुहावना है। आप मुझे अयोध्या में ही रख आना चाहते थे। मै राजमहल के कारागार में ही कैद रहती तो यह अद्भुत दृश्य कहाँ देखने को मिलते? वन में मुझे जो आनन्दानुभव हो रहा है, वह सुषमा के भव में तो क्या, अनेक भवों में भी नहीं मिला है!

इस प्रकार की बातें करते-करते तीनों चले जा रहे हैं। सीता ने फिर कहा—'नाथ, भाग्य बड़ा है या उद्योग? अगर

भाग्य बड़ा है तो क्या वह उद्योग के बिना फल सकता है? अगर उद्योग बड़ा है तो क्या वह भाग्य के बिना सफल हो सकता है?

राम ने सीता के प्रश्नों का प्रेमपूर्वक उत्तर दिया। दोनों मे खूब चर्चा हुई। लक्ष्मण ने भी उसमें भाग लिया। अन्त में राम ने कहा—नाम कुछ भी हो, वास्तविकता देखनी चाहिए। तुम्हारे साथ तो दोनों हैं-उद्योग भी है और भाग्य भी है। मेरा भाग्य और लक्ष्मण का उद्योग तुम्हारा साथी है। दोनों के सहयोग से सब काम होते हैं। भाग्य के भरोसे रहकर उद्योग को छोड़ बैठना उचित नहीं है और भाग्य का निर्माण उद्योग से ही होता है।

सीता ने कहा—भाग्य आपका नहीं, मेरा बड़ा है। लक्ष्मण के भाग्य से भी मेरा भाग्य बड़ा है। आप के साथ आने में लक्ष्मण को कोई कठिनाई नहीं पड़ी। इन्हें किसी ने रोकने का प्रयत्न नहीं किया। लेकिन मुझे रोकने के लिए क्या कम प्रयत्न हुआ था? फिर भी मै आप के साथ यहाँ आ सकी। इसी से जानती हूँ कि मेरा भाग्य बड़ा है।

राम—प्रिये! जो माया के सुख देखकर परमार्थ को भूल जाते हैं, वे एक तरह से भाग्य को ही भूल जाते हैं। भाग्य का सदुपयोग करने वाले वह हैं जो कल्पित सुखों के भुलावे में न पड़कर पारमार्थिक कार्य करते हैं। अर्थात् धर्म को न भूलने वाला ही भाग्य का उपयोग करता है। सीते!

कदाचित् तुम्हारा भाग्य बड़ा है तो मेरा और लक्ष्मण का उद्योग बड़ा है। हम लोग वन मे न आते तो तुम्हारा भाग्य क्या करता ?

इस प्रकार मनोरंजन की बातें करते-करते तीनों चले जा रहे है। कुछ आगे चलने पर सीता ने दो वृक्ष देखकर कहा—'नाथ! इन दो वृक्षों को देखो। दोनों साथ हैं, दोनों की ऊँचाई भी बराबर है। लेकिन एक फल रहा है और दूसरा झड़ रहा है। यह अन्तर क्यों है ?

आप महुए और आम के वृक्षों को देखेंगे तो पता चलेगा कि जब महुए के पत्ते झड़ते है तब आम के पत्ते आते है। ऐसी ही कोई बात इन वृक्षों मे भी होगी।

सीता के प्रश्न के उत्तर में राम ने कहा—प्रिये ! यह दोनों वृक्ष संसार का स्वरूप बतलाते हैं। मनुष्यलोक की ऐसी ही रचना है। यहाँ एक गाता है और दूसरा रोता है। एक झाड़ दूसरे के सूख जाने पर रोता नही है। रोए तो अपनी भी लक्ष्मी गंवा बैठे। ढाक की एक डाली दावा से जल जाती है, दूसरी बच जाती है। बची हुई डाली, जली हुई डाली की सहानुभूति में अपने को सुखा नहीं डालती। वह फलती है, फूलती है और वृक्ष की शोभा बढ़ाती है। मगर वृक्ष में जो बुराई नहीं है, वह मनुष्य मे पाई जाती है। मनुष्य पर जब प्राकृतिक दुःख आता है तो वह एक और नया दुःख चिन्ता के द्वारा उत्पन्न कर लेता है।

सारा संसार लोभ और मोह से व्याप्त है। लेकिन ज्ञानी पुरुष इन वृक्षों को देखकर किसी भी समय चिन्ता में नहीं पड़ते।

सीता कहने लगी—सामने के दो वृक्षों को देखूँ या आपको और देवरजी को देखूँ? आज आप राजसी वैभव रूपी फल-फूलों से सम्पन्न होते, लेकिन आपने उसकी परवाह नहीं की। आपके कहने से मेरी समझ में भी आ गया कि संसार का नियम ही ऐसा है। इसी से मै आपके साथ आई हूँ। इस वृक्ष के पत्ते झड़ गये हैं किन्तु यह निर्जीव नहीं है। उसमें ऊपर से नीचे तक जीवनी शक्ति है। अतएव उसमें नये पत्ते आवेंगे। इसी प्रकार आप में असीम शक्ति है। आपको भी वह वैभव फिर मिले बिना नहीं रह सकता।

दाह नहीं ऋतुराज है, तज तरुवर मत भूल।
बिना दिये किम पाइए, नवपल्लव फल फूल॥

दाह से भी पत्ते झड़ जाते हैं और वसन्त ऋतु आने पर भी पतझड़ होता है। मगर दो प्रकार से पत्ते झड़ने में कुछ अन्तर है या नहीं? बहुत अन्तर है। सत्कार्य में दान देना वसन्त में पत्ते त्यागने के समान है। ऐसा करने से नवीन पत्ते आते हैं। जो सत्कार्य में नहीं देता उसकी सम्पत्ति पर डाका, चोरी आदि में से किसी का पाला पड़ता ही है।

सीता कहती है—प्रभो! इस वृक्ष की तरह आपके लिए भी यह वसंत है। थोड़े ही दिनों में आप फिर हरे हो जाएँगे।

राम कुछ और आगे चले। सीता को वहाँ एक पेड़ दिखाई दिया, जो एकदम झंखाड़ हो गया था। सीता ने कहा—देखिए, इसके नीचे फूल भी पड़े हैं और शूल भी पड़े हैं।

राम—सीते! यह संसार इस झंखाड़ के समान ही है। यहाँ शूल भी हैं, फूल भी हैं। नज़र चूकी और शूल पर पाँव पड़ा तो वह चुभे बिना नहीं रहता। गति में सावधानी रही तो फूलों पर पैर पड़ेगा। आनन्द होगा।

यह ससार झाड़ अरु झांखर,
आग लगे जल जाना है।
रहना नहीं देश विराना है।
ससार काँटन की बाडी।
उलझ उलझ मर जाना है।
रहना········बिराना है।

यह सत्य इतना सर्वव्यापी है कि राम और सीता पर भी घटित होता है। ऐसी दशा में इससे और कोई कैसे छुटकारा पा सकता है।

राम चलते-चलते और आगे पहुँचे। परस्पर वार्त्तालाप करते हुए और साथ ही तत्त्व की बातों पर विचार करते हुए आनन्द के साथ तीनों चले जा रहे थे। उनके आनन्द का क्या वर्णन किया जा सकता है? एक जगह घने वृक्षों मधु-मक्खियों के छत्ते लगे थे। उन्हें देखकर राम ने

कहा—प्रिये, यह देखो।

सीता—यह क्या है?

राम—इस वन में सैकड़ों घड़े रस से भरे हुए पेड़ों पर लटक रहे हैं। उनमें से कुछ यह हैं। यह मधु-मक्खियों की कलात्मक कृति है।

सीता—ओह! मधुमक्खियों की यह कृति सराहनीय है। जब क्षुद्र मक्षिकाएँ ऐसा सुन्दर कार्य कर सकती हैं तो मनुष्यों को कितने सुन्दर कार्य करने चाहिए?

मानवीय भौतिक विज्ञान ने संसार को जो देन दी है उससे मनुष्य की मनुष्यता ही ख़तरे में पड़ रही है। इस विज्ञान के द्वारा मनुष्य-समाज का संहार सरल हो गया है। बात की बात में हजारों-लाखों निरपराध मनुष्यों की हत्या कर डालना साधारण बात हो गई है। मगर मधु-मक्खियों का विज्ञान और उनकी कला ऐसी नहीं है। उससे किसी का अहित नहीं, हित ही होता है। उनके विज्ञान को देखकर मनुष्य को दंग रह जाना पड़ता है। मक्खियाँ पहले छत्ता तैयार करती हैं। छत्ता बनाने में ऐसी बुद्धिमत्ता से काम लिया जाता है कि छत्ते के सारे खाने बराबर और एक से होते हैं। न कोई छोटा, न बड़ा। फिर उन खानों में मोम लगाती हैं, जिससे शहद गिर न जाए। मोम इतना कम लगाती हैं कि जिससे कम लग ही नहीं सकता या जिसके बिना काम ही नहीं चल सकता। सोने पर मुलम्मा लगाने

वाले कारीगर ने किसी से यह कला सीखी होगी, मगर यह मक्खियाँ किस गुरु के पास सीखने गई हैं! मोम लगा चुकने पर मक्खियाँ शहद लाना आरंभ करती हैं। वे पुष्प-विज्ञान में बड़ी 'पंडिता' होती हैं। उन्हें मालूम रहता है कि किस-किस फूल में कैसा-कैसा रस होता है? रस लाने के लिए उनके पास वही एक औजार है, जिससे उन्होंने छत्ता बनाया और मोम लगाया था। दूसरा औजार उनके पास नहीं है। एक ही से वह सब काम ले लेती हैं। कम से कम मोम लगा कर वह अधिक से अधिक रस भरती हैं। इस तरह की क्रिया करके वह रस का संचय करती हैं। उसे स्वयं खाती नहीं और दूसरा लेने आता है तो अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ उसका सामना करती हैं। उनका तैयार किया हुआ शहद ऐसा होता है कि संसार का कोई भी पकवान उसकी समता नहीं कर सकता।

शहद की मक्खी के विषय में एक उक्ति प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक बार राजा भोज दरबार में बैठे थे। इतने में उनके सामने एक मक्खी आई। वह दोनों पाँव मल कर सिर पर लगाने लगी। भोज ने यह देख कर कहा—जान पड़ता है, मक्खी कोई फ़रियाद करने आई है। क्या आपमें से कोई बता सकता है कि क्या फ़रियाद कर रही है?

भोज का प्रश्न सुनकर दरबारी दंग रह गए। तब दरबार के एक कवि ने कहा-यह मक्खी मुझसे मिलकर आपके

पास आई है। मुझसे इसने एक फरियाद की थी। मै ने कहा-मेरे किये कुछ न होगा। तुम राजा के पास जाओ, उनसे फरियाद करो।

राजा ने पूछा—इसकी फ़रियाद क्या है ?

कवि ने कहा—

देयं भोज ! धनं सदा सुकृतिभिर्यत् संचितं सर्वदा,
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्त्तिः स्थिता ॥
अस्माकं मधु दानभोगरहितं नष्टं चिरात् संचितं,
निर्वेदादिव पाणिपादयुगलं घर्षत्यहो मक्षिका ॥

यह मक्खी कहती है—महाराज भोज ! सञ्चित धन को सुकृत में लगाओ। संचय ही संचय करने से क्या लाभ होगा ? दान के कारण ही बलि, कर्ण, विक्रम आदि प्रसिद्ध हैं। आज वे नहीं हैं, फिर भी उनकी कीर्त्ति बनी हुई है। संचय करने से उनकी कीर्ति नहीं फैली। अगर तुम संचय ही करते रहे और दिया कुछ नहीं तो वह नतीजा भोगना पड़ेगा जो मुझे भोगना पड़ा है। जो बात बिन्दु में है, वही सिन्धु में है। मै ने बड़ी चतुराई से मधु संचित किया। न दान दिया, न खाया। अन्त में लूटने वाले लूट ले गये और मै हाथ मलती ही रह गई।

माखी होय मध कीधुं
न खाधुं न दान दीधुं।
लूट नारा लूटी लीधुं रे,

पामर प्राणी !

चेते तो चेतावुं तो ने रे !

इतिहास में भी एक ऐसी घटना का उल्लेख है। कहते हैं—जब देव-गिरि का किला टूटा तो उसमे से बहुत द्रव्य निकला। शायद छह सौ मन मोती, डेढ़ सौ मन हीरा और दस हजार मन चाँदी तौलकर मुसलमानों को संधि में देनी पड़ी। अगर यह सत्य है तो देवगिरि का संग्रह कितना विशाल रहा होगा ? संग्रहकर्त्ता ने कभी सोचा होगा कि यह संग्रह किसी दिन लुटेरों के हाथ लग जाएगा ? मगर लुटेरे आये और लूटकर चलते बने।

मक्खी के पास मधु था इसलिए मधु लूटा गया। तो क्या आपकी धनसम्पत्ति नहीं लुटेगी ? धनसम्पत्ति के लुटेरों की क्या कमी है ? पृथ्वी का एक ही कम्पन करोड़ों का द्रव्य हड़प कर जाता है। आग की लपटें देखते-देखते लाखों की पूँजी स्वाहा कर डालती हैं। नदी की बाढ़ भयानक सर्पिणी के समान सरपट भागती आती है। पल भर में प्रलय मचा देती है। यह सब प्राकृतिक उपद्रव हैं। इनके अतिरिक्त चोर, डकैत, लुटेरे, गँठकटे आदि भी कम नहीं है। अपनी सम्पत्ति को किस-किस से बचाने की कोशिश करोगे ? कदाचित् भाग्य तेज हुआ और इन सब से धन बचा भी लिया तो मृत्यु के सामने आने पर क्या उपाय करोगे ? उस समय किसी की सहायता काम नहीं आएगी।

पाप से कमाई सारी पूँजी पाई-पाई त्य गनी होगी और सिर्फ पाप-पुण्य लेकर प्रस्थान करना पड़ेगा। जिनके पास संपत्ति नहीं है, उनके पास भी शरीर तो है ही। वह भी एक दिन त्यागना पड़ेगा। अतएव कल्याण इसी में है कि पुण्य के उदय से जो कुछ भी आर्थिक, शारीरिक या बौद्धिक वैभव आपको मिला है, उसे परोपकार के पुनीत कार्य मे व्यय कर दो। शरीर का मांस भी लुटने को है, जवानी भी लुटने को है। इसे सुकृति में लगाओ। गरीब और अमीर—सभी को समझ लेना है कि केवल संग्रह करने में लगने का परिणाम दिवालिया बनना है। बहिनों को सोना बहुत प्रिय लगता है। मगर सोना पहनने से क्या जल्दी स्वर्ग मिलता है ? वर्त्तमान छोटा और भविष्य बहुत लम्बा है। तुम्हें भविष्य से मुकाबिला करना है। इसलिए वर्त्तमान से आगे भी देखो और भविष्य की तैयारी करो।

राम की बात सुनकर सीता ने कहा—नाथ ! आपने भली विचारी कि स्वेच्छापूर्वक राज्य त्याग दिया। हमें इन मक्खियों से शिक्षा लेनी चाहिए। मक्खियाँ मधु के द्वारा दूसरों का मुँह मीठा करती है। मनुष्य को कम से कम मीठी बोली तो बोलनी चाहिए।

तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजे चहुँ ओर।
शीकर इक मंत्र है, तज दे वचन कठोर।

दुःख पर विजय पा लेने के कारण राम और सीता के

लिए वन भी कैसा आनन्दप्रद हो गया है ! सीता वन को अवध से भी अधिक सुखद मान रही है। वह कहती है— मेरे लिए वन क्रीड़ास्थल बन गया है। मैंने महल में जो सुख नहीं पाया था वह यहाँ मिल रहा है।

बाह्य पदार्थों में न सुख है, न दुःख है। सुख-दुख तो अधिकांशतः मन की परिणति हैं। यही कारण है कि एक को जिस वस्तु में सुख का स्वाद आता है, उसी में दूसरे को दुःख की गंध आती है। एक ही वस्तु किसी समय आनन्ददायक प्रतीत होती है तो वही वस्तु दूसरे समय उसी को दुखदाई जान पड़ने लगती है। यह सब मन की संवेदना मात्र है। मन को समझा लेने पर स्थिति और ही हो जाती है। फिर प्रत्येक परिस्थिति में आनन्द ही आनन्द दीखता है।

सीता कहती है—'प्रभो ! बगीचे में माली जल सींच-सींच कर थक जाते हैं, फिर भी वहाँ वृक्ष इतने बड़े नहीं होते। और यहाँ के पेड़, जरा देखिए तो सही, कितने बड़े-बड़े हैं ! इन्हें यहाँ कौन सींचने आता है ?,

प्रजा के दुर्भाग्य से आज जंगल कटते जा रहे हैं, मानो प्रजा का भाग्य ही कट रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य का जंगल के साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस बात पर विचार किया जाय तो जंगल का महत्त्व मालूम होगा।

सीता की बात सुन कर राम ने कहा—'प्रिये ! कभी-कभी मनुष्य यह विचार कर रोता है कि हाय, अब मेरा क्या

होगा ? अगर वह इन वृक्षों को देखे तो उसे पता चलेगा कि मेरा भाग्य कुछ ऐसा वैसा नहीं है। इन वृक्षों को कौन सींचता है ? इनकी चोटी तक पानी कौन पहुँचाता है ? फिर भी यह हरे-भरे हैं ! इनसे शिक्षा मिलती है कि जो जिस परिस्थिति में है, उसका जीवन उसी परिस्थिति में सुखपूर्वक बीत सकता है। आवश्यकता धैर्य की है।'

कुछ और आगे चलकर सीता कहने लगी—'नाथ ! जिन हाथी-दाँतों के लिए लोग मारे-मारे फिरते हैं और जिन मोतियों के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, वे हाथी-दाँत और मोती तो यहां बिखरे पड़े हैं। यहाँ इनकी कोई पूछ ही नहीं है। मै जब घर पर थी तो इन चीजों पर बड़ी ममता थी। आज इनकी कोई कीमत ही नहीं जान पड़ती।'

काल-चक्र के तीसरे और चौथे आरे के वर्णन में बतलाया गया है कि उस समय हीरा, पन्ना आदि रत्न कंकरों की तरह पड़े रहते थे। उस समय के लोगों को उनकी परवाह नहीं थी। बात यह है कि वे लालची नहीं थे। आज लालच बढ़ गई है तो रत्नों की भी कमी हो गई है। जहाँ लालच है वहाँ वस्तु की कमी है। जहाँ लालच नहीं वहाँ किसी वस्तु की कमी ही नहीं।

वन-वासियों की श्रद्धाभक्ति

तीनों जने और आगे बढ़े। इनके वन में आने की खबर सब ओर फैल गई थी। जिस ग्राम के समीप ये पहुँचते नर-

नारियों के झुंड के झुंड इकट्ठा हो जाते थे। सीता जब थकी मालूम होती तो राम, लक्ष्मण से कहते—भाई, यह वट वृक्ष अच्छा है। कुछ देर ठहर जाओ। राम की बात सुनकर लक्ष्मण समझ जाते कि जानकी थक गई हैं।

लक्ष्मण दौड़ कर पत्ते आदि ले आते, बिछा देते और उस पर विराजने के लिए निवेदन करते। जहाँ यह त्रिमूर्ति बैठ जाती वहाँ के नर-नारी अपने भाग्य की सराहना करने लगते। कहते—अपने भाग्य बड़े अच्छे हैं कि राम, लक्ष्मण और सीता यहाँ विराजे हैं और हमें उनके दर्शन करने का अधिक अवसर मिल गया है। ग्रामीण लोग खाली हाथ आना अनुचित समझते थे। अतः आते समय कोई जल का भरा लोटा लाता, कोई फल लाता, कोई मेवा लाता, कोई कुछ और लाता। इस प्रकार कुछ न कुछ भेंट लेकर जनता इनके सामने आती और बड़ी श्रद्धा-भक्ति-प्रीति के साथ उन्हें अर्पित करती थी। लोगों का आंतरिक प्रेम देखकर राम कहते—'सीते! क्या इनका आतिथ्य स्वीकार नहीं करोगी?' तब सीता कहती-आतिथ्य तो सब अवध में छोड़कर ही हम यहाँ आये हैं। फल जंगल में ही बहुत हैं। गाँव का तो पानी पी लेना ही पर्याप्त है।

सीता की बात से राम समझ जाते कि इसे प्यास लगी है। तब राम ग्रामीणों से कहते—'आप लोग और कुछ देने का कष्ट न करें, केवल जल दे दीजिए।' जब लोग न मानते

और आग्रह करते तो राम उन्हें समझा देते-जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता हो उस समय वही वस्तु देनी-लेनी चाहिए। इस प्रकार कहकर सिर्फ जल ग्रहण कर लेते थे । उस समय कुछ लोग पछताने भी लगते कि-क्या पता था, राम केवल जल ही लेंगे अन्यथा हम भी जल ही लाते।

ग्रामीण स्त्रिया राम, लक्ष्मण और सीताको देखकर आपस में कहने लगतीं-दोनों भाई-भाई जान पड़ते है। कैसी सलौनी जोड़ी है ! ये किसके पुत्र हैं ? इनके साथ यह स्त्री कौन है ? देवांगना और अप्सरा का नाम सुना करते थे, पर इन्हें देखकर तो यही मालूम होता है कि वे भी इनसे ज्यादा सुन्दर क्या होगी ? कोई-कोई कहती—यह तीनों है कौन ? कही देव-माया तो नहीं है ? यह हमें छलने तो नहीं आये हैं ? चलो, इन देवी से ही पूछ लें। इस प्रकार विचार कर स्त्रियाँ सकुचाती हुई सीता के पास आतीं। उनसे कहतीं— 'हम गॉव की रहने वाली गॅवार स्त्रियॉ हैं। हमें बोलना नहीं आता-हम नहीं जानतीं कि बड़ों के साथ किस तरह बोलना चाहिए। इसलिए आप हमारा अपराध क्षमा करें। हम यह जानना चाहती हैं कि यह दोनों आपके कौन हैं ? और तीनों कहॉ रहते हैं और कहाँ जा रहे हैं ?

सीता के साथ बड़ी-बड़ी रानियॉ भी बात करने का साहस नहीं कर सकती थीं। लेकिन इन स्त्रियों को बात

करती देखकर सीता सोचतीं—मैं अभी तक कैसे बंधन में थी ? मैं इन भोली बहिनों से बातचीत भी नहीं कर सकती थी। अच्छा हुआ मैं पति के साथ वन आई और एक बड़े बंधन से छूट गई। आज दिल खोल कर दूसरों से बात कर सकती हूं। और दूसरों की सुन सकती हूं। छोटे-बड़े का कल्पित भेद समाप्त हो गया, यह बड़े आनन्द की बात है।

स्त्रियों के प्रश्न का सीता उत्तर देतीं--यह जो छोटे हैं, मेरे देवर हैं। महाराज दशरथ के पुत्र और महारानी सुमित्रा के आत्मज हैं। स्त्रियां पूछतीं—और यह दूसरे कौन हैं ? तब सीता स्त्री स्वभाव के अनुसार कुछ लजा जाती। कहती-मेरे देवर के बड़े भाई हैं स्त्रियां समझ लेतीं--तब तो यही राम हैं। और आप सीताजी होंगी ? स्त्रिया 'कहती—हाँ मेरा नाम सीता है-तुम्हारा अन्दाज़ सही है।

यह जान कर स्त्रियों के हर्ष का पार न रहता। वे आपस में कहने लगती-अरी सखियो ! हमारे बड़े भाग्य हैं कि सीताजी के साथ राम और लक्ष्मण यहाँ पधारे हैं। अपनी आंखें सार्थक कर लो। जनम सुधार लो। उनके दर्शन कर लो।

कोई स्त्री सीता की सुकुमारता और राम लक्ष्मण की सुन्दरता देखकर कहती-इनके माता पिता ने इन्हें वन में भेजने की हिम्मत कैसे की होगी ? उनकी छाती कितनी कठोर

होगी? जब यह यहाँ से रवाना होंगे तो हमको भी दुख होगा। फिर इनके माता पिताने इन्हें कैसे रवाना किया होगा? उनका विछोह उन्होंने कैसे सहा होगा?

दूसरी कहती—बड़े आदमियों का धैर्य भी बड़ा होता है। उनमें बड़ा धैर्य न होता तो हमें इनके दर्शन का सौभाग्य कैसे मिलता?

तीसरी कहती—इनकी सौतेली माता कैकेयी ने इन्हें वन भेजने का जाल रचा था। मैंने एक जगह ऐसी बात सुनी थी।

चौथी—हाय! कैकेयी का कलेजा कितना कठोर होगा! जिन्हें देखकर वैरी का हृदय भी आनन्द से भर सकता है, उन पुत्र पतोहू पर भी उसने वैरभाव रक्खा और उन्हें वन भेज दिया!

पाँचवीं—इन्हीं से पूछ देखो न, बात क्या है?

तब कोई चतुर समझी जाने वाली स्त्री सीता के पास आकर पूछती—सीता जी! आपकी सासू ने आप तीनों को वन में भेज दिया है? अगर यह सच है तो आपकी वह सासू बड़ी पाषाण-हृदया है। कहाँ आपकी यह कोमलता और कहाँ कंटकों, कंकरों से व्याप्त यह भयंकर कानन!

सीता स्नेह भरे स्वर में कहती-नहीं बहिन, सासू ने कुछ बुरा नहीं किया। उनका भला हो जिन्होंने मुझे बंधन में से निकालकर इस सुख में भेजा है! मै वन में न आती तो तुम सब से मिलना कैसे होता?

सीता की बात सुनकर स्त्रियाँ आपस में कहती-सुनो यह क्या कहती है ! अपन कैकेयी को कोसती थीं और सीताजी उनका उपकार मानती है ? बहिनो, हम अपने पाप धो डालें तो ठीक है । इनकी सासू ने इतना किया-इन्हें घर से निकाल दिया, फिर भी यह उनका उपकार ही मानती है । अगर अपनी सासू कड़ी बात कह दें तो अपन को भी उनके प्रति बुरे विचार नहीं करना चाहिए ।

इसी प्रकार पुरुषों मे भी तरह-तरह की बाते होतीं । जब सीता की थकावट दूर हो जाती तो लक्ष्मण कहते—'हमे आगे जाना है । वन का मार्ग बता दो । आनन्द मे रहना । तुम्हारे किये स्वागत के लिए हम आभारी है ।'

यह सुनकर उपस्थित नर-नारियो के हृदय मे धक्का-सा लगता । उनके वियोग मे बहुत—सी आँखे आँसू बहाने लगतीं । बहुतेरे लोग रास्ता बताने उनके साथ चलते । मगर राम अपने प्रेमपूर्ण स्वर से उन्हें साथ न चलने के लिए समझाते और रास्ता जानकर आगे चल देते । उन्हें जाते देख कोई स्त्री कहती—जब ऐसे-महापुरुष भी पैदल चलते हैं तो बड़े-बड़े वाहन वृथा ही बने है ! नाक वाले को फूल न मिले और पीनस वाले को मिले तो फूल का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए ! अंधे को काजल मिले और आँख वाले को न मिले, बहरे को संगीत सुनाया जाय और कान वाले को नहीं, तो जैसे यह उलटी रीति है वैसे ही इन्हें वाहन न मिलना और

दूसरों को मिलना भी उलटी रीति है।

दूसरी कहती—इस तरह के पुरुष भी जब वल्कल वस्त्र पहनते हैं तो संसार में वस्त्र और आभूषण बनना व्यर्थ है। जो जिसके योग्य है वह उसे मिलना चाहिए। जो वस्त्राभूषण के योग्य हैं उन्हें छाल पहनने को मिलती है तो यह बड़ी विषमता है। धिक्कार है उन वस्त्राभूषणों को, जिन्होंने राम के शरीर को सुशोभित नहीं किया और जिन्हे राम ने त्याग दिया है!

तीसरी कहती—इनके गहने-कपड़े किसी ने छीने नहीं हैं। गहनो-कपड़ों के लिए दुनिया के झगड़े देखकर इन्होंने स्वय त्याग दिये हैं। आज गहनों-कपड़ों के प्रति तुम्हें इतना विराग हुआ है तो यह तो करो कि अब कभी इनके लिए झगड़ा नहीं करोगी। गहनों और कपड़ों के लिए लड़ना छोड़ो। सीता जैसी राजकुमारी ने गहने-कपड़े त्याग दिये और हम उनके लिए लड़ें, यह कितनी लज्जा की बात है!

इसी प्रकार कोई उनके भोजन के विषय मे सोचती, कोई उनके त्याग की बात कहती। कोई सीता की सुकुमारता का बखान करती, कोई राम-लक्ष्मण की सुन्दरता की प्रशंसा करती। कोई कहती—विधि की गति निराली है। चन्द्रमा जगत को प्रकाशित करता है लेकिन क्षय रोग से ग्रस्त है। महीने में एक ही बार पूरा होता है, अन्यथा क्षीण ही बना रहता है। संसार की समस्त आशाएँ पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष

वृक्ष हुआ है ! सब की चिन्ता हरने वाला चिन्तामणि पत्थर हुआ है ! कामधेनु पशु है ! इस प्रकार विधि की सभी लीलाएँ निराली हैं। यही बात इनके लिए भी है। यह तीनों सुख के योग्य है पर आज सुख-विहीन होकर वन में विचरते हैं।

कोई कहती--पूर्व जन्म के कर्म किसी को नहीं छोड़ते। सभी को भोगने पड़ते हैं। इन्होंने भी कुछ ऐसे ही कर्म किये होंगे।

इसकी बात काटती हुई दूसरी कहती--ना बहिन, ऐसा मत कहो। यह महाभाग्यशाली हैं। तुम्हें विश्वास न हो तो इन्हीं से पूछ लो।

वह कहती—वे तो जा रहे हैं। पूछें कैसे ?

तब एक साहसी स्त्री झपट कर आगे बढ़ती और सीता के पास जाकर कहती—आप जाती तो हैं, पर जाती-जाती एक बात बता दें तो कृपा होगी।

सीता—पूछो, पूछो बहिन ! क्या जानना चाहती हो ?

तब उसने कहा—क्या कारण है जो आपको राजमहल त्यागना पड़ा है और इस प्रकार वन में भटकना पड़ रहा है ? क्या आपके किसी पूर्वकृत अशुभ कर्म का यह फल है ?

सीता ने कहा—बहिन, तुम भूल में हो। थोड़ी देर के हमारे परिचय से तुम्हे सुख उपजा है या नहीं ? अगर हम

घर पर ही रहते तो तुम्हें यह सुख कैसे होता ? फिर तुम्हीं सोचो कि हम पुण्य के उदय से वन में आये हैं या पाप के उदय से ? सुख छूट जाने पर जो रोता है उसे पाप का उदय समझना चाहिए। लेकिन जिन्होंने अपनी इच्छा से सुख त्यागा है, उन्हें पाप का उदय नहीं है। उनका पुण्य उदय में आया है। पुण्य के उदय से ही हमारा वन में आना हुआ है, इसी से तुम जैसी अनेक बहिनों को आनन्द मिलेगा।

सीता का ऐसा उत्तर सुनकर स्त्रियाँ प्रसन्न हो जातीं। कहतीं—धन्य हैं राजा जनक, धन्य है महाराज दशरथ, धन्य हैं महारानी कौशल्या और सुमित्रा! वह नगर और ग्राम भी धन्य है जहाँ आपके पैर पड़ते है। आज हमारे भाग्य खुले कि आपके दर्शन हुए। हमारे नेत्र आज सफल हुए। बस, यही प्रार्थना है कि जब आप लौटे तो इधर से ही लौटें। हमें दर्शन देती जाएँ।

सीता उनसे कहती—कल का भी क्या ठिकाना है बहिन! मै हमेशा तुम्हारे पास नहीं रह सकती। हाँ, मेरा धर्म सदैव तुम्हारे पास रह सकता है। अगर तुम मेरे धर्म को अपना लो तो मेरी आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

इस प्रकार राम, सीता और लक्ष्मण जिधर निकल जाते, उधर एक अपूर्व वायुमंडल तैयार हो जाता था। लोग, उनका साथ नहीं छोड़ना चाहते थे और जब वे लोगों का साथ छोड़ जाते तो वे ठगे से रह जाते थे। गाँवों के जो लोग

खेत-खलिहान में होते और राम के आने पर उनके दर्शन से वंचित रह जाते थे, वे बाद में आकर घोर पश्चात्ताप करते। उनमें जो सबल होते, दौड़ कर उसी ओर जाते जिस ओर राम गये होते। निर्बल पछताते रह जाते। राम को देखने वाले उनसे कहते--तुम्हारा पछताना ठीक ही है। वास्तव में बड़ा लाभ खो दिया है। मगर अब पछताने से क्या लाभ है ?



अधीर अवध



अब हमे अवध पर दृष्टि डालना चाहिए। राम, लक्ष्मण और सीता के चले जाने के पश्चात् अवध सूना हो गया। सर्वत्र उदासी और विषाद का साम्राज्य छा गया। ऐसा जान पड़ता मानों अवध की श्री सीता के रूप में, अवध का सौभाग्य राम के रूप में और अवध का सुख लक्ष्मण के रूप में चला गया। अवध जसे भयावना लगने लगा।

अवध की जनता का चित्त परिताप से पीड़ित था। राज-परिवार ऐसा मालूम होता जैसा किसी ने अभी-अभी उसका सर्वस्व छीन लिया हो। महारानी कौशल्या का क्या पूछना है? उन्हें क्षण भर के लिए चैन नही था। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते उन्हें अपने दोनों पुत्रों और पुत्रवधू की ही चिन्ता रहती। सोचतीं-इस समय राम आदि कहाँ होंगे? क्या करते होंगे? हाय, सुकुमारी सीता कैसे पैदल होगी? कहाँ सोती होगी? कौन जाने किस प्रबल पाप उदय आया है!

इस प्रकार अवध में घर-घर दुःख व्या

भरत को जो कष्ट हुआ, उसकी तुलना शायद किसी से नहीं हो सकती। भरत अन्तर्दाह से भीतर ही भीतर दग्ध हो रहे थे। उन्होंने अपने आपको सब से ज्यादा पापी माना। वह सोचने लगे—'माता को क्या दोष दिया जाय और प्रजा का तो कोई अपराध ही नहीं है। पिताजी ने भी अपने वचन का पालन करके महापुरुषों के मार्ग पर चलने का विचार किया। यह विचार उत्तम ही है। इस तरह और किसी का अपराध नहीं है—अपराध सिर्फ मेरा है। मै पापी हूँ। मेरे ही कारण राम, लक्ष्मण और सीता को वन में जाना पड़ा।' इस प्रकार विचार कर भरत अत्यन्त दुःखित रहते। उनकी व्यथा इतनी अधिक थी कि वह भीतर ही भीतर छिपी नहीं रहती। उनके नेत्र उनकी अन्तर्व्यथा को प्रगट कर देते और उनका विषाद-मय मुख उसकी साक्षी देता था। राम के वन जाने के बाद कभी किसी ने भरत को प्रसन्न नहीं देखा।

भरत को इस प्रकार दुखी होते देख प्रधान प्रजाजनों ने उन्हें सान्त्वना देने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा-'आप क्यों दुखी होते हैं ? आपने राम को निर्वासन नहीं दिया है। उनके निर्वासन में आपका कोई हाथ भी नहीं है। आप सर्वथा निरपराध हैं। यह बात हम सभी लोग जानते हैं और हम से ज्यादा आप स्वयं जानते हैं।'

भरत ने कहा-प्रजाजनो ! प्रथम तो यह कि उनके निर्वासन मे मैं ही निमित्त हूँ। अगर मेरा जन्म ही न होता तो

राम को वनवास क्यों भोगना पड़ता ? कैकेयी माता के उदर से जन्म लेना ही मेरे लिए अपराध और पाप हो गया। कदाचित् मैं निर्दोष भी मान लिया जाऊँ तो भी क्या मुझे संतोष हो सकता है ।? मै अपने लिए नहीं रोता। राम और लक्ष्मण सरीखे लोकोत्तर पुरुषों का और सीता सरीखी सती का वन-वन में भटकना और मेरा राजमहल मे रहना ही मेरे लिए घोर व्यथा का कारण है।

प्रजाजन—राम तो चले ही गये हैं। अब आप उनके जाने के दुःख में ही डूबे रहेंगे और प्रजापालन की ओर ध्यान न देंगे तो प्रजा की क्या स्थिति होगी ? राम के वियोग में हम लोग दुखी हैं। इस दुख के दाह पर आपको चन्दन लगाना चाहिए या नमक ? आप जले पर नमक छिड़कने का काम कर रहे हैं। स्वयं दुःख में डूबे रहकर प्रजा का दुःख वढ़ा रहे हैं। पानी की वर्षा के विना कुछ वर्ष तक काम चल सकता है पर राजा के विना—राज्यव्यवस्था के अभाव में—घड़ी भर चलना कठिन है। आप स्वयं तत्त्वज्ञ हैं। परमार्थ के ज्ञाता हैं। संसार के स्वरूप को आप भलीभाँति समझते हैं। आपको क्या समझाए ? होनहार होकर ही रहता है। अतएव आप शोक का त्याग करें। राम कह गये हैं कि भरत को देखकर मुझे भूल जाना। मगर आप तो दुःख की साक्षात् मूर्ति बने हैं। हम लोग आपको देखकर राम को कैसे भूलें ?

प्रजाजनों में जो सब से वृद्ध थे, कहने लगे—'महाराज !'

आप चिन्ता क्यों करते हो ? चिन्ता उस क्षत्रिय के लिए की जाती है जो पतित होता है और दयाधर्म का पालन नहीं करता। आप किसकी चिन्ता करते हैं ? आप अपने पिता को देखिए, जो राजपाट त्याग कर संयम ग्रहण करने की तैयारी कर रहे हैं और जिन्होंने अपने प्राणों से अधिक प्रिय पुत्र को वन भेज दिया किन्तु धर्म नहीं छोड़ा। इसी प्रकार ब्राह्मण वह चिन्ता के योग्य है जो ब्रह्म कर्म छोड़कर आजीविका के लिए ही शास्त्रों का अर्थ बताता फिरता है। और वह वैश्य भी चिन्ता के योग्य है जो अपना ही पेट भरता है, वाणिज्य-व्यवसाय में बेईमानी करता है और कृपण है। हे भरतजी ! आपके यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य- सभी अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। शूद्र भी अपने कर्त्तव्य का भलीभाँति पालन कर रहे हैं। फिर आप किस की चिन्ता करते है ?

संसार में चारों वर्ण अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो संसार का बड़ा हित हो। मगर आज वर्णव्यवस्था का असली स्वरूप विकृत हो गया है। वर्णव्यवस्था में कर्त्तव्य-पालन की प्रधानता नहीं रही और ऊंच-नीच की अनुचित एवं असत् भावना व्याप्त हो गई है। वस्तुतः ऊंचा वह है जो अपने वर्ग के अनुकूल कर्त्तव्य का भलीभांति पालन करता है। और नीच वह है जो अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है। इस तरह चाहे कोई ब्राह्मण हो या शूद्र हो, अगर वह कर्त्तव्यनिष्ठ है तो ऊँचा है और अगर कर्त्तव्य से च्युत हो तो

नीचा है। मगर आज ऊँचता-नीचता जन्मगत मानी जाती है। इसीलिए घोटाला हो रहा है। कर्त्तव्य पिछड़ गया है और जन्म प्रधान बन गया है।

संसार में चारों ही वर्ण रहेंगे। शूद्रों के प्रति घृणा करने से आज भारत की दुर्दशा हो रही है। पैर सिर पर नहीं चढ़ सकते, यह सही है, फिर भी अगर पैरों की संभाल न रक्खी जाय, पैर रोगी हो जाय तो सारा शरीर बिगड़े बिना नहीं रहेगा। पैर के बिगड़ जाने पर कभी सिर भी बिगड़ जाएगा। चार वर्णों में शूद्र पैर की जगह बतलाये गए हैं, मगर इससे शूद्रों के प्रति घृणा करने का कोई कारण नहीं है। लोग पैरों की सेवा करते हैं, मस्तक की सेवा कोई नहीं करता। चरण-सेवा सभी करते हैं, मस्तक-सेवा कोई नहीं करता। शूद्र का काम सेवा करना है लेकिन भले आदमी प्रत्येक काम मे सेवक को आगे रखते है।

आप कैदियों से घृणा करते होंगे लेकिन वे तो प्रकट पापी हो चुके हैं। उनसे घृणा करने की क्या आवश्यकता है? अपने छिपे पापों को देखो। भक्त लोग अपने संबंध में कहते हैं:—

तू दयालु दीन हूँ,
तू दानी हूँ भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी,
तू पाप पुँज-हारी

भक्त लोग इस प्रकार अपना पाप स्वीकार कर लेते हैं। इसी कारण उनका चित्त निर्मल हो जाता है। आपको चित्त-शुद्धि करनी हो तो आप भी अपने दोष देखो और परमात्माके समक्ष उन्हें प्रकट कर दो। अपने पाप कदाचित् दूसरों से छिपाने में समर्थ भी हो जाओगे तो भी परमात्मा से नहीं छिपा सकते। परमात्मा रत्ती-रत्ती जानता है। अतएव पापियों से घृणा करने के बदले अपने पापों से ही घृणा करो। यह कल्याण का मार्ग है।

भरत से उनके गुरुजन कहते—हे भरत ! तुम किसकी चिन्ता करते हो ? शोचनीय तो वे साधु हैं जिन्होंने केवल पेट भरने के लिए साधुपन अंगीकार किया है। राजा होने के नाते ऐसे साधुओं की चिन्ता तुम्हे हो सकती है। पर तुम्हारे राज्य में तो ऐसे साधु भी नहीं है। फिर किस बात की चिन्ता करते हो ?

हे भरत ! तुम्हारे राज्य में चारों आश्रम भी अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। फिर चिन्ता का कारण क्या है ? उठो, चिन्ता छोड़ो और राज्य सँभालो। चिंतित रहने से राज्य—व्यवस्था बिगड़ जायगी।'

कौशल्या भी भरत को उदास देखकर कहतीं—वत्स भरत ! तुम मेरे लिए दूसरे राम ही हो। मेरे लिए राम और भरत दो नहीं है। तुम्हें देखकर मै राम के वियोग का दुख भूल जाती हूँ। लेकिन तुम तो मुझसे भी ज्यादा शोकातुर रहते

हो! राम वन गये, पति विरक्त हैं और तुम्हारी यह दशा है! ऐसी स्थिति में राजपरिवार और प्रजा का क्या हाल होगा? वत्स? चिन्ता छोड़ो। भवितव्य को कोई टाल नहीं सकता। स्वस्थ होकर कर्त्तव्य पूरा करो।

इस प्रकार माता-पिता तथा गुरुजन—सभी भरत को समझाते थे। वे शास्त्र का प्रमाण भी देते थे कि—

आज्ञा गुरूणां खलु धारणीया।

गुरु-जनों का आदेश अवश्य मानना चाहिए। पिताजी कहते हैं—मेरी दीक्षा में विघ्न मत डालो। और हम आपको गुरुजन भी कहते हैं कि आपको राज्य सभालना चाहिए। गुरुजनों की आज्ञा पालने वाला प्रशंसनीय होता है। आपको किसी तरह का कलंक नहीं लगेगा। आप राज्य सँभालिए। माता, पिता, गुरुजन और प्रजाजन—सभी ने भरत से राज्य स्वीकार करने का आग्रह किया। कोई और होता तो इस अवसर को हाथ से न जाने देता। वह सोचता—राज्य भी मिलता है और कलंक भी नहीं लगता तो चूकना ठीक नहीं। अब राज्य ले लेना ही अच्छा है। गुरुजनों का आदेश शिरोधार्य करने के बहाने वह राजा बन बैठता। मगर यह भरत थे। उन्होंने आँसू बहाकर ही सब की बातों का उत्तर दे दिया। वे सोचते—एक तो कौशल्या माता है, जो राम के जाने पर भी मुझे राम के समान ही मान रही है और राज्य करने की प्रेरणा कर रही है, और दूसरी कैकेयी माता है, जिन्होंने वना

वनाया काम बिगाड़ दिया। पिताजी भी धन्य हैं जो राजपाट त्याग कर मुनिदीक्षा अंगीकार करने के लिए उत्सुक वैठे हैं और मुझ से राज्य स्वीकार करने का आग्रह कर रहे हैं। वे कहते हैं-अपयश होगा तो मेरा होगा कि दशरथ ने राम के हक का राज्य भरत को दे दिया !

कुछ आश्वस्त होकर भरत ने कहा—गुरुजनो ! मै कुछ कह नहीं सकता। लेकिन कहे बिना काम नहीं चलता। आप सब मेरी प्रशंसा करते हैं लेकिन कैकेयी माता को बुरा समझते है, यह क्यों ? इसीलिए तो कि उन्होंने राम का राज्य छीन लिया ? मगर उन्होंने ऐसा क्यों किया है ? बिना कारण के कार्य नहीं होता। अतएव कैकेयी माता की बुराई का कारण मै ही हूँ। जिसके लिए वह बुरी बनी है वह भला कैसे हो सकता है ? अगर मै राज्य लूँगा तो घोर अनर्थ हो जायगा। कभी-कभी कारण की अपेक्षा कार्य बहुत कठोर होता है। दधीचि की हड्डियाँ कारण थीं और उनसे बन हुआ वज्र कार्य था। वज्र हड्डियों की अपेक्षा अधिक कठोर था। पत्थर से निकलने वाला लोहा पत्थर की अपेक्षा बहुत कठोर होता है। इसी प्रकार मै कार्य हूँ और माता कारण हैं। मै उनसे भी खराब हूँ। ऐसी दशा में आप मुझे राज्यसिंहासन पर कैसे विठा सकते हैं ? सुगंधहीन पुष्प और प्राणहीन शरीर को कौन ग्रहण करेगा ? मै प्राणहीन शरीर के समान हूँ। मेरे प्राण तो राम और सीता थे। वे चले गये। मै मृतकवत हूँ।

मुझे सिंहासन पर सजाकर क्या करेंगे ? जिस शरीर पर अच्छे-अच्छे आभूषण हों मगर वस्त्र न हों, वह शरीर क्या अच्छा लगेगा ? मेरी लाज रखने वाले वस्त्र -सीता राम थे। फिर मुझे राज्य का आभूषण पहनाने से क्या लाभ है ? नंगे को गहने क्या शोभा देंगे ? मुझे राज्य नहीं सोह सकता।

इस प्रकार कहकर भरत फिर आँसू बहाने लगे। सभी लोग द्रवित हो गये। सोचने लगे-'भरत के अन्तःकरण में राम के प्रति सच्चा प्रेम है।' सभी अवाक् रह गये। कोई कुछ न कह सका। दशरथ भी चुप हो रहे । वह सोचने लगे-'अब क्या करूँ ? भरत कोई बालक तो है नहीं कि फुसलाकर उसे राज्य दे दूँ। इसकी रग रग में राम-रस भरा है। यह राज्य न लेगा। अब तो राम के आने पर ही कुछ निर्णय होगा। तभी मैं दीक्षा ले सकूँगा। बिना राजा के प्रजा को कैसे छोड़ सकता हूँ ! कम से कम राम के आने तक मेरी दीक्षा झमेले में पड़ गई है। अब राम को बुलाने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। प्रजा में भी इसी प्रकार की विचारणा चल रही थी।

दशरथ दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हो रहे थे। एक-एक क्षण उन्हें अनमोल जान पड़ता था और वह व्यतीत हो रहा था। वह सोचने लगे-जब तक दीक्षा लेने का विचार ही नहीं किया था तब तक तो कोई बात नहीं थी। लेकिन अब गँवाना अनुचित है। इस प्रकार आत्मकल्याण के उत्सुक होना महापुरुष का स्वभाव ही होता है। वे कि

राम दृष्टिगोचर हुए। उन्हें देखकर मंत्री को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह राम के आदर के निमित्त रथ से नीचे उतर गया और आवाज़ देता हुआ राम की ओर लपका। राम ने आवाज सुनी। सोचा—मुझे इस प्रकार पुकारने वाला यहाँ कौन है? उन्होंने मुड़कर देखा और मंत्री को पहचान लिया। राम ने लक्ष्मण से कहा—देखो लक्ष्मण, अवध के मंत्री आ रहे हैं। जरा रुको। इतना कहकर वे लौट पड़े और मंत्री की ओर आगे बढ़े। मंत्री सोचने लगा—महाराज कितने दयालु है, जो मेरे सामने आ रहे हैं! राज्य न मिलने के कारण किसी प्रकार का आवेश या क्रोध होना संभव था, परन्तु यहाँ तो कुछ भी नज़र नहीं आता। यह महानुभाव तो सदा की तरह प्रसन्न ही दिखाई देते हैं।

मंत्री राम के पास आते ही उनके पैरों में गिर पड़ा और बालक की भाँति सिसकियाँ भर कर रोने लगा।

राम—मंत्रीजी, आप बुद्धिमान् होकर क्या करते हैं? कहिए, अवध में कुशल तो है? राजा प्रजा प्रसन्न हैं न?

मंत्री—प्रभो! सब कुशलपूर्वक है, पर आपके बिना किसी को शान्ति नहीं।

राम—संसार की अशान्ति का असली कारण मोह है। जहाँ मोह है वहाँ शान्ति नहीं। अवध में मोह फैल गया है तो अशान्ति होनी ही चाहिए। अच्छा, कहिए, यहाँ तक आने का कष्ट क्यों किया है?

सब पास ही के वृक्ष की छाया में बैठ गये। वहाँ बैठने के बाद मंत्री ने कहा—'महाराजा ने आपको वापिस बुलाया है। जब आप वन रवाना हुए तो उन्हें भरोसा था कि भरत राज्य स्वीकार कर लेंगे। सब लोगों ने पूर्ण प्रयत्न करके उन्हें समझाया। महाराजा ने भी आग्रह किया। महारानी कौशल्या भी समझाते-समझाते हार गई। फिर भी भरत टस से मस नहीं होते। वह किसी भी प्रकार राज्य स्वीकार नहीं करते।'

'हमारे सरीखे बहुतों का ख़याल था कि महारानी कैकेयी की करतूत में भरत का भी हाथ होना चाहिये। लेकिन हमारा संदेह गलत सिद्ध हुआ। आपके ऊपर भरत का असीम प्रेम है। अगर आप नहीं लौटेंगे तो वह उसी प्रकार प्राण छोड़ देंगे जैसे पानी के अभाव में मछली प्राण दे देती है।'

'कैकेयी का वर पूरा हो चुका है। महाराजा ने भरत को अपनी ओर से राज्य दे दिया है। अब एक प्रकार से भरत राजा है—आपने ही उन्हें राजा बनाया है। अतएव उनकी भी यही आज्ञा है कि आप अयोध्या लौट चलें। उनकी आज्ञा, अनुनय, विनय, प्रार्थना-या जो कुछ भी कहा जाय, आप मानकर इसी रथ में पधारिये। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, अक्षरशः सत्य है। अगर आप मेरी बात पर विश्वास करते हैं तो विलंब न कीजिए।'

राम—आपकी बात पर विश्वास न होगा तो कि

विश्वास करेंगे ? आप हमारे लिए आप्त हैं। अवध के शुभ-चिन्तक हैं। मेरे भी हितैषी हैं।

मंत्री-तो फिर विलम्ब करना उचित नहीं है।

इसी समय रथ के घोड़े हिनहिनाने लगे। मानो वह भी राम को अवध चलने की प्रेरणा कर रहे थे। राम ने स्नेहभरी दृष्टि से घोड़ों की ओर देखा।

मंत्री को आशा बँधने लगी कि राम मेरी बात मान लेंगे और मेरे साथ ही अवध लौट चलेंगे। लेकिन राम सागर के समान गंभीर थे। सहसा अपने ध्येय से विचलित नहीं हो सकते थे।

राम ने स्निग्ध स्वर में कहा-'मत्रीजी ! आप मेरे लिए पिता के समान आदरणीय हैं। आप क्या आये, जैसे पिताजी ही आये हैं। मै आपको क्या उत्तर दे सकता हूँ ? लेकिन आप मोह के वश होकर भरत के कहने से और प्रजा की उत्कण्ठा देखकर अपना धर्म भूल रहे हैं। आखिर भरत राज्य क्यों नहीं लेते ? वे यही सोचते हैं कि राज्य न लेना उनका (भरत का) धर्म है। मै भी यही सोचता हूँ कि मैने जिस राज्य का त्याग कर दिया है, फिर उसी राज्य के लिए लौटकर कैसे जाऊँ ? संसार में जितने भी धर्मकर्म हैं, उन सब में सत्य का पालन प्रधान है। सभी शास्त्र यही बात कहते है। एक स्वर से सब शास्त्रों का यही कथन है कि सत्य के समान और कोई धर्म नहीं है और झूठ के समान अधर्म नहीं है। सत्य धर्म

की प्राप्ति को सबने कठिन माना है। जिस धर्म का मिलना कठिन माना जाता है मुझे वह सरल रीति से मिल गया है। ऐसी स्थिति में उसे छोड़ देना कैसे उचित हो सकता है?'

'पिताजी ने मुझे राज्य देने की तैयारी की थी मगर सत्य का पालन करने के लिए उन्होंने भरत को राज्य देना स्वीकार किया। उन्हें तो सत्य का पालन करने में कठिनाई हुई है, किन्तु मेरे लिए यह धर्म सुलभ हुआ है। कितनी अच्छी बात है कि पिता के वचन का पालन होता है, माता की इच्छा पूरी होती है, भाई को राज्य मिलता है और मुझे धर्म की प्राप्ति होती है। ऐसे सुलभ और श्रेयस्कर धर्म का परित्याग कर देने से संसार में मेरा अपयश होगा। लोग घृणा के साथ कहेंगे कि राम ने ऐसे सुलभ धर्म का भी त्याग कर दिया! क्या आप मुझे अपयश में डालेंगे? लोगों को यह कहने का अवसर क्यों दिया जाय कि राम धर्मपालन के लिये वन गये थे, लेकिन धर्म का पालन कठिन समझकर लौट आये! अपयश सहने की अपेक्षा प्राण दे देना अच्छा है। मृत्यु का कष्ट अगर हो तो, एक बार ही होता है, किन्तु अपकीर्ति का कष्ट तो पद-पद पर सताता रहता है।'

'मंत्रीजी! मैं आपसे क्या कहूँ? आप अपयश दिलाने के लिए रथ लेकर आये हैं। मैं यही कहता हूँ कि आप मेरी ओर से पिता के चरण छूकर, हाथ जोड़कर उनसे यह निवेदन करना कि आप किस बात की चिन्ता करते हैं? धर्म-पालन

के कार्य में आप ही चिन्तित होंगे तो धर्म का पालन कौन करेगा ?'

'प्रधानजी ! आपसे भी मेरी प्रार्थना है कि पिताजी को जब मेरे लिए दुःख हो और जब वे मोह के वश होकर धर्म को विस्मरण करने लगे तो आप उन्हें समझाते रहना कि धर्म पालने का यह सुलभ अवसर है। इस सुअवसर का उपभोग करते समय दुःख करने की आवश्यकता नहीं है। आप राम की चिन्ता त्याग दे।

राम की बात सुनकर मंत्री विचार में पड़ गया। सोचने लगा-बात सही है। अगर राम लौट चलेंगे तो इनकी अपकीर्त्ति हो सकती है। जो लोग वास्तविकता को नहीं जानते वे भ्रम में पड़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त धर्म-पालन की बात का भी क्या उत्तर दिया जाय ? मगर सीताजी के लिए तो कोई प्रश्न ही नहीं है। अगर वह लौट चलें तो क्या हानि है ?

मंत्री राम से कहने लगे-आपका कथन युक्तियुक्त नहीं है, यह मैं कैसे कहूँ ? किन्तु महाराज ने एक बात और कही है। उन्होंने कहा है कि कदाचित् राम न लौटें तो जैसे-तैसे सीता को लौटा ही लाना। जानकी को न किसी ने वन भेजा है, न कुछ कहा ही है। राज्य के साथ इनका क्या सम्बन्ध है ? इनके लौटने में अपकीर्ति की भी कोई संभावना नहीं है। अब इन्होंने वन के कष्टों का भी अनुभव कर लिया है। यह इन

कष्टों को सहन करने योग्य नहीं है। महाराजा ने कहा है कि सीता से सब को संतोष हो जाएगा, फिर चाहे वे अयोध्या में रहें या अपने पितृगृह में रहें। महाराज ने कहा है—सीता शीतलता देने वाली है। शीतलता की उसी को आवश्यकता है जो ताप से दुखी हो। शीतल को शीतलता देने से क्या लाभ है ? राम तो स्वयं शीतल हैं। जल तो अवध के लोग रहे हैं। इसलिये हे जानकी ! आप चलकर सब का संताप दूर कीजिए। आपके पधारने से सब को शांति मिलेगी। राजा-प्रजा को संतोष होगा। भरत को भी आप समझा सकेंगी और महाराज की दीक्षा के मार्ग की बाधा टल जाएगी।

अन्त में मंत्री ने राम से कहा—आप जानकी से कह दीजिए कि यह अवध को लौट चलें।

मंत्री की बात सुनकर राम ने प्रसन्न होते हुए सीता से कहा—मंत्रीजी का कहना ठीक तो है। तुम्हारे जाने से प्रजा में और राजपरिवार में शक्ति आ जायगी। इसके अतिरिक्त तुम्हारी और हमारी शक्ति एक ही ओर लगना भी ठीक नहीं है। इसलिए तुम अवध जाकर वहाँ का काम करो
मैं रहकर वन का काम करूँगा। भरत तुम्हा
मान लेंगे। इस प्रकार अवध की अ हो
रही मेरी सेवा की बात सो अनुज ल साथ

इनके संरक्षण में रहते मेरी चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं है।

रामचन्द्र की बात सुनकर सीता कहने लगी— 'प्रभो! आपके यह वचन मेरी परीक्षा करने के लिए हैं। आप मेरी कसौटी करना चाहते हैं। वास्तव में स्वामी ऐसे ही कसौटी करने वाले होने चाहिये। पत्नी के नचाने पर बंदर की तरह नाचने वाले स्वामी किस काम के? लेकिन मेरी भी एक विनय सुन लीजिए। उसके बाद आप जैसी आज्ञा देंगे, वही करूँगी।

हे परम स्नेही प्राणपति! आप मुझपर गाढ़ स्नेह रखते हैं। आप करुणाकर और विवेकी हैं। इसलिये आप जो कहेंगे, उचित ही होगा। आप अवध में मेरी परीक्षा कर चुके हैं। अब यहाँ भी कर रहे हैं। वास्तव में परीक्षा बार-बार ही की जाती है। कंचन को बार-बार अग्नि में तपाया जाता है। मगर उससे वह खराब नहीं होता-वरन् अच्छा ही होता है। आप जब जहाँ चाहे परीक्षा करे। सीता खोटा सोना नहीं है!

एक बात मै आपसे पूछती हूँ। आप कहते हैं—तू अवध का काम कर, मै वन का काम करूँगा। तो क्या मै और आप दो हैं? क्या शरीर और उसकी परछाई अलग-अलग हैं? क्या शरीर को छोड़कर परछाई अन्यत्र भेजी जा सकती है? सूर्य को त्याग कर प्रभा कहाँ जा सकती है? चन्द्रमा के विना चांदनी कहाँ रह सकती है? अगर यह सब अलग नहीं हैं

तो मैं आपसे अलग कैसे रह सकती हूँ ?

सीता की बात सुनकर राम टकटकी लगाकर उसकी ओर देखने लगे। फिर सीता से उन्होंने कहा— क्या तुम मुझसे अलग नहीं हो सकतीं ! फिर मंत्रीजी जो कुछ कहते हैं, वह क्या ठीक नहीं है ?

सीता—प्रभो ! मंत्री भूल करते हैं मगर आप तो नहीं भूल सकते। लोग माया को चाहते हैं, माया के स्वामी को नहीं चाहते। इसी से संसार में गड़बड़ मच रही है। यह आज की नहीं, अनादि की रीति है। संसार के लोग माया को पकड़ रहे हैं और परमात्मा को भूल रहे हैं। अर्थात् सत्य और धर्म को नहीं चाहते, धन-सम्पत्ति चाहते हैं। यही अशांति का प्रधान कारण है। मंत्रीजी भी इसी फेर में पड़े हुए हैं। अवध के लोगों के लिये यह मुझे ले जाना चाहते हैं। लेकिन जिस तरह परमात्मा को छोड़कर प्राप्त की गई माया डुबोने वाली ही साबित होती है, उसी प्रकार मैं भी अवध की प्रजा को कष्टकर ही सिद्ध होऊँगी। आपके बिना मुझे ले जाना, परमात्मा को छोड़कर माया को ले जाना है। उससे किसी का कल्याण नहीं हो सकता। मुझे ले जाना, लोगों के सामने यह आदर्श रखना है कि सब काम माया से ही होते है—परमात्मा की आवश्यकता नहीं है।

मंत्रीजी मुझे शीतलता देने वाली कहते हैं। लेकिन आपके साथ होने पर ही शीतल हो सकती हूं। आपसे अलग हो

ही मैं उसी तरह ताप देने वाली सिद्ध होऊंगी, जैसे परमात्मा-विहीन माया तापदायिनी होती है। शीतलता के स्रोत तो आप हैं। जब आप ही साथ न होंगे तो मुझ में शीतलता कहाँ से आएगी ?'

राम-विहीन माया को अपनाने का क्या परिणाम होता है, यह बात रावण के दृष्टान्त से समझ में आ सकती है। रावण केवल सीता को ले गया, राम को नहीं ले गया। इसी से वह राक्षस कहलाया। विद्वान् होने पर भी वह मूर्ख कहलाया। रामहीन सीता अन्त में उसके और उसकी लंका के विनाश का कारण बनी। अगर राम के साथ सीता उसके यहाँ गई होती तो उसका कल्याण होता। भीलनी के दृष्टान्त से यह बात सहज ही समझ में आ सकती है। राम-सहित सीता के पदार्पण से भीलनी का उद्धार हो गया—उसका कलंक दूर हो गया, उसकी महत्ता बढ़ी और वह ऋषियों के लिए भी आदरणीय हो गई। मगर राम-हीन सीता को ले जाने वाले रावण का सर्वस्व ही स्वाहा हो गया !

इसीलिए सीता कहती है-'मैं आपके बिना-अकेली जाकर अवध की प्रजा को शीतलता पहुँचाने के बदले संताप देने वाली सिद्ध होऊँगी। इसके अतिरिक्त मंत्रीजी ठीक ही कहते हैं कि राज्य के साथ सीता का कोई संबंध नहीं है। मेरा संबंध आपके साथ है। जहाँ आप नहीं, वहाँ मैं कैसे रह सकती हूँ ? अगर मेरे विचार में कुछ प्रमाद हो तो आप

मनन्द्र दूर। आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है। ...

लक्ष्मण ने कहा—सीताजी का कहना ... अवध में महारानी कैकेयी राजमाता होंगी तो ... क्या आवश्यकता है? वह अकेली ही बहुत शीतल हैं। ... अधिक शीतलता भी किस बात की? उससे तो जनता ... हो जाती है।

राम ने मुस्किराकर कहा— मंत्रीजी! मुझे जो कहना चाहिए था, कह चुका हूँ। अब आपही कहिए, अधिक कहने की क्या गुंजाइश है? चांदनी, चन्द्र के बिना नहीं रह सकती और बिना चांदनी का चन्द्र भी किस काम का है? चन्द्रमा की शक्ति तो चांदनी ही है। अब आप जो कहें, करें।

राम और सीता की बातों का मंत्री क्या उत्तर देता? वह कुछ न कह सका, पर उसका हृदय दुःख से भर गया।

मंत्री सोचने लगा—मैं अब क्या करूं? मैंने महाराज और प्रजा को आश्वासन दिया था कि मैं दोनों को ... प्रयत्न करूँगा। कदाचित् राम न लौटे तो ... ले आऊंगा। लेकिन मैं अपना आश्वासन पूरा ... सकता। अब प्रजा को क्या मुख दिखलाऊंगा? ... किस मुँह से उत्तर दूंगा? इस प्रकार ... मंत्री ने कहा—महाराज! मेरी बुद्धि काम न ... समझ पाता हूँ कि अकेला अनाथ लौटकर ... उत्तर दूंगा! प्रजा की प्रश्नावली का ...

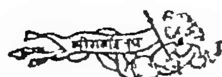
करूँगा ? मै उन्हें अपना मुख नहीं दिखलाना चाहता। अतएव मै भी अवध नहीं लौटना चाहता। मुझे अपने साथ रहने की आज्ञा प्रदान कीजिए। यह सेवक भी वन में ही जीवन बिताना चाहता है।

राम ने अनेक युक्तियों से, तर्कों से, यहाँ तक कि आग्रह करके मंत्री को बहुत समझाया; फिर भी वह अवध को नहीं लौटा। उसने राम की सब युक्तियों का एक ही अकाट्य उत्तर दिया। वह कहने लगा—'बालक को माता-पिता बहुत समझाते हैं, पर वह केवल रोना समझता है। मै और कुछ नहीं जानता—सिवाय इसके कि या तो आप स्वयं अवध को लौट चलें या मुझे अपने साथ चलने दें।'

इस प्रकार कहकर मंत्री राम के साथ-साथ आगे चल दिया। चलते-चलते एक गहन जंगल आया और एक भयावनी नदी। राम ने वहाँ ठहर कर मंत्री से कहा—मंत्री, अब आप लौट जाइए। आगे बड़ा कष्ट है। रथ के लिए मार्ग भी नहीं है। इसके अतिरिक्त आपके न लौटने से अवध में नाना प्रकार की दुश्चिन्ताएँ उठ खड़ी होंगी। ऐसी दशा में घोर अनर्थ होने की संभावना है। अवध को इस अनर्थ से बचाना आपका कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य का पालन करना ही मनुष्य-जीवन का सार है। आप मोह में पड़ेंगे तो कर्त्तव्य से च्युत हो जाएँगे। महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अवध में एक-एक घड़ी वर्ष की तरह बीत रहा होगा। आप न

लौटेंगे तो स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन होगा। आप स्वयं विवेकशाली हैं। अब हठ न कीजिए। अवध लौट जाइए।

राम फिर कहने लगे—'माताजी और पिताजी से कह देना—राम, लक्ष्मण और सीता आज तक सकुशल हैं। वे हमारे लिए लेश मात्र चिन्ता न करें। पिताजी को समझा देना कि जैसा मैं हूँ, वैसा ही भरत है। भरत में और मुझमें भेद करने से ही यह सब हुआ है और जब तक यह भेदभाव रहेगा, दुःख दूर न होगा। भरत भी राज्य का अधिकारी है। मैं ने भरत को अपनी ओर से राज्य दे दिया है अतः भरत को मेरी ही तरह मानना उचित है। हाँ, और भरत से कह देना कि जिस प्रकार माता-पिता को सुख हो, वही उन्हें करना चाहिए। मंत्रीजी! अब आप लौट जाइए। आपने मेरे साथ वन-वास कर लिया। आपकी इच्छा पूरी हो गई। अब मेरी इच्छा पूर्ण कीजिए।



मंत्री का निराश लौटना

——::::()::::——

इस बार राम के कथन में कुछ ऐसा भाव था कि मंत्री उसे अस्वीकार नहीं कर सकता था। लेकिन मंत्री की दुविधा और उलझन भी कुछ कम नहीं थी। वह सोचता था—सफलता मिले या न मिले, स्वामी को उत्तर तो देना ही चाहिए। महाराज दशरथ बड़ी उत्कंठा के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मेरे न जाने से घोर अनर्थ भी हो सकता है। परन्तु वहाँ जाकर उत्तर क्या दूँगा? प्रजा की प्रश्नावली जब बाणावली की तरह मेरे कानों में प्रवेश करेगी तो जीभ से क्या कहूँगा? महाराज और महारानी जब मुझे अकेला आता देखेगी तो उनकी क्या स्थिति होगी? मै उन्हें कैसा विकराल-सा प्रतीत होऊँगा? फिर भी कर्त्तव्य तो कठोर होता ही है। कर्त्तव्य-पालन मे दुविधा नहीं होनी चाहिए।

इस प्रकार विचार कर मंत्री अवध की ओर लौटने को तत्पर हुआ। मगर रथ के घोड़े लौटना ही नहीं चाहते थे। वे अड़ गये। उन्हे अड़ा देख मंत्री कहने लगा—प्रभो! हृदय

कठोर करके मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रस्तुत हूं, लेकिन रथ के अश्व आगे नहीं बढ़ते।

राम ने कहा—मन्त्रीजी! आपकी चतुराई के सामने बेचारे घोड़ों की क्या बिसात है? बड़े-बड़े, नीतिज्ञों को वश में कर लेने वाले वृद्ध मंत्री क्या घोड़ों को वश मे नहीं कर सकते? जो घोड़ों को नहीं चला सकता वह राज्य को कैसे चलाएगा? वहाँ पिताजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे और आप यहाँ वृथा समय व्यतीत कर रहे हैं! क्या यह उचित है?

मन्त्री ने घोड़ों से कहा—बस, यही एक मार्ग है जिन पर मुझे और तुम्हें चलना पड़ेगा। अब अड़ो मत, स्वामी का उपालंभ सुनने का अवसर मत दो। पैर बढाओ।

रास खींचते ही घोड़े समझ गए कि अब अड़ना बेकार है। वे धीरे-धीरे आगे बढ़े, मगर हींसते हुए और अगल-बगल देखते हुए। जान पड़ता था, उनका निर्जीव शरीर चल रहा है, आत्मा राम के पास रह गई है। मंत्री रह-रह कर राम की ओर देखता और आंसू बहा रहा था। उसे अपनी विवशता और पराधीनता का आज जैसा कटुक अनुभव पहले कभी नहीं हुआ था। वह सोचता था—'मैं विवश न होता तो आज राम को पाकर भी क्यों छोड़ना पड़ता? स्वाधीन होता तो राम के साथ ही वन में विचरता और जीवन का लाभ लेता। मगर हाय री पराधीनता! तूने मेरा जीवन निष्फल कर दिया! इस प्रकार अत्यन्त विकल होकर मंत्री रथ पर

खड़ा-खड़ा राम की ओर ही निहार रहा था। राम ने मंत्री की यह स्थिति देखी तो वे ज़रा जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर चले। उन्होंने सोचा-जब तक मै दिखाई देता रहूँगा, मंत्री का दुःख शान्त न होगा।

धीरे-धीरे राम, सीता और लक्ष्मण आंखों से ओझल हो गए। ओझल होने पर अत्यन्त निराश मंत्री ने अवध की ओर ध्यान दिया। मंत्री उस समय अपने आपको बड़े कष्ट में मान रहा था। घोड़े भी अनमने से चल रहे थे। कोई भला आदमी धोखे में शराब पी ले और फिर ज्ञात होने पर उसे जैसा पश्चात्ताप होता है, वैसा ही पश्चात्ताप मंत्री को हो रहा था। वह सोचने लगा—मै खाली रथ लेकर अवध मे कैसे प्रवेश करूंगा ? प्रजा से, राम की माता से, और महाराज से क्या कहूंगा ? भगवन् ! मेरे ऊपर कैसा संकट आ गया है। किस मुंह से कहूंगा कि न राम आये और न सीता आई। खाली रथ लेकर दिन के समय अयोध्या में प्रवेश करना असंभव हो जायगा।

मंत्री ज्यो-ज्यों अवध के समीप आता जा रहा था, उसका हृदय क्षुब्ध होता जा रहा था। आखिर अवध आ गया। जब वह आया तो काफी दिन शेष था। उसने अयोध्या से कुछ दूर रथ रुकवाया और वहीं ठहर गया। रात्रि हुई और अन्धेरा फैल गया तो डरता-सा चोर की तरह मंत्री अयोध्या मे घुसा और सीधा राजमहल में जा पहुंचा।

मंत्री के अनेक उपाय करने पर भी उसका आगमन छिपा नहीं रहा। छिपता भी तो कब तक ? कुछ लोगों ने खाली रथ आते देखा तो सब भाँप गये-राम नहीं आये, सीता भी नहीं आई ! बात की बात में यह संवाद अयोध्या के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया ! सर्वत्र फिर वही चर्चा होने लगी।

कुछ विशिष्ट लोग राजमहल में पहुंचे और मंत्री से पूछने लगे—कहिए मंत्रीजी, क्या हुआ ? मंत्री ने नीची गर्दन करके उत्तर दिया—अभी हम लोगों का भाग्य ऐसा नहीं है कि राम लौट आएं।

मंत्री दुखित होता हुआ दशरथ के पास पहुंचा। दशरथ ज्ञानी और नीतिनिपुण थे। उन्होंने पहले ही अनुमान कर लिया था कि महापुरुष राम लौटकर आने वाले नहीं हैं। फिर भी जनता को मालूम हो जाय और भरत राज्य स्वीकार कर ले, इसी उद्देश्य से उन्होंने मंत्री को भेजा था।

मंत्री के पहुंचते ही राजा ने पूछा-कहो किसे ले आये मंत्रीजी ! राम और सीता दोनों आये हैं या अकेली सीता ?

यह प्रश्न सुनकर मंत्री की जो दशा हुई होगी उसे कौन जान सकता है ? मानों हजार बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो। थोड़ी देर मौन रहने के बाद मंत्री बोला-महाराज कोई भी न लौटा।

दशरथ ने कहा-मंत्री ! इसमें दुःख की कौन-सी बात है ? इतनी जल्दी लौटना होता तो वह जाते ही क्यों ? दुःख मत

खड़ा-खड़ा राम की ओर ही निहार रहा था। राम ने मंत्री की यह स्थिति देखी तो वे ज़रा जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर चले। उन्होंने सोचा-जब तक मैं दिखाई देता रहूँगा, मंत्री का दुःख शान्त न होगा।

धीरे-धीरे राम, सीता और लक्ष्मण आंखों से ओझल हो गए। ओझल होने पर अत्यन्त निराश मंत्री ने अवध की ओर ध्यान दिया। मंत्री उस समय अपने आपको बड़े कष्ट मे मान रहा था। घोड़े भी अनमने से चल रहे थे। कोई भला आदमी धोखे में शराब पी ले और फिर ज्ञात होने पर उसे जैसा पश्चात्ताप होता है, वैसा ही पश्चात्ताप मंत्री को हो रहा था। वह सोचने लगा—मैं खाली रथ लेकर अवध मे कैसे प्रवेश करूँगा ? प्रजा से, राम की माता से, और महाराज से क्या कहूँगा ? भगवन् ! मेरे ऊपर कैसा संकट आ गया है। किस मुँह से कहूँगा कि न राम आये और न सीता आई। खाली रथ लेकर दिन के समय अयोध्या मे प्रवेश करना असंभव हो जायगा।

मंत्री ज्यों-ज्यों अवध के समीप आता जा रहा था, उसका हृदय क्षुब्ध होता जा रहा था। आखिर अवध आ गया। जब वह आया तो काफी दिन शेष था। उसने अयोध्या से कुछ दूर रथ रुकवाया और वहीं ठहर गया। रात्रि हुई और अन्धेरा फैल गया तो डरता-सा चोर की तरह मंत्री अयोध्या में घुसा और सीधा राजमहल में जा पहुँचा।

मंत्री के अनेक उपाय करने पर भी उसका आगमन छिपा नहीं रहा। छिपता भी तो कब तक ? कुछ लोगों ने खाली रथ आते देखा तो सब भाँप गये-राम नहीं आये, सीता भी नहीं आई ! बात की बात में यह खबर अयोध्या के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया ! सर्वत्र फिर यही चर्चा होने लगी।

कुछ विशिष्ट लोग राजमहल में पहुंचे और मंत्री से पूछने लगे—कहिए मंत्रीजी, क्या हुआ ? मंत्री ने नीची गर्दन करके उत्तर दिया—अभी हम लोगों का भाग्य ऐसा नहीं है कि राम लौट आए।

मंत्री दुखित होता हुआ दशरथ के पास पहुंचा। दशरथ ज्ञानी और नीतिनिपुण थे। उन्होंने पहले ही अनुमान कर लिया था कि महापुरुष राम लौटकर आने वाले नहीं हैं। फिर भी जनता को मालूम हो जाय और भरत राज्य स्वीकार कर ले, इसी उद्देश्य से उन्होंने मंत्री को भेजा था।

मंत्री के पहुंचते ही राजा ने पूछा-कहो किसे ले आये मंत्रीजी ! राम और सीता दोनों आये हैं या अकेली सीता ?

यह प्रश्न सुनकर मंत्री की जो दशा हुई होगी उसे कौन जान सकता है ? मानो हजार बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा हो। थोड़ी देर मौन रहने के बाद मंत्री बोला-महाराज कोई भी न लौटा।

दशरथ ने कहा-मंत्री ! इसमें दुख की कौन-सी बात है ? उन्हें अगर लौटना होता तो वह जाते ही क्यों ? दुख मत

करो, उन्होंने न लौटकर सूर्यवंश की सन्तान के योग्य ही कार्य किया है। सीता का न आना भी उचित ही है। राम के बिना सीता वैसी ही है जैसी धर्म के बिना माया। इसलिए शोक त्याग कर भरत से कहो कि हम अपनी ओर से सब संभव प्रयत्न कर चुके हैं। राम लौटने वाले नहीं। इसलिए अब तुम्हीं सिंहासन पर बैठो। प्रजा का पालन करो और अपने पिता को धर्म-कार्य में लगने दो।

हाँ, मंत्री ! देखो, एक बात और है। तुम अगर जरा भी दुखी होओगे तो भरत का दुःख अधिक उमड़ पड़ेगा। इसलिए तुम तनिक भी उद्विग्न मत होओ। ऐसा न करोगे तो राज्यसंचालन में भरत की सहायता कैसे करोगे? राम खुद दुखी नहीं है। मै उनका पिता भी दुखी नहीं हूँ फिर तुम्हीं क्यों दुखी होते हो? प्रसन्न रहकर अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करें, यही अभीष्ट है।

कर्त्तव्य की कसौटी

राजा और प्रजा के द्वारा माँग ही नहीं वरन् अत्यन्त आग्रह करने पर भी राम और सीता का वन से न लौटना, जब कोई राज्य सँभालने वाला ही न हो तब भी तत्काल दशरथ का दीक्षा लेने के लिए उतारू होना और सब के समझाने-बुझाने पर भी भरत का राज्य को स्वीकार न करना विचित्र परिस्थिति है। इस परिस्थिति पर ऊपर-ऊपर से विचार करने

वाला इस परिणाम पर पहुँच सकता है कि [illegible] की जिद ही है। [illegible] था तो थोड़े दिन और करने में [illegible] अधिक राज्य करने में मुक्ति [illegible] कोई संभावना नहीं थी और फिर [illegible] वह अनासक्त भाव से राज्य करते। इसी प्रकार [illegible] सभी राजा बनाना चाहते थे भरत की भी आन्तरिक इच्छा यही थी और वे सच्चे अन्तःकरण से [illegible] कर रहे थे और सब की ओर से उन्हें [illegible] उनके आ जाने में क्या हर्ज था? और जब [illegible] लोग आग्रह कर रहे थे तो वही राज्य स्वीकार [illegible] कौन-सी बुराई हो जाती? इस प्रकार [illegible] सकते हैं। मगर उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया और अपने-अपने निश्चय पर सभी अटल क्यों [illegible] तो वही बता सकते हैं। हाँ, [illegible] करने से ज्ञात होता है कि वास्तव में [illegible] किया, वही उचित था। इसमें खोटी जिद [illegible] उपस्थित नहीं होता।

राम का न आना सत्याग्रह [illegible] नाम पर दुराग्रह भी हो जाता है। [illegible] अपने-अपने निश्चय पर अटल हैं, इसी प्रकार [illegible] अपनी बात पर जमी हुई है। मगर [illegible] का यह राम

सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता। कहने को तो कैकेयी भी कहती है कि कुछ भी हो, मैंने जो वचन माँगा है वह पूरा होना चाहिए। फिर भी उसका कार्य सत्याग्रह नहीं कहला सकता। साधारण जनता सत्याग्रह और दुराग्रह का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझती। इसी कारण कभी सत्याग्रह को दुराग्रह और दुराग्रह को सत्याग्रह समझ लेती है। स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष अथवा अमर्ष से, दूसरे को हानि पहुँचाने के विचार से जो आग्रह किया जाता है वह सत्याग्रह की कोटि में नहीं गिना जा सकता। सत्याग्रह वही है जो एकान्ततः दूसरे के हित के उद्देश्य से, किसी को हानि पहुँचाने की भावना न रखते हुए किया जाय। कैकेयी ने सत्याग्रह की यह आवश्यक शर्तें पूरी नहीं की। तुलसीदास के कथनानुसार उसे कौशल्या के प्रति ईर्षा हो गई थी। राम के प्रति उसके मन में दुर्भावना आ गई थी। वह राजमाता का गौरव स्वयं प्राप्त करने की स्वार्थभावना से ग्रस्त हो गई थी। राम के प्रति उसके मन में दुर्भावना आ गई थी। जैनरामायण में कैकेयी को यद्यपि इस रूप में चित्रित नहीं किया गया है तथापि उसके वर्णन से भी यह बात स्पष्ट है कि भरत के प्रति ममता के कारण ही उसने राम के अधिकार का अपहरण किया। न्याय के अनुसार और परम्परा के लिहाज़ से भी राम ही राज्य के अधिकारी थे। किन्तु कैकेयी ने ममता से प्रेरित होकर न्याय का विचार नहीं किया। न्याय का विचार जहाँ नहीं रहता वहाँ सत्याग्रह नहीं

दुराग्रह ही हो सकता है।

दशरथ, राम और भरत के चित्त में [illegible] ही बलवती दिखाई देती है। उनमें किसी [illegible] भाव नहीं है। न किसी का किसी के प्रति [illegible] स्वार्थ है। अतएव उनके आग्रह को [illegible] सकता है? अस्तु।

तुलसीरामायण के अनुसार [illegible] न लौटने का समाचार दशरथ को सुनाया तो [illegible] रथ जैसे महापुरुष राम के न लौटने [illegible] आदर्श कुछ ठीक नहीं जँचता [illegible] आध्यात्मिक साधना में जुट जाने की [illegible] जिसने संसार की मोह-माया [illegible] यह कैसे संभव है? दशरथ [illegible] लिए नहीं है। जैनरामायण में दशरथ [illegible] कोई [illegible] नहीं है। उन्होंने कहा— [illegible] नहीं लौटेंगे। उन्होंने न लौटकर [illegible] है। इसलिए दुःखी होने की आवश्यकता [illegible] जाकर भरत को समझाओ और [illegible]

भरत की पुनः अस्वीकृति

——::::():.::——

मंत्री अपने साथ कुछ विशिष्ट और प्रभावशाली व्यक्तियों को लेकर फिर भरत के पास पहुँचा। मंत्री ने अपने वन जाने का वृत्तान्त भरत को सुनाया। उसने कहा–राम को अयोध्या लौटने के लिए खूब समझाया, आग्रह किया, किन्तु वे किसी भी प्रकार लौटने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा है कि मै और भरत दो नही है। दो मानने से ही यह गड़बड़ उत्पन्न हुई है। उन्होंने आपको यह भी कहा है कि आप राज्य स्वीकार कर लें और ऐसा कार्य करे, जिससे माता-पिता को कष्ट न पहुँचे।

भरत ने उत्सुकता और शान्ति के साथ मंत्री की बात सुनी। राज्य स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव भी सुना। उसके बाद वह कहने लगे–'राम को भेजने का अपराधी मै ही हूँ। मै ही पापी हूं।'

लोग अपराधी होते हुए भी अपने को निरपराध सिद्ध करने की भरसक चेष्टा करते है। मगर एक भरत हैं जो साक्षात्

अपराधी न होते हुए भी कार्य-कारण भाव से अपने आपको अपराधी मान रहे हैं। उनका कहना है कि मैंने माता के उदर से जन्म ही न लिया होता तो माता के मन में ऐसा भाव क्यों आता? मुझ पापी के जन्मने से ही माता का मन मलीन हुआ है। मेरा जन्म ही राम के राज्य छिनने का कारण हुआ है। इस कारण मैं अपराधी हूँ और मुझे दण्ड मिलना चाहिए। मगर आप अपराध का पुरस्कार देना चाहते हैं और वह भी साधारण नहीं! अपराध के बदले अवध का राज्य मुझे दिया जाता है। यह अच्छा न्याय है! ऐसा ही न्याय करने के लिए मुझे राजा बनना होगा! मंत्रीजी! मैं अपना पाप बढ़ाना नहीं चाहता।

कैकेयी को पता चला कि राम के न लौटने पर भी भरत राज्य स्वीकार नहीं करता तो उसके क्षोभ की सीमा न रही। भरत की मूर्खता पर उसे बेहद क्रोध चढ़ आया। कहने लगी— भरत के लिए ही मैं बदनाम हुई और वह अब भी पागलपन नहीं छोड़ता! मैं जाकर देखती हूँ, वह कैसे इन्कार करता है।

इस तरह विचार कर कैकेयी भरत के पास आई। कैकेयी का भरत के सामने आना अर्थात् दुराग्रह का सत्याग्रह का सामना करना था।

कैकेयी को सामने देखकर भरत की आंखों में आंसू भर आये। उनका हृदय वेदना से आहत हो गया। माता की

भाव-भंगी देखकर भरत सब कुछ समझ गये। तथापि उन्होंने पहले मौन रहना ही उचित समझा।

कैकेयी, भरत के सामने खड़ी हो गई। भरत ने उसकी ओर देखा तक नहीं। तब कैकेयी कहने लगी—वत्स ! आज तू मेरे सामने देखना भी नहीं चाहता ! मैंने तेरा क्या अनिष्ट किया है ! जो कुछ मैंने भला-बुरा किया, तेरे ही लिए किया है। अगर मेरे किये को तू पाप समझता है तो उस पाप का फल मैं भोगूंगी। मैं नरक में जाऊंगी। तू तो राज्य कर। मेरा अपराध है तो राज्यासन पर बैठकर मुझे दंड दे। यह तो सूर्यवंश का नियम ही है कि माता-पिता अपराधी हों तो उन्हें भी दण्ड देना चाहिए। इसलिए तू मुझे दण्ड देने के लिए ही राज्य ले ले।

'वत्स, तुम्हारे राज्य न लेने से सभी लोग दुखी हो रहे हैं। तुम मुझे बुरी समझते हो पर मैंने क्या बुराई की है ? तुम्हारे पिताजी पर मेरा ऋण चढ़ा था। मैंने उसे उतार लिया। मैंने राम, लक्ष्मण या सीता को वन जाने के लिए नहीं कहा था। वे अपनी इच्छा से गये हैं। फिर भी इसमें हानि क्या हुई ? प्रथम तो सभी उनके गुण गाते हैं, दूसरे वे वहां प्राणियों का उद्धार करेंगे। यह तो लाभ ही है। तुम उल्टा क्यों सोचते हो ? उठो, राज्य स्वीकार करो और पिताजी को प्रसन्नता के साथ दीक्षा लेने दो। उनके धर्म में बाधक मत बनो।'

कैकेयी का यह कथन भरत के हृदय में शूल की तरह

चुभ गया। उसे अधिक वेदना होने लगी। भरत सोचने लगे-माता अब भी अपने ही विचार पर दृढ़ है। वह मेरा अपराध नहीं समझतीं। पर वास्तव में अपराधी मै हूँ। मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

भरत का यह निश्चल विचार सत्याग्रह है। अपने आपको दोषी मानकर सत्याग्रह के द्वारा दूसरे के दुराग्रह को मिटाना बड़ा काम है।

भरत राज्यासन पर बैठने के लिए रास्ता निकालना चाहते तो सहज ही निकाल सकते थे। राज्य स्वीकार करने के लिए उनके पास पर्याप्त कारण थे। मगर मर्यादा रास्ते ढूंढने के लिए नहीं, कष्ट सहकर भी पालन करने के लिए है। वह सोचते है कि मैंने यह मर्यादा की है कि राम राजा हैं और मै उनका सेवक हूँ। मै इस मर्यादा का कदापि उल्लंघन नही कर सकता। इस प्रकार सोच कर भरत कुछ देर मौन ही रहे।

कैकेयी फिर कहने लगी—मैंने जो कुछ किया है, उसे तुम ऊपरी दृष्टि से ही देखते हो। शोक और चिन्ता के कारण तुम्हें मेरे कार्य का महत्व नही मालूम होता। जब तुम्हारा चित्त शान्त और स्वस्थ होगा तो तुम्हें मेरे कार्य का महत्व मालूम हो जायगा। अगर मै महाराज से वर न मांगती तो वह ऋणी बने रहते। ऋण रहते दीक्षा लेना क्या उचित होता? राम के वन जाने में उनकी कसौटी हुई है। राम किस

श्रेणी के पुरुष हैं, यह बात उनके वन गये बिना संसार को कैसे ज्ञात होती? उनका तुम्हारे ऊपर हार्दिक प्रेम है या नहीं, यह बात कैसे समझ में आती? इसी प्रकार तुममे राज्य करने की योग्यता है या नहीं, यह भी कैसे पता चलता? यह सब मेरे वर मांगने से स्पष्ट हो गया। मुझे लोग युग--युग मे कोसते रहेंगे तो भले कोसें, मगर राम का यश बढ़ाने का श्रेय विद्वान् मुझे ही देंगे। मैंने राम का स्वरूप जगत् के सामने खोल कर रख दिया है। खैर कुछ भी हो। फिलहाल तुम मुझे अपराधिनी समझते हो तो समझो। यह अपनी-अपनी समझ की बात है। लेकिन महा-राज तो अपराधी नहीं हैं। उनकी धर्मसाधना में बाधा डालने से क्या लाभ होगा? इसलिए मैं फिर कहती हूँ कि तुम राज्य स्वीकार कर लो।

अब भरत से नहीं रहा गया। वह कहने लगे—माता! तुमने जो कुछ किया है, वह सब मेरा ही पाप है। लेकिन अब उस पाप को और बढ़ाने से क्या लाभ है? मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करूंगा। राजसिंहासन पर बैठने से प्राय-श्चित्त नहीं होगा। उसके लिए कोई और उपाय करना होगा।

तुम अपनी मांग का महत्व बतलाती हो मगर मेरे हृदय के कांटे के अतिरिक्त तुमने मांगा ही क्या है? तुम्हें न्याय धर्म और लोक-कुछ भी नहीं चाहिए। तुम अपने बेटे को राजा बना कर राजमाता बनना चाहती हो और इसके लिए सभी कुछ करने को तैयार हो। तुमने न्याय की हत्या की

और सूर्यवंश की परम्परा को भंग करने में भी कसर न रक्खी ! तुम राज्य के लोभ में धर्म, न्याय और स्नेह की हत्या कर रही हो किन्तु राज्य इन्हीं की रक्षा करने के लिए है। तुम्हारे दिए राज्य को स्वीकार करने का अर्थ यह स्वीकार करना है कि राज्य अन्याय, अधर्म और वैमनस्य के लिए है। क्या संसार को यही सच सिखाने के लिए मैं राजा बनूँ? तुम्हारे वर के द्वारा राज्य लेने का फल यह होगा कि लोग कहेंगे-हमें भी वही रीति करनी चाहिए जो भरत के यहाँ से निकली है। सब लोग बड़े कहलाने वालों को ही आदर्श मानते हैं और उन्हीं के पीछे-पीछे चलते हैं। अगर मैं राज्य लूँगा तो लोग यही कहेंगे कि भरत बड़े भाई को निकालकर स्वयं राजा बन बैठा है। जब भरत ने ऐसा किया तो हम क्यों चूकें? हम भी भाई का अधिकार क्यों न छीन लें? ऐसी स्थिति में स्वार्थ ही अब धर्म बन जायगा। क्या मैं राज्य लेकर स्वार्थ को धर्म के रूप में स्थापित करूँ और न्याय तथा औचित्य का गला घोंट दूँ? माता! क्या सचमुच तुम यही चाहती हो? क्या तुम यही चा। संसार मुझे धिक्कारे ?

वर-दान अच्छे के लिए होता है। पर लिए तुम्हारा वर भी अभिशाप बन गया है। जाता है वह मेरे लिये विष हो गया! यह लीला है !

माता ! अगर तुझे राजमाता बने बिना चैन नहीं पड़ता था तो मुझसे कहती तो सही। राजमाता बनने के लिए राम का राज्य छीनने की क्या आवश्यकता थी ? मैं तो अनेक राज्य स्थापित करने की क्षमता रखता हूँ। भरत इतना असमर्थ नहीं था कि तुझे राम का राज्य छीनना पड़ता। मैं बिना युद्ध किए भी राज्य प्राप्त कर सकता था और भुजाओं में युद्ध करने के लिए भी बल था। मगर तुमने राज्य के लिये ऐसा कर्म किया है कि सारा संसार मुझे धिक्कार रहा है। माता ! तू जरा ऊपर सूर्य की ओर तो देख, वह क्या कह रहा है ? वह लाल होकर कह रहा है कि तूने सूर्यवंश को कलंकित कर दिया ! वह कहता है मुझे राहु के द्वारा जो कलंक लगता है वह तो जल्दी ही मिट जाता है परन्तु तूने सूर्यवंश को ऐसा कलंक लगाया है जो कभी नहीं मिटने का। तूने ऐसा अमिट कलंक लगाया है और फिर कहती है कि मैंने क्या बुरा किया है ! मैं ऐसा राज्य नहीं लूँगा। धिक्कार है ऐसे राज्य को और इस स्वार्थमय संसार को।

कैकेयी से इस प्रकार कहते-कहते भरत का हृदय भर गया और आँखों से आँसू बहने लगे। उस समय शत्रुघ्न भी वहीं खड़े थे। वे कैकेयी से कहने लगे-माता ! आपने भ्राता की बात सुनी है। उस पर आप भलीभांति विचार कीजिए। सुबह का भूला सांझ को घर आ जाय तो भूला नहीं कहलाता। अब भी समय है। भूल हो जाना बड़ी बात

नहीं है मगर विवेकी जन हठ छोड़कर उसे सुधार लेते हैं । इसी में कल्याण है । अपनी भूल को सुधार लेना बिगड़ी बात बनाना है । समय निकलने पर फिर कुछ न बनेगा ।

माता ! आप राज्य को भोग-सामग्री समझती हैं । अगर हम भी ऐसा ही मान लें तो हमारे लिए और प्रजा के लिए यह रोग बन जायगा । फिर सभी लोग यह समझेंगे कि हमारा जन्म भोग के लिए हुआ है, धर्म के लिए नहीं । वास्तव में मनुष्य का जन्म भोग भोग कर पुण्य क्षीण करने के लिये नहीं है । बल्कि पुण्य और धर्म की वृद्धि के लिए है । पिताजी में धर्मभाव न होता तो वे आपको वर क्यों देते ? राम में धार्मिकता न होती तो वह राज्य क्यों त्यागते ? पिताजी धर्म के बिना दीक्षा क्यों लेते ? लक्ष्मण धर्मका महत्व न समझते तो रामके साथ अकारण वन क्यों जाते ? माता ! इन सब धार्मिक कार्यों पर भरत को राजा बनाकर आप पानी फेरना चाहती हो। मेरा नाम शत्रुघ्न है । शत्रु को दंड देने के लिए आपने मेरा यह नाम रक्खा है। लेकिन आज मैं स्वयं अपने को अपराधी और सूर्यवंश का कलंक मानता हूँ । इसलिए मेरी यह तलवार लो और मुझे तथा भरत भैया को यथेष्ट दंड दो।'

भरत और शत्रुघ्न की बातें सुनकर कैकेयी को कुछ-कुछ होश हुआ । वह अप्रतिभ-सी होकर सोचने लगी-यह सब क्या है ! मैने क्या सचमुच ही अनर्थ किया है ? मैंने जिसके लिए इतना किया, उनकी मति न्यारी है । राम, लक्ष्मण,

भरत और शत्रुघ्न की मति एक है। चारों भाई अभिन्न-हृदय हैं। सब का हृदय एक है। मै क्या इनके हृदय के टुकड़े कर रही हूँ ? मै कैसी पापिनी हूँ कि आज अपने पति, पुत्र और प्रजा-सब की आंखों मे गिर गई हूं। हाय ! मैं कहीं की नहीं रही ! मेरे नाम पर अमिट कलंक की कालिमा पुत गई।

शत्रुघ्न की बात समाप्त होने पर भरत कहने लगे-माता ! तुमने राज्य मांग लिया है तो तुम जानो। चाहे स्वयं राज्य करो, चाहे किसी को भी दे दो। मुझे यह नहीं चाहिए। मैं उसी ओर जाऊँगा जिस ओर राम और लक्ष्मण गये हैं।

सत्याग्रह की विजय

इस प्रकार सत्याग्रह और दुराग्रह के बीच मे लम्बा संघर्ष चला। पहले दुराग्रह ने सत्याग्रह को खूब तपाया किन्तु सत्याग्रह के सामने दुराग्रह की एक न चली। वह चूर-चूर हो गया। भरत के सत्याग्रह ने केकैयी के दुराग्रह को पराजित कर दिया। केकैयी पश्चात्ताप की आग में झुलसने लगी। उस की बुद्धि पलट गई। वह सोचने लगी-अब मुझे क्या करना चाहिए ? मुझे क्या पता था कि राम के बिना काम नहीं चल सकता। मैंने सोचा था-मेरा एक पुत्र राजा और दूसरा प्रधान बन जाएगा। मगर मेरा यह भारी भ्रम था। इस भ्रम का निराकरण पहले हो गया होता तो यह नौबत न आती ! अब मैं न इधर की रही न उधर की। सभी तरफ घोर मुसीबत है !

लेकिन अब भी समय है। अब भी बिगड़ी बात बन सकती है। महाराज के चरणों में गिरकर क्षमा माँग लूँ और राम को मना लाऊँ तो सब सुधर जायगा। बस यही करना उचित है।

कैकेयी की आत्मग्लानि

कैकेयी घबराई हुई राजा दशरथ के पास पहुँची। उसने गिड़गिड़ा कर कहा—महाराज ! मेरा अपराध हुआ है। मै मोह में पड़ गई थी। मोह के कारण ही यह भयानक भूल कर बैठी हूँ। मैंने कुबुद्धि के कारण राम और भरत में भेद किया। पर अब मालूम हुआ कि उनमें भेद हो ही नहीं सकता। भेद करने की मेरी कुचेष्टा असफल हुई है। मुझे इस असफलता के लिए कोई खेद नहीं है। खेद इस बात का है कि दुर्बुद्धि आई क्यों और मैंने यह कुचेष्टा की क्यों ? अपनी असफलता पर तो बल्कि संतोष है। मेरा भाग्य अच्छा था कि मेरी कुचेष्टा सफल नहीं हुई। सफल होती तो युग-युग की जनता जब आपका और राम का यश गाती तो मेरे नाम पर थूके बिना न रहती। इस प्रकार मेरा वर मांगना मेरे लिए शाप हो गया और मेरी असफलता ही वर बन गई है। मै अपने कृत्य के लिए अन्तःकरण से पश्चात्ताप करती हूँ। आपको मैंने बड़ी व्यथा पहुँचाई है। आप उदार हैं। राज्य देने वाले क्षमा भी दे सकते हैं। कृपा करके क्षमा दीजिए। आपका क्षमादान वर-दान से भी अधिक आनन्द-

प्रद होगा। मै राम से भी क्षमायाचना करूँगी। मै अब समझ गई हूँ कि राम के बिना संसार का उद्धार नहीं हो सकता। मुझे आज्ञा दीजिए कि मै भरत को साथ लेकर राम के पास जाऊँ और उन्हें मना लाऊँ। मै अनुनय-विनय करूँगी और उन्हें लौटा लाऊँगी। आपका दिया वर तो पूरा हो ही चुका है। अतएव आज्ञा देने में आप संकोच न करें।'

कैकेयी की विनम्रतापूर्ण और पश्चात्तापयुक्त वाणी सुनकर दशरथ को कितना संतोष हुआ होगा, यह कहना कठिन है। उनका मुरझाया हुआ चेहरा एकदम प्रफुल्लित हो गया। हृदय भर आया। वे कहने लगे—प्रिये ! मेरे लिए राम और भरत पहले भी सरीखे थे और अब भी वैसे ही हैं। चाहे राम राजा हों या भरत, मेरे लिए एक ही बात है। मगर जिस ढंग से यह व्यवस्था हुई थी, उससे परिवार में अशांति फैल गई है। मुझे इसी बात का खेद है। लेकिन अन्त में तुम्हारी सद्‌बुद्धि जागृत हो गई है। यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है। अब राम राजा हों तो भरत राजा है और भरत राजा हो तो राम राजा है। जब दोनों एक हैं तो कौन राजा है और कौन नहीं, यह प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। राम लौट आयें तो अच्छा है। न लौटें तो भी कोई हर्ज नहीं। फिर भी अगर तुम राम के पास जाना चाहती हो तो जाओ। मेरी अनुमति है। मेरे लिए एक-एक क्षण भारी हो रहा है। जल्दी लौटना, जिससे मैं दीक्षा ले सकूँ !

सारी अयोध्या में यह खबर फैल गई कि जिसकी करतूत के कारण राम को वन जाना पड़ा था, वही कैकेयी उन्हें लौटा लाने के लिए जा रही है। कैकेयी के इस अनुकूल परिवर्त्तन से सर्वत्र हर्ष छा गया। लोग कहने लगे—भरत ने राज्य ले लिया होता तो ग़ज़ब हो जाता। उन्होंने राज्य न लेकर कैकेयी का पाप धो डाला। आखिर तो राम के भाई है, इतनी सद्बुद्धि क्यों न हो !

कैकेयी राम के पास जाने को तैयार हुई। राजा के पास उनके सामंत, उमराव आदि बैठे नवीन परिस्थिति पर विचार कर रहे थे। उस समय रानी भी वहाँ पहुँची। उसने फिर पश्चात्ताप करके अपना पाप धोया। जिसका हृदय पहले मलीन था वह कैकेयी जो कुछ कह रही है, उस पर विचार करने से मालूम होगा कि पाप अस्थिर है और इसलिए उसे नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। पाप से घबराने से लाभ नहीं है, उसे नष्ट करना ही लाभदायक है।

कैकेयी कहती है—मैंने विना विचारे काम कर डाला, इसी कारण मैं अपयश का पात्र बनी हूँ। संसार में अपयश के काम तो अनेक है परन्तु जिस काम को करके मैं ने अपयश पाया है, वैसा करने वाला कोई विरला ही मिलेगा। मैंने बड़ा ही भयंकर कर्म किया है। पाप क्या हैं, यह मैं नहीं समझ सकी थी। मैं ने मूढ़ता के वश राम से वैर किया। इस कुकृत्य के कारण मेरे लिए स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताल-

प्रद होगा। मै राम से भी क्षमायाचना करूँगी। मैं अब समझ गई हूँ कि राम के बिना संसार का उद्धार नहीं हो सकता। मुझे आज्ञा दीजिए कि मै भरत को साथ लेकर राम के पास जाऊँ और उन्हे मना लाऊँ। मै अनुनय-विनय करूँगी और उन्हें लौटा लाऊँगी। आपका दिया वर तो पूरा हो ही चुका है। अतएव आज्ञा देने मे आप संकोच न करें।'

कैकेयी की विनम्रतापूर्ण और पश्चात्तापयुक्त वाणी सुन-कर दशरथ को कितना संतोष हुआ होगा, यह कहना कठिन है। उनका मुरझाया हुआ चेहरा एकदम प्रफुल्लित हो गया। हृदय भर आया। वे कहने लगे—प्रिये ! मेरे लिए राम और भरत पहले भी सरीखे थे और अब भी वैसे ही है। चाहे राम राजा हों या भरत, मेरे लिए एक ही बात है। मगर जिस ढंग से यह व्यवस्था हुई थी, उससे परिवार मे अशांति फैल गई है। मुझे इसी बात का खेद है। लेकिन अन्त में तुम्हारी सद्बुद्धि जागृत हो गई है। यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है। अब राम राजा हों तो भरत राजा है और भरत राजा हो तो राम राजा है। जब दोनों एक हैं तो कौन राजा है और कौन नहीं, यह प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। राम लौट आयें तो अच्छा है। न लौटें तो भी कोई हर्ज नहीं। फिर भी अगर तुम राम के पास जाना चाहती हो तो जाओ। मेरी अनुमति है। मेरे लिए एक-एक क्षण भारी हो रहा है। जल्दी लौटना, जिससे मै दीक्षा ले सकूँ।

सारी अयोध्या में यह खबर फैल गई कि जिसकी करतूत के कारण राम को वन जाना पड़ा था, वही कैकेयी उन्हें लौटा लाने के लिए जा रही है। कैकेयी के इस अनुकूल परिवर्त्तन से सर्वत्र हर्ष छा गया। लोग कहने लगे—भरत ने राज्य ले लिया होता तो गजब हो जाता। उन्होंने राज्य न लेकर कैकेयी का पाप धो डाला। आखिर तो राम के भाई हैं, इतनी सद्बुद्धि क्यों न हो!

कैकेयी राम के पास जाने को तैयार हुई। राजा के पास उनके सामंत, उमराव आदि बैठे नवीन परिस्थिति पर विचार कर रहे थे। उस समय रानी भी वहां पहुंची। उसने फिर पश्चात्ताप करके अपना पाप धोया। जिसका हृदय पहले मलीन था वह कैकेयी जो कुछ कह रही है, उस पर विचार करने से मालूम होगा कि पाप अस्थिर है और इसलिए उसे नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। पाप से घबराने से लाभ नहीं है, उसे नष्ट करना ही लाभदायक है।

कैकेयी कहती है—मैंने बिना विचारे काम कर डाला, इसी कारण मैं अपयश का पात्र बनी हूँ। संसार में अपयश के काम तो अनेक हैं परन्तु जिस काम को करके मैं ने अपयश पाया है, वैसा करने वाला कोई विरला ही मिलेगा। मैंने बड़ा ही भयंकर कर्म किया है। राम क्या है, यह मैं नहीं समझ सकी थी। मैं ने मूढ़ता के वश राम से वैर किया। इस कुकृत्य के कारण मेरे लिए स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताल-

लोक में कहीं पर भी स्थान न रहा। जो राम आपको,मुझको, भरत को और सारी प्रजा को प्रेम करते हैं, मैं उन्हीं के अनिष्ट का कारण बन गई! सीता जैसी साधुशीला सती को जाते देखकर भी मेरा हृदय न पिघला! इतना भयानक पाप और कौन कर सकता है? जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर मैं ने यह सब किया था, वह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। आज यह सोच-कर मुझे खेद नहीं, प्रसन्नता है। भरत ने राज्य स्वीकार कर लिया होता तो प्रायश्चित्त करने की प्रेरणा ही मेरे अन्तःकरण में न जागी होती। मेरा पाप बढ़ जाता और मैं अन्त तक गिरती ही चली जाती।

देवी कौशल्या और सुमित्रा को मैं बुरी समझती थी। मुझे उन पर अनेक प्रकार के सन्देह थे। लेकिन वे कितनी सरल-हृदया हैं, कितनी उदार हैं, यह मुझे आज जान पड़ा है। मैं अब समझी हूं कि कौशल्या से उत्पन्न पुत्र ही इस प्रकार राज्य त्याग कर वन जा सकता है और सुमित्रा का सपूत ही अपना क्रोध दबाकर तथा अपनी प्रचण्ड वीरता को रोक कर चुपचाप अपने ज्येष्ठ भ्राता की सेवा के लिए उसके साथ जा सकता है। मेरे हृदय का पाप राम और लक्ष्मण ने नष्ट कर दिया।'

इस प्रकार कहकर कैकेयी, कौशल्या और सुमित्रा से कहने लगी—मेरी बहिनो! मैं अपना मुंह दिखाने के योग्य नहीं हूँ। मैंने आपको पुत्र-बिछोह का दारुण दुख पहुंचाया

है। मैं तुमसे क्षमायाचना करती हूँ। मैं ने पहले भी तुम्हारा सच्चा स्वरूप समझा था और आज फिर समझ रही हूँ। बीच में मैं मूढ़ बन गई थी। आपकी सहिष्णुता, उदारता और वत्सलता देखकर मेरा पाप भाग रहा है।

मैं अब वन के लिए प्रस्थान कर रही हूँ। आप सब अपनी शुभ-कामनाएँ मेरे साथ रखिए, जिससे मैं अपने प्रयत्न में सफलता पा सकूँ। मैं राम से अनुनय-विनय करूँगी। उनका हाथ पकड़ कर खींच लाऊँगी। उन्हें लाकर ही छोड़ूँगी।

कैकेयी की आत्मग्लानि देखकर दशरथ सोचने लगे—मैं कहता था कि भरत राज्य स्वीकार न करके मेरी दीक्षा में रुकावट डाल रहा है, पर उसके कार्य का महत्व अब मेरी समझ में आया। भरत ने राज्य ले लिया होता तो रानी का सुधार होना संभव नहीं था और रानी के न सुधरने से यह वंश दूषित हो जाता।



कैकेयी का वन-गमन

——:::():::— –

राम आत्मा के सिवाय और पदार्थों को अस्थिर मानते थे। इसी कारण वह किसी भी बाह्य पदार्थ में आसक्त नहीं थे। वन जाते समय की उनकी छवि का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी ने कहा है—

प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकतः।
तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः ?।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे।
सदाऽस्तु तन्मञ्जुलमंगलप्रदा।

अर्थात्—जिनके मुख-कमल की शोभा राज्याभिषेक का समाचार पाकर प्रसन्न नहीं हुई और वन-वास के कठोर दुःखों से म्लान नही हुई, वह राम की मुखश्री मेरे लिए मंगलदायिनी हो।

राम राज्याभिषेक के समाचार से प्रसन्न और वन-वास के समाचार से अप्रसन्न नहीं हुए। इसका कारण यही है कि सांसारिक पदार्थों में आसक्त नहीं थे। उनकी दृष्टि में सभी

पदार्थ अस्थिर थे। संसार की वस्तुओं को स्थिर समझने वाला राज्य पाने की खुशी से फूल कर कुप्पा हो जाता है वन मे भटकने की बात सुनकर सिकुड़ जाता है। वह राज्य को इष्ट और वन-वास को अनिष्ट समझता है। मगर राम की अनासक्ति ऐसी बढ़ी हुई थी कि राज्यभोग और वन-वास उनके लिए समान-सा था। जो पुरुष आत्मा से भिन्न किसी भी वस्तु में ममत्वभाव धारण करता है, समझना चाहिए, उसके अन्तःकरण में आत्मा के प्रति दृढ़ आस्था ही उत्पन्न नहीं हुई। राम की आस्था आत्मा के विषय मे समीचीन थी और इसी कारण सुख-दुख उन्हें प्रभावित नहीं कर सकते थे।

राम के विचार की निर्मलता का प्रभाव कैकेयी पर कैसे न पड़ता? इसी प्रभाव के कारण कैकेयी की बुद्धि निर्मल हो गई। वह राम को लाने के लिए रवाना हुई। प्रजा मे से बहुत-से लोग साथ जाने के लिए तैयार हुए, मगर उन्हे किसी प्रकार समझा दिया गया। कैकेयी, भरत और मंत्री को साथ लेकर, रथ पर सवार होकर वन की ओर चल दी।

रास्ते मे रानी अनेक संकल्प—विकल्पों की उलझन में उलझी रही। कभी सोचती—अगर राम ने आना ...
किया तो मैं अयोध्या मे कैसे मुख दिखलाऊंगी
अकेली लौटती देखकर क्या सोचेंगे? क्या
लोग यह भी कह दें कि इसके हृदय में कपट
कोई कहेगा—पहले तो राम को वन

मनाने चली थी ! भला राम अब कैसे लौटते !

रानी कभी पश्चात्ताप करने लगती—मेरे समान अभागा और कौन होगा, जिसे राम प्रिय न लगे हों ? मैंने राम जैसे नर-रत्न को अवध से उसी प्रकार बाहर निकाल दिया जैसे पागल आदमी किसी अमूल्य रत्न को फेंक देता है। लेकिन अब गई-गुज़री पर विचार करने से क्या लाभ है ?

कभी रानी विचार करने लगती-राम, लक्ष्मण और सीता मुझे किस रूप में दिखाई देंगे ? जब मैं पहुँचूँगी, वे क्या कर रहे होंगे ? मुझे देखकर क्या विचार करेंगे ? लक्ष्मण मुझे खरी-खोटी सुना दे तो क्या आश्चर्य है ? मैं किस प्रकार उनसे अयोध्या लौटने के लिए कहूँगी ? सुकुमारी सीता इस भयावने वन में किस प्रकार दिन काटती होगी ? अगर राम अयोध्या लौटने को तैयार हो जाएँगे तो मेरे दोष का प्रायश्चित्त हो जायगा और अयोध्या में नवीन जीवन आ जाएगा। प्रजा अपने बीच से गये हुए राम जैसे रत्न को पाकर निहाल हो जायगी।

इस प्रकार मन ही मन विचार करती हुई अनमनी रानी कैकेयी, भरत और राजमंत्री के साथ चली जा रही थी। भाँति-भाँति के वन्य दृश्य कहीं सुन्दर और कहीं भयावने थे। पर कैकेयी भूत और भविष्य की चिन्ताओं में ऐसी निमग्न थी कि वर्त्तमान उसके सामने कुछ था ही नहीं। वन का कोई दृश्य उसके चित्त को प्रफुल्लित या कंपित नहीं कर पाता था।

चलते-चलते भरत ने वन के एक स्थान को शान्त और प्रसन्न देखकर अनुमान किया कि राम का आवास यहीं कहीं होना चाहिए। इस स्थान के वृक्ष फलों से और फूलों से समृद्ध हैं। परस्पर वैर रखने वाले जन्तु भी यहाँ भाई की तरह प्रेम से रहते हैं। यह सब राम का ही प्रभाव होना चाहिए।

भरत ने मंत्री से कहा-अग्रज यहीं कहीं होने चाहिए।

मंत्री ने भरत का समर्थन किया। उसने कहा-आपका अनुमान सत्य है। मैंने पहले भी राम का ऐसा ही प्रभाव देखा था। जान पड़ता है राम कहीं समीप ही होंगे। इस प्रकार विचार कर वे राम की खोज करने लगे।

इधर सीता ने भरत के तेज चलते हुए रथ से उड़ती हुई धूल देखकर सोचा-यह क्या है? वह कुछ भयभीत हो गई। उस समय राम और लक्ष्मण सो रहे थे और सीता जाग रही थी। सीता ने सोचा-यद्यपि सोते को जगाना उचित नहीं है लेकिन संकट की संभावना होने पर ऐसा करना अपराध नहीं है। अतएव लक्ष्मण को जगाकर धूल दिखा देनी चाहिए, जिससे वह सावधान हो जाएँ। सीता ने ऐसा ।
लक्ष्मण ने जागकर उड़ती धूल देखी और साथ
ध्वजा भी उन्हें दृष्टिगोचर हुई। यह देख
किया-भरत हमें वन में असहाय समझ
आ रहे हैं। वह अपने राज्य को निष्कंटक
पर भरत का इरादा पूरा नहीं हो

क्या, सारा संसार संग्रामभूमि में मेरे सामने नहीं ठहर सकता। देखते-देखते ही मैं भरत का और उसकी सेना का संहार कर डालूँगा।

अब राम भी जाग चुके थे। लक्ष्मण को इस प्रकार वीरों के योग्य तेज से भरा हुआ देखकर राम ने कहा—लक्ष्मण, भरत पर तुम्हारा संदेह करना यथार्थ नहीं है। इस प्रकार का संदेह करने में भरत का दोष नहीं है। यह तुम्हारे उग्र स्वभाव का ही दोष है। भरत के हृदय में इस प्रकार का पाप होना संभव नहीं है। पृथ्वी स्थिरता को, समुद्र मर्यादा को और चन्द्रमा शीतलता को छोड़ दे फिर भी भरत अपनी मर्यादा नहीं छोड़ सकता। भरत अपना धर्म नहीं छोड़ेगा। भरत के चित्त मे पाप आने की संभावना ही नही की जा सकती। तुम्हारा संदेह वृथा है।

इस प्रकार राम के समझाने पर लक्ष्मण शान्त हुए। भरत, राम की ओर बढ़े और राम, लक्ष्मण तथा सीता भरत की ओर चल पड़े।



कथानकों की भिन्नता

——:.::()::..——

राम के वन-वास से पहले वर-याचना के विषय में तुलसी रामायण और जैनरामायण के कथन में जो भिन्नता है, उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। वन-वास के बाद की कुछ घटनाएँ भी दोनों जगह कुछ भिन्न-भिन्न हैं। पद्मचरित (जैन रामायण) के अनुसार भरत ने महाराज दशरथ, राम, कौशल्या, और प्रजाजनों के आग्रह को टालना उचित नहीं समझा। अतएव उन्होंने अत्यन्त अनमने भाव से, दुःखितचित्त होकर राज्य करना स्वीकार कर लिया और दशरथ की दीक्षा का मार्ग साफ कर दिया। दशरथ दीक्षित हो गए। भरत राजा होकर भी सदैव खिन्न, उदास, और विकल रहते। राम के वन-वास का कांटा उनके हृदय में चुभता ही रहता था। उन्हें कभी शांति नहीं मिलती थी। उधर महारानी अपराजिता (कौशल्या) और सुमित्रा भी पुत्र के वियोग और पति के वियोग के कारण बेहद दुखी रहने लगीं। उनकी आँखों से आंसुओं की अखण्ड धारा बहती ही रहती। यह देखकर भरत को राज्यलक्ष्मी विष

समान [illegible] प्रतीत होती थी। सर्वत्र शोक और चिन्ता का वायुमण्डल बना रहता। यह दशा देख कर महारानी कैकेयी से नहीं रहा गया। [illegible] एक दिन उन्हों-ने भरत से कहा—

पुत्र ! राज्यं त्वया लब्धं [illegible] ।
[illegible] शोभते ।
[illegible] किं राज्यं का सुखासिका ?
का वा जनपदे शोभा [illegible] का वा प्रसन्नता ? ॥
[illegible] सुखैषिणौ ?
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
तस्मादानय तौ क्षिप्रं रामं [illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible] और [illegible] राजाओं [illegible] कर लिया है, लेकिन राम [illegible] शोभा नहीं [illegible] पूर्ण [illegible] और [illegible]



नहीं मिल सकता। सभी दुखी हैं। सारा देश शोभाहीन हो गया है, जैसे अवध की सारी शोभा उन्हीं के साथ चली गई है। उनके निर्वासित रहते तुम्हारे सदाचार में भी बट्टा लगता है। लोग सोचते होंगे-बड़े भाई को देश से बाहर निकाल कर भरत आप राजा बन बैठा है।

कदाचित् इस बदनामी की उपेक्षा भी कर दी जाय, तो भी सुख में पले पुसे और बड़े हुए दोनों बालक-राम और लक्ष्मण सुकुमारी राजकुमारी सीता के साथ कहाँ भटकते फिरेंगे? उनके पास कोई सवारी नहीं है। वन का मार्ग कंकरों पत्थरों और कांटों से व्याप्त है। ऐसे बीहड़ रास्ते पर वे पैदल कैसे चलते होंगे?

इसके अतिरिक्त उनकी माताएँ भी अत्यन्त दुखी हैं। अपने पुत्र पर माता का स्नेह होता ही है। और जब पुत्र अत्यन्त गुणी हों-गुणों के सागर हों तो उन पर विशेष स्नेह होना स्वाभाविक ही है। ऐसे पुत्रों का वियोग होना वास्तव में बड़े ही दुःख की बात है। बहिन अपराजिता और सुमित्रा निरन्तर आंसू बहाती रहती है। अगर यही हालत र वे प्राण त्याग देंगी। यह बड़ा अनर्थ होगा।

इसलिए तुम उन्हें ले आओ। उनके साथ रह का चिरकाल तक पालन करो। इसी में कल्या करना चाहिए। ऐसा करने पर ही राज्य भी

हे सुपुत्र! तू तेज़ चलने वाले घोड़े पर

रवाना हो जा। मैं भी तेरे पीछे-पीछे आती हूँ।

माता का रुख बदला हुआ देखकर भरत की प्रसन्नता का पार न रहा। उन्हें और चाहिए ही क्या था? भरत तत्काल तैयार हो गये। एक हजार घोड़े अपने साथ लेकर वह उसी ओर रवाना हुए जिस ओर राम गए थे। सीता के कारण धीमे-धीमे चलते हुए राम और लक्ष्मण बहुत दिनों में जहाँ पहुँचे थे, भरत ऐसी तेजी से चले कि छह दिनों में वहाँ पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर और राम की खोज करके वे राम के पास पहुँचे।

जब भरत पहुँचे तब राम एक सरोवर के किनारे ठहरे हुए थे। ज्यों ही भरत की दृष्टि राम पर पड़ी, वह घोड़े से उतर पड़े। पैदल चल कर राम के सामने गये। राम और लक्ष्मण ने भरत को आते देखा तो वे भी प्रेम से विह्वल होकर भरत की ओर बढ़े। बीच ही में समागम हो गया। भरत राम के पैरों में गिर पड़े। स्नेह और भक्ति की अधिकता के कारण वह मूर्छित हो गये। राम ने बड़े प्रेम से भरत को उठाया और सावचेत किया।

जैन-रामायण के वर्णन में पहली भिन्नता यह है कि कैकेयी को वैसे निष्ठुर रूप में चित्रित नहीं किया गया है, जैसा कि तुलसी-रामायण में। इसके अतिरिक्त भरत को देखकर लक्ष्मण को जो आशंका हुई बतलायी गई है, उसमें भाइयों परस्पर अविश्वास होना प्रगट होता है। मगर हम

देखते हैं कि भरत जैसे साधु-स्वभाव के भाई पर इस प्रकार की आशंका करने का कोई कारण नहीं था। कैकेयी के मन में भेदभाव अवश्य उत्पन्न हुआ था, मगर भरत के किसी भी व्यवहार से यह नहीं जाना गया था कि उन के चित्त में राम के प्रति लेश भर भी अप्रीति है। ऐसी स्थिति में लक्ष्मण की आशंका अस्वाभाविक ही कही जा सकती है। इतना ही नहीं, इससे चारों भाइयों के अविच्छेद्य स्नेहसंबंध का आदर्श, जो रामायण का एक महत्वपूर्ण भाग है, खंडित हो जाता है। लेकिन तुलसीदासजी ने लक्ष्मण की आशंका का वर्णन संभवतः उनकी उग्र प्रकृति का दिग्दर्शन कराने के लिए किया है। इसमें संदेह नहीं कि राम अगर हिम की भाँति शीतल थे तो लक्ष्मण आग की तरह गरम थे। इसी कारण तुलसी-रामायण के अनुसार हमने उक्त घटना का उल्लेख कर दिया है।

मेरा उद्देश्य रामायण की कथा सुनाना नहीं है किन्तु रामायण की कथा का आधार लेकर उससे मिलने वाली शिक्षा की ओर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करना है। इसीलिए मैंने बहुत सी घटनाओं का परित्याग भी कर दिया है और जिस किसी राम-कथा में जो बात शिक्षाप्रद दिखाई दी, वह ग्र कर ली है। आदि से अन्त तक की पूरी राम-कथा ज से इच्छा रखने वालों को अन्य ग्रंथ देखने चाहिए।



राम और भरत का मिलाप

——::::():::——

राम बड़े प्रेम के साथ भरत से मिले। भरत ने उन्हें प्रणाम कहा। राम ने भरत को अपने गले से लगा लिया। भरत की आंखें अश्रू बहा रही थीं। राम जब वन के लिए रवाना हुए थे तो चिन्ता और विषाद के कारण भरत रोये थे लेकिन इस समय विशुद्ध भ्रातृप्रेम ही उनके रुदन का कारण था।

राम ने कहा-भरत! कठिन से कठिन स्थिति आ पड़ने पर भी पुरुषों को रोना शोभा नहीं देता। धैर्य के साथ सब परिस्थितियों का सामना करना चाहिए। रोने से कठिनाई कम नहीं होती वरन् अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि उसका सामना करने का साहस जाता रहता है। हम लोग कई दिनों में आपस में मिले हैं। यह समय हर्ष का है। रोने का क्या कारण है?

भरत-'हे भ्राता! आप मुझे आश्वासन देते हैं, मगर मेरे जैसे पापी को धैर्य हो तो कैसे? आप मुझ अभागे को अयोध्या में छोड़कर चले आये है। ऐसी दशा में मैं संन्तोष कैसे पा सकता हूँ? आपके वन आने पर सिंह, सर्प आदि

हिंसक पशुओं में प्रेमभाव उत्पन्न हो गया है, सूखे सरोवरों में जल आ गया है और जिन वृक्षों में फल-फूल नहीं थे वे भी फलों-फूलों से मनोहर दिखाई देने लगे हैं। आप सब को सुख-शांति पहुंचाने वाले हैं। लेकिन मैं आपकी अशांति का कारण बन गया हूँ। मैंने आपको बहुत कष्ट पहुँचाया है। मेरे समान पापी और कौन होगा ? किन्तु आप महानुभाव हैं, क्षमासागर हैं, विवेकशाली हैं। मैं आपसे क्षमा की याचना करता हूँ। कृपा कर मुझे क्षमा का दान दीजिए। मेरे हृदय में रंचमात्र भी कपट नहीं है। आपने जिस सांचे में मुझे ढाला है, उसी में मैं ढला हूं। मेरे अन्तःकरण में पाप नहीं है। इसके लिए आपको छोड़ और किसे साक्षी बनाऊँ ? मेरे लिए तो आप ईश्वर के तुल्य हैं। फिर भी मैं अपने परोक्ष अपराध का दंड लेना चाहता हूं। मुझे दंड दीजिए।'

राम-'निर्मल में मल की, अमृत में विष की और कुलीन में अकुलीनता की आशंका करने वाला ही तुम्हारे चित्त में पाप की कल्पना कर सकता है। तुम मेरे भाई हो। मैं तुम्हारे निष्पाप-भाव को भलीभांति जानता हूँ। मुझे विश्वास है कि तुम्हारे अन्तःकरण में कपट का लेश भी नहीं है। तुम सर्वथा निर्दोष हो और निर्दोष को दंड लेने की आवश्यकता नहीं होती।'

महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह किसी अनबन के कारण राणा के विरोधी बन कर शत्रु से मिल गये थे। लेकिन प्रताप संकट में पड़ गये और शत्रुओं ने उनका पीछा क

तो शक्तिसिंह उनकी रक्षा करने को दौड़ पड़े। राणा ने समझा-भाई शत्रुता का बदला लेने के लिए मुझे मारने आया है। मगर शक्तसिंह ने कहा—मैं आपको मारने नहीं आया हूँ, मगर रक्षा करने आया हूँ। मुझे ऐसा जघन्य पातकी न समझिये कि मै संकट में पड़े भाई की सहायता न करके हत्या करने को उद्यत हो जाऊँ। अन्ततः शक्तसिंह और राणा प्रतापसिंह का प्रेमपूर्ण मिलाप वैसा ही हुआ जैसा भरत और राम का हुआ था।

सच्चा भाई अपने भाई के प्रति सदैव स्नेह ही रक्खेगा। अगर कोई यह समझता है कि मेरे प्रेम करने पर भी मेरा भाई मुझसे प्रेम नहीं करता, तो ऐसा समझने वाले को अपना हृदय टटोलना चाहिए। अगर उसके हृदय मे मैल नहीं है तो भाई के दिल में भी मैल नहीं टिक सकता।

भरत कहते हैं-प्रभो! आपके वन-आगमन से सारी प्रजा दुखी है। वह आपके लौटने की प्रतीक्षा में व्याकुल है। आपके चले आने से मेरे सिर पर बड़ा कलंक लग गया है। वह कलंक आपके लौटे विना नहीं धुल सकता। अगर आप मुझ पर कृपा रखते हैं तो मेरी निष्कलंकता सिद्ध करने के लिये अयोध्या पधारिये।'

राम--अनुज भरत! तुम्हें देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। तुम्हारा प्रेम और विनय देख कर मुझे रोमान्च हो आता है। तुमने जो कुछ कहा है, वह तुम्हारे योग्य ही

है। मैंने रुष्ट होकर अयोध्या का परित्याग नहीं किया है और न अब रुष्ट हूँ। पिताजी की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए मैं स्वेच्छा से यहाँ आया हूँ। ऐसी दशा में तुम्हारे सिर दोष मढ़ने वाले लोग भूल करते हैं। जो तुम्हें पहचानते हैं, वे कभी दोषी नहीं ठहरा सकते। तुम्हारा सद्व्यवहार ही तुम्हारी निर्दोषता का प्रमाण है।

अब रही मेरे लौटने की बात। यह सत्य है कि मेरे लौटने से तुम्हें प्रसन्नता होगी, माता कैकेयी का भी अन्तर्दाह मिट जायगा और प्रजा को भी संतोष होगा। लेकिन बन्धु, ऐसा करने से सूर्य वंश पर अमिट कलंक लग जायगा। जैसे त्यागे हुए राज्य को फिर ले लेने से पिताजी की निन्दा होगी, उसी प्रकार मेरे अवध चलने से मेरी निन्दा होगी। लोग यही कहेंगे कि पिता ने भरत को राज्य दिया था, किन्तु पिता के दीक्षा लेते ही राम ने लौटकर भरत से राज्य ले लिया!

मोह से ग्रस्त होकर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का सही निर्णय नहीं होता। मध्यस्थ भाव धारण करके यह निर्णय करना चाहिए। मेरा अवध को लौटना हितकर न होगा बल्कि हानिप्रद होगा। इसलिए तुम आग्रह मत करो और प्रजा का पालन करो।

इसी समय कैकेयी आ पहुँची। उन्हें देखकर और लक्ष्मण के साथ राम सामने गये। सब ने उन्हें किया। कैकेयी ने आँसू बहाते हुए सब को आशीष

कैकेयी का पश्चात्ताप

——:::():::——

कैकेयी को आते ही मालूम हो गया कि राम अयोध्या लौटने को तैयार नहीं हो रहे है। तव वह सोचने लगी—'अपराध सारा मेरा ही है। जब तक मै उसका प्रायश्चित्त नहीं कर लूँगी तव तक राम कैसे लौटेंगे? यह सोच कर वह बोली—'वत्स राम! मोह की शक्ति वड़ी प्रवल है। उसने मुझे मूढ़ वना दिया था। मोह के वश होकर ही मैंने यह अपराध कर डाला है। अव मेरी आँखे खुल गई हैं। भरत के लिए राज्य माँगकर मै तुम्हारे वन-वास का कारण वन गई, इसका मेरे अन्तःकरण में वहुत पश्चात्ताप है। तुम्हारे विना अयोध्या सूनी है। अव दूसरा विचार मत करो और शीघ्र ही अयोध्या लौट चलो।

तुम्हारे वन आने से मैंने तुम्हें, लक्ष्मण को और सीता को ही नहीं गँवाया, भरत को भी गँवा दिया है। भरत का अव मेरे ऊपर वैसा स्नेह नहीं रहा है। उसकी चेष्टाएँ जड़वत् हो रही हैं। वह रात-दिन उदास और संतप्त रहता है। प्रजा ... में उसका चित्त नहीं लगता। अगर तुम भरत को

मेरा बनाए रखना चाहो और उसमें पहले जैसी क्रियाशीलता देखना चाहो तो अवध को लौट चलो। तुम्हारे लौटने से ही भरत बना रह सकता है। मैंने भरत के लिए अपयश सहन किया, धिक्कार का पात्र बनी, स्वर्ग त्याग कर नरक जाना स्वीकार किया, फिर भी भरत मेरा नहीं बना। तुम्हारी राज्य-प्राप्ति से कोई नाराज नहीं था। नाराज़ थी तो अकेली मैं और वह भी भरत की भलाई सोच कर। इतना करने पर भी आज देखती हूँ कि भरत में मानों जान ही नहीं है। जैसे जंगल से पकड़ कर लाया हुआ हिरन नगर में सशंक और भयभीत-सा रहता है, भरत भी वैसा ही बना रहता है। वह सारे संसार को भय और शंका की दृष्टि से देखता है। अतएव तुम अयोध्या लौटकर भरत को निःशंक और निर्भय बनाने के साथ उसे जीवित कर दो।

कैकेयी वैसे तो शुद्ध हीरे के समान थी किन्तु मोह ने उसे घेर लिया था। मोह का वेग जब कम हुआ तो वह [illegible] अपने असली रूप में आ गई। इसी कारण वह [illegible] पहुँच कर अपने कृत्य का पश्चात्ताप कर र[illegible]

कैकेयी कहती है—'चन्दन शीतल [illegible] है, लेकिन मेरे लिए वह भी संताप [illegible] चन्दन में ताप देने का गुण होता तो [illegible] पहुँचाता। मगर वह सिर्फ मुझे ही [illegible]

-एव स्पष्ट है कि वह मेरे ही शरीर की गर्मी है, चन्दन की नहीं।

कोई सम्माननीय व्यक्ति अच्छे वस्त्र और आभूषण पहने हो लेकिन जिससे वह सम्मान पाने का अधिकारी है, उससे सम्मान न पाकर अपमान पाये तो उस समय उसे अपने गहने-कपड़े भी बुरे मालूम होते हैं। अपमान के कारण उसे अपनी सजावट दुखदायी प्रतीत होने लगती है।

कैकेयी कहती है—मै आत्मग्लानि के दुःख के कारण इतनी संतप्त हूँ कि श्रीखंड भी मेरे लिए दाह का ही कारण बन गया है। कोई कह सकता है कि पहले ही सोच-विचार कर काम क्यों नहीं किया? ऐसा किया होता तो आज क्यों आत्मग्लानि सहन करनी पड़ती? पर उसका उत्तर मै दे चुकी हूँ। मै अनुचित मोह में फँस गई थी। उसी मोह के फल आज मेरे आगे आ रहे हैं और आग बनकर जल रहे हैं। मै उस आग में झुलस रही हूँ।

शास्त्र में कहा है कि उत्तम जाति वाला और उत्तम कुल वाला ही अपने पाप की आलोचना कर सकता है। नीच जाति और नीच कुल वाला तो उल्टा अपने पापों को छिपाने का प्रयत्न करता है। कैकेयी जातिमान् थी, इस कारण वह अपना पाप स्पष्ट रूप से स्वीकार कर रही है।

वह कहती है—मै अपने अपराध का दंड अनिच्छा से ... हूँ और इच्छा से अब भोगूँगी। मै अपराध से

नहीं डरी तो उसके दंड से मुझे क्यों डरना चाहिए ? अपराध का निस्तार उचित दंड भोगने से ही होगा। अपराध का दंड न लेना अपने प्रति जगत् की घृणा लेना होगा। लोग गंगा और वरुण से अपना पाप मिटाना चाहते हैं पर मैं इस तरह नहीं मिटाना चाहती। मैं प्रायश्चित्त लेकर ही निष्पाप बनना चाहती हूँ।

'हे राम ! मैं तुमसे अधिक क्या कहूँ ? कहते लज्जा होती है, फिर भी कहती हूं कि अगर मुझे चिर-नरक मिलता हो तो मैं अपना पाप धोने के लिए उसे भी स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। मैं नरक में जाने में जरा भी देर नहीं करूंगी। मैं ही देर करूंगी तो फिर नरक में कौन जायगा ? मुझे डरना था तो पाप से डरना था। जब पाप से नहीं डरी तो नरक जाने से डरने की क्या आवश्यकता है ?

आप नरक को अच्छा समझते हैं या बुरा समझते हैं ? नरक का नाम सुनते ही आपके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पर आप यह नहीं जानते कि नरक वह धाम है जहाँ आत्मा अपने पापों का प्रक्षालन करता है। नरक में आत्मा अपने चिरकालीन पापों का प्रायश्चित्त करता है और पाप के भार से हल्का हो जाता है। विवेकवान् पुरुष नरक जाने योग्य पापों से डरता है, नरक से नहीं डरता। अशुचि से दूर रहना उचित है, फिर भी अशुचि का स्पर्श होने पर शुद्धि करनी पड़ती है। शुद्धि से डरने वाला अपवित्र बना रहता

है। यही बात [illegible] पाप नरक में [illegible] नरक [illegible] योग्य [illegible] । [illegible] नरक में जाने से [illegible] है [illegible] । [illegible] नरक में जाने से भी [illegible] होगा?

कैकेयी कहती है— मैं नरक में जाऊँगी तो भी मेरे पाप का प्रतिशोध होना कठिन है, क्योंकि मैंने घोर पाप किया है। कोई यह कह सकता है कि [illegible] स्वर्ग मिलेगा। लेकिन स्वर्ग मेरे लिए [illegible] होगा। [illegible] वाला है और पुण्य को क्षीण करने वाला है। इस दृष्टि से वह नरक से भी बुरा है। मैं ऐसे स्वर्ग को लेकर क्या करूँगी?

कवि का उद्देश्य यह [illegible] कहला-कर जनता को उपदेश देना है। इसका तात्पर्य यह है कि कैकेयी और भरत जैसे भी अपने कुकृत्य की निन्दा करते हैं तो पापों में डूबे रहने वालों को कितनी आत्मनिन्दा करनी चाहिये? आप भरत या कैकेयी जैसे भी नहीं हैं, लेकिन उनके बराबर भी अपने पापों की निन्दा करते हैं? उन्होंने अपना पाप दबाया नहीं, उसे खुलकर प्रकट किया है। इसी कारण वे [illegible] हुए। ऐसी दशा में पाप को भीतर ही भीतर छिपाकर

रखने वाला कैसे महान् बन सकता है?

कैकेयी कहती है—'वत्स! मेरा कलेजा कितना कठोर हो गया था कि मैंने तुम्हें राज्य से वञ्चित किया और तुम्हें वन जाना पड़ा। तुम्हें वन जाते देखकर भी जो हृदय पिघला नहीं, उसे स्वर्ग पाने का अधिकार ही क्या है? इतना कठोर मन भी अगर नरक में न ले जायगा तो नरक का दरवाजा ही बन्द हो जायगा। अगर तुम यह कहना चाहो कि मेरा पाप समाप्त हो गया है तो फिर तुम्हें वन में रहने की क्या आवश्यकता है? तुम्हारे अयोध्या लौटने पर ही न अपना पाप समाप्त होना समझ सकती हूँ। तुम न लौटोगे तो कौन मानेगा कि मेरा पाप चला गया।'

भी धो डालते हैं। पश्चात्ताप वह अग्नि है, जिसमें पाप का मैल भस्म हो जाता है और आत्मा स्वर्ण की भाँति निर्मल बन जाता है। भक्तजन कहते हैं:—

प्रभुजी! मेरो मन हठ न तजे।
जिस दिन देऊं नाथ! सिख बहु विध,
करत स्वभाव निजे।
ज्यों युवती अनुभवति प्रसव अति,
दारुण दुख उपजै।
मैं अनुकूल बिसारि शूल शठ,
पुनि खल-पतिहिं भजै।
लोलुप अति भ्रमत गृहपशु ज्यों,
सिर पद त्राण वजे।
तदापि अधम विचरत तेहि मारग,
कबहूँ न मूढ़ तजै।
हौं हारयो करि जतन बहुत विध,
अतिशय प्रबल अजै।
तुलसीदास वश होई तब,
जब प्रेरक बरसे,

भक्त कहते हैं—प्रभो! मेरा मन ऐसा हठीला है कि रात-दिन समझाने पर भी वह नहीं समझता है। पशु और स्त्री जैसे भूल करता है, मेरा मन भी वैसी ही गलती करता है।

जब सन्तान का प्रसव करती है और प्रसव की पीड़ा से

[illegible] हो जाती है तो सोचती है कि अब कभी गर्भ धारण नहीं करूँगी। मगर थोड़े दिनों बाद ही वह अपने निश्चय को भूल जाती है और पति को भजने लगती है। जैसे कुत्ता घर घर भटकता है और जहाँ जाता है वहाँ मार खाता है। फिर भी वह फिर उसी घर में जा पहुँचता है। वह घरों में जाना नहीं छोड़ता। मेरा मन भी इन्हीं के समान है। वह बार-बार उसी ओर जाता है जहाँ न जाने का उसने विचार किया था। कुत्ता तो रोटी का टुकड़ा पाने के लोभ से भटकता है, पर मन कुत्ते से भी गया-बीता होता है। वह रोटी की आवश्यकता न होने पर भी उस मार्ग में जाता है, जहाँ जूते पड़ते हैं। मन को रोकने के लिए मैंने अनेक उपाय किये हैं, फिर भी वह अपना हठ नहीं छोड़ता। उसका हठ तभी छूट सकता है जब, हे प्रभो! तू मन में बस जाय। मन में तू बस जायगा तो मन वश में हो जायगा।

अगर आपका मन भी ऐसा ही हठी हो तो आपको भी परमात्मा से यही प्रार्थना करनी चाहिए। आपको भी सूर की तरह अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए।

गहना सोने का ही होता है, फिर भी गहना अशाश्वत और सोना शाश्वत कहलाता है। सोना* [illegible]

* यद्यपि सोना भी पर्याय ही है और इस कारण वह भी अशाश्वत ही है, तथापि वह कड़े आदि पर्यायों का कारण है [illegible] द्रव्य रूप है। इस कारण उसे द्रव्य कहते हैं। [illegible] है।

है। लेकिन लोग द्रव्य को भूल कर पर्याय को ही पकड़ रहे हैं। पर्याय को ही पकड़ने और द्रव्य को भूल जाने के कारण ही आज मनुष्य-मनुष्य में भी अनुचित भेद माना जाता है। लेकिन किसी भी प्रकार के एकान्त से कल्याण नहीं हो सकता। पर्याय के साथ शाश्वत द्रव्य को समझने वाला सम्पत्ति और विपत्ति को समान समझता है।

राम वन में हैं। एक प्रतिष्ठित और सुख में पले हुए पुरुष के लिए वन-फल खाना, भूमि पर सोना और छाल के वस्त्र पहनना कितना कष्टकर होता होगा ? ऐसी स्थिति मे पड़ा हुआ पुरुष अगर पर्याय को ही पकड़ ले और द्रव्य को भूल जाय तो उसके दुःख की सीमा नहीं रहेगी। लेकिन राम दुःख से बचे रहे। इसका कारण यही है कि वे द्रव्य को भलीभांति जानते थे-उन्होंने शाश्वत सत्य को पहचान लिया था। अपनी इसी जानकारी के कारण वे इस स्थिति में भी आनन्द अनुभव करते थे।

कैकेयी कहती है—'तुम शीघ्र अयोध्या लौट चलो। सैर करने के लिए या मुनिपद धारण करके तुम वन मे नहीं आये हो। भरत का दुःख मिटाने के उद्देश्य से तुम्हे यहाँ आना पड़ा है। मगर अब तुम्हारे यहाँ रहने से भरत को दुःख हो रहा है, अतएव फिर एक बार उसका दुःख मिटाओ और अयोध्या चलो। देखो, मै कैसी निष्ठुर हूँ कि मैने तुम्हे ऐसे कष्ट में डाल दिया।'

'मैं अब तक भरत को ही सब से अधिक प्रिय मानती थी। मोह-वश मैं समझती थी कि भरत ही मेरा पुत्र है और वही मुझे अधिक प्रिय होना चाहिए। अपने प्रिय के लिए सब कुछ किया जाता है। इसी लिए मैंने सोचा कि अगर मैंने भरत के लिए वर-दान में राज्य न मांगा तो फिर वर मांगना ही किस काम का! लेकिन भरत ने मेरी भूल मुझे सुझा दी है। भरत ने अपने व्यवहार से मुझे सिखा दिया है कि 'अगर मैं तुम्हें प्रिय हूँ तो राम मुझे प्रिय है। तू मेरे प्रिय को मुझसे छुड़ाकर मुझे खुशी कैसे कर सकती है? यह राज्य तो राम के सामने नगण्य है। मुझसे राम को दूर करना तो मेरे साथ शत्रुता करना है। राज्य मुझे प्यारा नहीं, राम प्यारे हैं।' इस प्रकार भरत के व्यवहार से मैं समझ गई हूँ कि अपने प्रिय राम के बिछुड़ने से भरत निष्प्राण-सा हो रहा है। राम! तुम मेरे प्रिय के प्रिय हो तो मेरे लिए दुगुने प्रिय हो। अब तुम्हें छोड़ कर भरत नहीं रह सकते। यह निश्चय है कि तुम्हारे बिना न भरत मेरा रह सकता है। तुम्हारे न रहने पर भरत मेरा नहीं रह सकता।'

लोग तुच्छ चीजों के लिए [illegible]

अपनी जाति तथा अपने धर्म को लजाते हैं। पर की सम्पत्ति को हड़प जाने वालों की क्या कमी है? ऐसे लोगों को उस कैकेयी के समान भी कैसे कहा जा सकता है, जिसने भरत के लिए राज्य मांगा था? कैकेयी ने अपनी बुराई की जिस प्रकार निन्दा की है, उसी प्रकार निन्दा करके अपनी-अपनी बुराइयों को छोड़ने से ही कल्याण हो सकता है।

कैकेयी कहती है-'राम! मै नहीं जानती थी कि भरत मेरा नहीं, राम का है। अगर मै जानती कि मै राम की रहूँ तभी भरत मेरा है, नहीं तो भरत भी मेरा नहीं है तो मैं तुम्हारा राज्य छीनने का प्रयत्न ही न करती। मुझे क्या पता था कि भरत, राम को छोड़ने वाली माता को छोड़ देगा!'

अगर आपके माता-पिता परमात्मा का परित्याग करदें और स्थिति ऐसी हो कि आपको माता-पिता या परमात्मा में से किसी एक को ही चुनना पड़े तो आप किसे चुनेंगे? माता पिता का परित्याग करेंगे या परमात्मा का? परमात्मा को त्यागने वाला चाहे कोई भी क्यों न हो, उसका त्याग किये विना कल्याण नहीं हो सकता।

कैकेयी फिर कहने लगी-'मुझे पहले नही मालूम था कि तुम भरत को अपने से भी पहले मानते हो। काश! मैं पहले समझ गई होती कि तुम भरत का कष्ट मिटाने के लिए इतना महान् कष्ट उठा सकते हो! ऐसा न होता तो तुम्हारा राज्य ... हिम्मत किसमें थी, खास तौर पर जब लक्ष्मण भी

कुमार साथ थे। तुमने महाराज के सामने भरत को और आने-आपको दाहिनी और बाईं आँख बतलाया था। यह समाई में अब भलीभांति समझ सकी हूँ। मैं अब जान गई हूँ कि भरत को तुम प्राणों से अधिक प्रेम करते हो।'

लोक एक बड़ी भूल यह कर बैठते हैं कि स्वार्थ के समय उन्हें ईश्वर याद नहीं रहता। उस समय ईश्वर पर भरोसा नहीं रहता। कैकेयी यही भूल बतला रही है। उसके पश्चात्ताप से प्रगट होता है कि स्वार्थसाधन के समय ईश्वर को भूलना नहीं चाहिए। जिस परमात्मा को त्रिभुवननाथ और देवाधिदेव की पदवी दी गई है, उसके लिए प्रकट में कुछ हानि सहनी पड़ती हो तो भी उसे हानि नहीं समझना चाहिए। जिनके मन में परमात्मा के प्रति अपरिमित प्रीति है वे सब प्रकार की हानि सहन करके भी परमात्मा को नहीं त्याग सकते। ऐसे भक्तों के लिए घोर से घोर हानि भी बड़े से बड़ा लाभ बनकर प्रगट होती है।

कैकेयी कहती है—वत्स! तुम्हारे [illegible] से मुझे [illegible] एक नर-रत्न की परीक्षा हुई है। तुम्हारे वन [illegible] और लक्ष्मण ने भी सब सुख त्याग करके वन में [illegible] किया। भरत ने राजा होने पर भी [illegible] नहीं पाई और [illegible] भी [illegible] ने [illegible] भी अपना स्वार्थ नहीं [illegible] को सुखी करने के लिए [illegible]

तैयार है। सब का सब पर अपार स्नेह है। तुम्हारा यह भ्रातृप्रेम मेरे कारण ही संसार पर प्रकट हुआ है। इस दृष्टिकोण से मेरा पाप भी पुण्य-सा हो गया है और मुझे संतोष दे रहा है। भले ही मैंने अपनी ओर से अप्रशस्त कार्य किया किन्तु फल उसका यह हुआ है कि चिरकाल तक लोग भ्रातृप्रेम के लिए तुम लोगों को स्मरण करेंगे। कीचड़ कीचड़ ही है, किन्तु कमल उत्पन्न होने पर कीचड़ की भी शोभा बढ़ जाती है। मेरा अनुचित कृत्य भी इस प्रकार अच्छा हो गया। मैं अच्छी या बुरी, जैसी भी हूँ सो हूँ। मगर तुम्हारा अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध है। मेरी लाज आज तुम्हारे हाथ में है। अयोध्या लौटने पर ही उसकी रक्षा होगी। अन्यथा मेरे नाम पर जो धिक्कार दिया जा रहा है वह बंद न होगा।'

कैकेयी का पाप प्रकट हो चुका था पर आपका पाप क्या छिपा रहेगा? अगर ऐसा है तो फिर यह प्रार्थना करने की आवश्यकता ही क्या है कि—हे प्रभो! मुझ पापी का उद्धार कर। शास्त्र में कहा है कि आस्रव अच्छे निमित्त मिलने पर संवर के रूप में पलट सकता है। इसीलिए कैकेयी कहती है कि मेरी नीति तो थी बुराई मगर उसी से भलाई निकली।

कैकेयी फिर कहती है—मुझे नहीं मालूम था कि राम ऐसा त्यागी है कि राज्य को तुच्छ समझ कर जंगल का रास्ता पकड़ सकता है। मैं यह भी नहीं जानती थी कि भरत इतने प्रिय हैं। [illegible] ऐसा वीर है कि उसके सामने

संसार कांप सकता है, लेकिन वह इतना सीधा बन जायगा, यह तो कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। शत्रुघ्न का भी क्या पता था कि उसमें भी तुम्हीं लोगों के गुण भरे हैं। और यह सुकुमारी सीता, जो महाराज जनक के घर उत्पन्न हुई और अवधेश के घर विवाही गई, वनवास के योग्य वस्त्र पहनने में अपना गौरव और आनन्द मानेगी, यह भी कौन जानता था? आज सीता को देखकर हृदय भर आता है। और जब देखती हूं कि उसकी मुझपर अब भी वैसी ही श्रद्धा और प्रीति है तो मैं बेचैन हो जाती हूं कि मैंने इसे भी कष्ट में डाल दिया!

मनुष्य से भूल हो जाना अचरज की बात नहीं है। भूल हो जाती है मगर भूल को सुधारने में संकोच करना पतन का कारण है। भूल सुधारते समय की ऊंची भावना मनुष्य को ऊंचा उठा देती है।

कैकयी में अपनी भूल को सुधारने का साहस था। इसी कारण उसने बिगड़ी बात बना ली। वह कहती है—राम! मैं तर्क नहीं जानती। मुझे वाद-विवाद करना नहीं आता। न राजनीति से अनभिज्ञ हूं। मेरे पास सिर्फ अपना हृदय है। अपना हृदय लेकर तुम्हारे सामने खड़ी हूं। मैं माता हूं और तुम मेरे लड़के हो, फिर भी मैं प्रार्थना करती हूं कि अब अयोध्या लौट चलो। [illegible]

राम को बार-बार याद करके [illegible]

अच्छा नहीं है ।

'हे राम ! इस परिवर्त्तनशील संसार में एक-सा कौन रहता है ? सूर्य भी प्रतिदिन तीन अवस्थाएँ धारण करता है ! आसुरी वृत्ति मिटकर दैवी वृत्ति हो जाती है और दैवी वृत्ति आसुरी वृत्ति के रूप में बदल जाती है। इस प्रकार सभी कुछ बदलता रहता है। तो फिर तुम्हारी इस स्थिति में क्यों परिवर्त्तन नहीं होगा ? मेरे भाग्य ने मेरे साथ छल किया था, इससे मुझे अपयश मिला। लेकिन मेरा भाग्य अब बदल गया है और इसी कारण मुझे अपनी भूल सूझ पड़ी है । अब मैं पहले वाली कैकेयी नहीं हूँ।'

कई लोग पहले तो जोश में आकर घोर कुकृत्य कर डालते हैं और जब जोश ठंडा पड़ता है तो अपने प्राण देने को उतारू हो जाते हैं। लेकिन प्राण देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। पाप आत्मा करता है और प्राण छोड़ देने पर भी आत्मा का त्याग नहीं हो सकता। हाँ, धैर्य रखकर उचित उपाय करने से अवश्य ही पाप का क्षय हो जाता है। गाँव जला देने वाले, गो-हत्या, बाल-हत्या और स्त्री-हत्या करने वाले भी उसी भव से मुक्ति प्राप्त कर सके हैं। जिस हृदय से पाप किया, उसी हृदय से वह मोक्ष पा सके, सिर्फ उसकी अवस्था बदल गई। वाल्मीकि लुटेरे कहे जाते हैं। यहाँ तक कहा गया है कि वह नारद तक के कपड़े छीनने को तैयार हो गए थे और कहते थे कि पहले मारूँगा फिर कपड़े लूँगा।

जब वाल्मीकि भी सुधर गये तो औरों का सुधरना कौन बड़ी बात है ?

कैकेयी कहती है—'वत्स ! जो होना था सो हो चुका। मुझे कलंक लगना था सो लग गया। अब इस स्थिति का अंत लाना तुम्हारे हाथ में है। मेरा कलंक कम करना हो तो मेरी बात मानकर अयोध्या लौट चलो। तुमने मुझे यदि कौशल्या के समान ही समझा है तो मेरी बात अवश्य मान लो।'



राम का उत्तर

——::::():::::——

महारानी कैकेयी ने अत्यन्त सरल और स्वच्छ हृदय से अपने पाप के लिए पश्चात्ताप किया। राम ने सोचा—'माता को हृदय का गुब्बार निकाल लेने दिया जाय तो उनका जी हल्का हो जायगा।' अतएव वे चुपचाप उनका कहना सुनते रहे। कैकेयी का कथन समाप्त हो गया।

राम ने मुस्किराते हुए कहा—'माताजी! बचपन से ही आपका मातृसुलभ स्नेह मुझ पर रहा है और अब भी वह वैसा ही है। आप माता हैं, मै आपका पुत्र हूॅ। माता को पुत्र के आगे इतना अधीर नहीं होना चाहिए। आपने ऐसा किया ही क्या है, जिसके लिए इतना खेद और पश्चात्ताप करना पड़े। राज्य कोई बड़ी चीज़ नहीं है और वह भी मेरे भाई के लिए ही आपने मॉगा था, किसी ग़ैर के लिए नहीं। जब मै और भरत दो नहीं हैं तो यह प्रश्न ही नहीं उठता कि कौन राजा है और कौन नहीं? इतनी साधारण—सी बात को बहुत अधिक महत्व मिल गया है। आप चिन्ता न करें। मेरे मन में तनिक भी मैल नहीं है। भरत ने एक जिम्मेवरी लेकर

मुझे दूसरा काम करने के लिए स्वतंत्र कर दिया है। मेरे लिए यह प्रसन्नता की बात है। मेरा सौभाग्य है कि मेरा छोटा भाई भरत इस योग्य साबित हुआ है कि वह मेरे कार्य में सहायक हो सका।'

'माताजी! जहाँ माँ-बेटे का संबंध हो वहाँ इतनी अधिक लम्बी बातचीत की आवश्यकता ही नहीं है। आपके सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि मै अवध को लौट चलूँ। लेकिन यह बात कहना माता के लिए उचित नहीं है। आप शान्त और स्थिरचित्त होकर विचार करें कि ऐसी आज्ञा देना क्या ठीक होगा? आपकी आज्ञा मुझे सदैव शिरोधार्य है। माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का साधारण कर्त्तव्य है। लेकिन माता! तुम्हीं ने मुझे पाल-पोस कर एक विशिष्ट साँचे मे ढाला है। मुझे इस योग्य बनाया है। इसलिए मैं तो आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ही मगर निवेदन यह है कि आप उस साँचे को न भूलें, जिसमें आपने मुझे ढाला है। मेरे लिए एक ओर आप और दूसरी ओर संसार है। सारे संसार की उपेक्षा करके भी मै आपकी आज्ञा मानना उचित समझूँगा।'

नैपोलियन भी कहा करता था कि संसार का प्यार और संसार की बड़ाई एक ओर है और माता का प्यार तथा माता की बड़ाई दूसरी ओर है। इन दोनों में से माता का प्यार और माता की बड़ाई का ही पलड़ा भारी होगा।

राम कहते हैं—माताजी ! आपका आदेश मेरे लिए सब से बड़ा है और उसकी अवहेलना करना बहुत बड़ा पाप होगा। लेकिन यह बात आप स्वयं सोच लें कि आपका आदेश कैसा होना चाहिए ! आप मुझ से अवध चलने को कहती हैं, यह तो आप अपनी ही आज्ञा की अवहेलना कर रही हैं। मैंने आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए ही वन-वास स्वीकार किया है। क्या अब आपकी ही आज्ञा की अवहेलना करना उचित होगा ? इस साँचे में आपने मुझे ढाला ही नहीं है। रघुवंश की महारानियाँ एक बार जो आज्ञा देती हैं, फिर उसका कदापि उल्लंघन नहीं करतीं।

'आप कह सकती हैं कि क्या मेरा और भरत का आना निष्फल ही हुआ ? लेकिन यह बात नहीं है। आपका आगमन सफल हुआ है। यहाँ आने पर ही आपको मालूम हुआ होगा कि आपका आदेश मेरे सिर पर है। पहले आप सोचती होंगी कि वन में राम आदि दुखी हैं, यहाँ आने पर आपको मालूम हो गया कि हम तीनों यहाँ सुखी हैं। क्या आपको हम तीनों के चेहरे पर कहीं दुःख की रेखा भी दिखाई देती है ? हमने संसार को यह दिखा दिया है कि सुख अपने मन में है-वह कहीं बाहर से नहीं आता।'

धन-वैभव आदि सुख-सामग्री होने पर भी बहुत-से लोगों को रोना पड़ता है। इसका कारण क्या है ? कारण यही है कि उनके मन में सुख नहीं है। जब भीतर सुख नहीं

होता तो बाहर की सुख-सामग्री और अधिक दुखदायी हो जाती है। कोई आदमी हजारों के आभूषण पहने हो और उस समय उसे लुटेरे मिल जाएँ तो वही आभूषण दुखप्रद सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत अगर किसी फकीर को लुटेरे मिलें तो उसे क्या चिन्ता होगी? असली आनन्द तो तब है जब लुटने की अवस्था में भी वैसी ही मनोभावना बनी रहे जैसी धनप्राप्ति के समय होती है। शास्त्र में कहा है कि महात्माओं को घास के संथारे पर भी जैसा आनन्द-अनुभव होता है, वैसा चक्रवर्त्ती को भी न होता होगा। एक वर्ष का दीक्षित साधु भी सर्वार्थसिद्ध विमान के सुख को लांघ जाता है। इसका कारण यही है कि उसका मन उसके अधीन हो जाता है।

वस्तुतः सुख और दुख मानसिक संवेदनाएँ हैं। मन ही सुख-दुख का सर्जक है। सुख की बाह्य सामग्री चाहे जितनी प्राप्त की जाय, सुख पूरा नहीं होगा। कोई न कोई अभाव खटकता ही रहेगा। अगर मन को संतुष्ट और प्रसन्न बना लिया जाय तो अवश्य ही सुख की पूर्णता हो सकती है, क्योंकि जो कुछ भी प्राप्त होगा उसी में मन मस्त हो रहेगा। इसी तथ्य को समझ-कर विवेकशील पुरुष सुख-सामग्री का परित्याग करके भी मानसिक संतोष का अद्भुत आनन्द उठाते हैं।

राम कहते हैं—माता! यहाँ आकर आपने देख लिया है कि राम और लक्ष्मण और जानकी दुखी नहीं हैं, वरन् संतुष्ट

और सुखी हैं। इसलिए आपका आना निरर्थक नहीं हुआ। अगर अब भी आपको हमारी बात पर विश्वास न होता हो तो हम फिर भी कभी विश्वास दिला देंगे कि हम प्रत्येक परिस्थिति में आनन्दमय ही रहते हैं—कभी दुखी नहीं होते। सूर्यकुल में जन्म लेने वालों की यह प्रतिज्ञा होती है कि वे प्राण जाते समय भी आनन्द मानें, लेकिन वचन-भंग होते समय प्राण जाने की अपेक्षा अधिक दुःख मानें। पिताजी ने भी यही कहा था। ऐसी दशा में आप अयोध्या ले चलकर मेरे प्रण को भंग करेंगी और मुझे दुख में डालेंगी? अगर आप सूर्यकुल की परम्परा को कायम रहने देना चाहें और मेरे प्रण को भंग न होने देना चाहें तो अयोध्या लौटने का आग्रह न करें। साथ ही साथ-आत्मग्लानि की भावना का भी परित्याग कर दें। मैं स्वेच्छा से ही वन-वास कर रहा हूँ। इसमें आपका कोई दोष नहीं है; विशेषतः इस दशा में जब कि आप स्वयं आकर अयोध्या लौटने का आग्रह करती हैं और मैं वन में रहना पसंद करता हूँ, आपको दोष कैसे हो सकता है!

माता! मैंने जो कुछ कहा है, स्वच्छ अन्तःकरण से कहा है। आप उस पर विश्वास कीजिए। अगर आपको मेरे कथन पर विश्वास न आता हो तो भरत से निर्णय करा लीजिए। भरत बतलावें कि प्रण का त्याग करना उचित है या राज्य का त्याग करना उचित है? मेरा कथन ठीक है या आपका कथन? भरत का निर्णय हमें मान्य होना चाहिए।

न्यायकर्त्ता पर बहुत बोझ आ पड़ता है। राम ने भरत पर न्याय का भार डाल दिया। अगर भरत मोहवश होकर यह निर्णय दें कि आपको अयोध्या लौट चलना चाहिए तो क्या हो? लेकिन भरत ऐसे नहीं थे कि स्वार्थ के खातिर न्याय को भुला दें। सच्चा मनुष्य वही है जो कठिन से कठिन प्रसंग पर भी न्याय को याद रखता है और सत्य पर स्थिर रहता है।

राम ने भरत से कहा-भ्राता भरत ! मै तुम्ही को निर्णायक नियत करता हूँ। मै अपना पक्ष तुम्हें समझाए देता हूँ। ध्यानपूर्वक सुन लो और फिर उचित निर्णय देना।

वह कहता है—राम हाथ जोड़कर राजाओं से प्रार्थना करते हैं कि मै सामान्य धर्म की मर्यादा बांधने के लिए जन्मा हूँ। इसलिए जब अवसर आवे तब इस मर्यादा की रक्षा करना।

राम कहते हैं—सभी लोग विशेष धर्म का पालन नहीं कर सकते, किन्तु सामान्य धर्म का पालन करना सभी के लिए आवश्यक है। सामान्य धर्म का पालन करने से संसार का कोई काम नहीं रुकता और आत्मा का पतन भी नहीं होता। उदाहरणार्थ-'संथारा' ग्रहण करना विशेष धर्म हैं, जिसका पालन सब नही कर सकते, लेकिन मांस न खाना सामान्य धर्म है। इसका पालन करने से किसी का कोई काम नहीं रुकता और दुर्गति भी नहीं होती।

राम, भरत से कहते है—भरत! तुम इस बात का

खयाल रखकर निर्णय दो कि मैं संसार में क्या करने के लिए जन्मा हूं? अर्थात् मेरे जीवन का ध्येय क्या है? मुझे लोग मर्यादापुरुषोत्तम कहते हैं। मर्यादा की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है और होना चाहिए। मैं सामान्य धर्म की मर्यादा को दृढ़ बनाना चाहता हूँ और जगत् को बताना चाहता हूं कि सामान्य धर्म की मर्यादा सदा रक्षणीय है।'

संसार में एक विकट तूफान आया हुआ है। वह और कुछ नहीं, फैशन का तूफान है। कहावत है—

सादगी आज़ादी, फैसन की फाँसी।

सादगी के लिए राम ने वल्कल वस्त्र धारण किये थे, पैदल चले थे और वन में भटके थे।

राम ने तो इतना किया था परन्तु आप क्या करते हैं ? आपको हाथ के वस्त्र पसंद हैं या मिल के? राम पेड़ की छाल इसलिए पहनते थे कि वह स्वतंत्रता से मिल जाती थी और अपने ही हाथ से उसे वस्त्र के योग्य बनाया जा सकता था। लेकिन आपको तो मोटे वस्त्र भी नहीं सुहाते! आपको बारीक से बारीक वस्त्र चाहिए! कौन परवाह करता है कि इससे स्वाधीनता का घात होता है, पाप अधिक होता है और संस्कार बिगड़ते हैं, साथ ही कला का भी नाश होता है। हाथ से बनने वाले वस्त्रों में अगर आटा लगता होगा तो मिल के कपड़ों में चर्बी लगती है। अब सहज ही जाना जा सकता है कि आटा बुरा है या चर्बी बुरी है?

राम कहते हैं—'भरत ! मैं यहाँ सादगीमय जीवन विताने आया हूँ और आप दुःख सहन करके दूसरों को सुख उपजाना चाहता हूँ।'

जरा विचार कीजिए, सुख लेने से सुख होता है या सुख देने से सुख होता है ? सुख दाता को है या याचक को ? सुख वही दे सकता है जिसके पास सुख हो। जिसके पास जो वस्तु है ही नहीं वह दूसरों को किस प्रकार देगा ? कहा भी है—

जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम् ।
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ॥

अर्थात्—यह वात संसार में प्रसिद्ध है कि जो चीज़ मौजूद होती है वही दी जाती है। कोई किसी को खरगोश के सींग नहीं दे सकता।

राम कहते हैं—दूसरों का दिया हुआ दुख भी मेरे पास आकर सुख ही वन जाता है, उसी प्रकार जैसे सागर में गिरी हुई अग्नि शीतल हो जाती है। इस प्रकार दूसरे के पास जो दुख था, वह चला जाता है और उसे मै सुख दे देता हूँ। महापुरुष दूसरे का दुख लेने और उसे सुख देने के लिये सभी कुछ त्याग देते हैं। शास्त्र में कहा भी है—

चइत्ता भारहं वासं ।

अर्थात्-शांतिनाथ भगवान् ने संसार को सुख देने के

खयाल रखकर निर्णय दो कि मैं संसार में क्या करने के लिए जन्मा हूँ? अर्थात् मेरे जीवन का ध्येय क्या है? मुझे लोग मर्यादापुरुषोत्तम कहते हैं। मर्यादा की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है और होना चाहिए। मैं सामान्य धर्म की मर्यादा को दृढ़ बनाना चाहता हूँ और जगत् को बताना चाहता हूँ कि सामान्य धर्म की मर्यादा सदा रक्षणीय है।'

संसार में एक विकट तूफान आया हुआ है। वह और कुछ नहीं, फैशन का तूफान है। कहावत है—

सादगी आज़ादी, फैसन की फाँसी।

सादगी के लिए राम ने वल्कल वस्त्र धारण किये थे, पैदल चले थे और वन में भटके थे।

राम ने तो इतना किया था परन्तु आप क्या करते हैं? आपको हाथ के वस्त्र पसंद हैं या मिल के? राम पेड़ की छाल इसलिए पहनते थे कि वह स्वतंत्रता से मिल जाती थी और अपने ही हाथ से उसे वस्त्र के योग्य बनाया जा सकता था। लेकिन आपको तो मोटे वस्त्र भी नहीं सुहाते! आपको बारीक से बारीक वस्त्र चाहिए! कौन परवाह करता है कि इससे स्वाधीनता का घात होता है, पाप अधिक होता है और संस्कार बिगड़ते हैं, साथ ही कला का भी नाश होता है। हाथ से बनने वाले वस्त्रों में अगर आटा लगता होगा तो मिल के कपड़ों में चर्बी लगती है। अब सहज ही जाना जा सकता है कि आटा बुरा है या चर्बी बुरी है?

राम कहते हैं—'भरत ! मै यहाँ सादगीमय जीवन विताने आया हूँ और आप दुःख सहन करके दूसरों को सुख उपजाना चाहता हूँ।'

जरा विचार कीजिए, सुख लेने से सुख होता है या सुख देने से सुख होता है ? सुख दाता को है या याचक को ? सुख वही दे सकता है जिसके पास सुख हो। जिसके पास जो वस्तु है ही नहीं वह दूसरों को किस प्रकार देगा ? कहा भी है—

जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम् ।
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ।।

अर्थात्—यह बात संसार में प्रसिद्ध है कि जो चीज़ मौजूद होती है वही दी जाती है। कोई किसी को खरगोश के सींग नहीं दे सकता।

राम कहते हैं—दूसरों का दिया हुआ दुख भी मेरे पास आकर सुख ही बन जाता है, उसी प्रकार जैसे सागर में गिरी हुई अग्नि शीतल हो जाती है। इस प्रकार दूसरे के पास जो दुख था, वह चला जाता है और उसे मै सुख दे देता हूँ। महापुरुष दूसरे का दुख लेने और उसे सुख देने के लिये सभी कुछ त्याग देते हैं। शास्त्र में कहा भी है—

चइत्ता भारहं वासं ।

अर्थात्-शांतिनाथ भगवान् ने संसार को सुख देने के

लिए भरतखंड का एकच्छत्र साम्राज्य त्याग दिया था।

राम कहते हैं--मनुष्य को क्या करना चाहिए और किस प्रकार रहना चाहिए, यह नाटक दिखाने के लिए मै वन में आया हूँ। मैं मानव-जीवन का वह नाटक खेलना चाहता हूँ जो दुखी जनों के लिए अवलम्बन रूप होगा। मै मनुष्य के साथ मनुष्य का और मनुष्यता का संबध जोड़ने यहाँ आया हूँ, संबंध तोड़ने के लिए नहीं आया। मेरा काम वह नहीं है जो दर्जी की कैंची का होता है, वरन् मै दर्जी की सुई का काम करने आया हूँ। अर्थात् संबध को तोड़ने नहीं किन्तु जोड़ने के लिए आया हूँ। संसार रूपी वन में विना काम के झखाड़ खड़े हैं, उन्हें इसलिए छाँटने आया हूँ कि वे बढ़ने योग्य वृक्षों की वृद्धि में बाधक न बनें। मेरा उद्देश्य राजसी वैभव को भोगना नहीं है और न मै भोग को जीवन का आदर्श बतलाना चाहता हूँ। मैं आत्मा रूपी हंस को मुक्ति रूपी मोती चुगाने के लिए प्रयत्नशील हूँ। संसार को आनन्द का असली मार्ग बताना मेरा जीवन-मंत्र है। इन बातों पर ध्यान रखकर अपना निर्णय देना। भरत! मैंने अपने जीवन की साध तुम्हारे सामने प्रकट कर दी है। मुझे क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करना तुम्हारा काम है।

रानी केकेयी और भरत ने राम का वक्तव्य सुना। उनके वक्तव्य में महापुरुष के योग्य तत्त्व और उन्हें उपस्थित करने की पद्धति देख कर दोनों दंग रह गए।

राम और भरत का वार्त्तालाप

——::::()::::——

राम की बात सुन कर भरत सोचने लगे—'राम का पक्ष इतना सुन्दर, युक्तिसंगत और कल्याणकारी है कि उसे ध्यान में रखते हुए माता के पक्ष का समर्थन करना कठिन हो गया है। अब मैं राम से घर लौटने के लिए कैसे कह सकता हूँ? किन्तु यह भी कैसे कहूँ कि आप वन में ही रहिए!' इस प्रकार भरत बड़े असमंजस में पड़ गए। थोड़ी देर में धैर्य धारण करके कहने लगे—प्रभो! आपकी बताई बातें संसार का कल्याण करने वाली हैं। आप इन बातों को इसीलिए छोड़ जाना चाहते हैं कि संसार के लोग इनका अनुसरण करके अपना कल्याण कर सकें। महापुरुष सदा नहीं रहते मगर अपना आचरण पीछे वालों के लिए छोड़ जाते हैं। इसीलिए आपके कथन को मैं सर्वांश में स्वीकार करता हूँ। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि आप जो कुछ भी करना चाहते हैं वह सब क्या अवध में बैठकर नहीं हो सकता? क्या आप अवध से रुष्ट हैं? आपका जन्म वन में नहीं हुआ, अवध में

हुआ है। फिर अयोध्या का त्याग करके वन का ही कल्याण करना कहाँ तक उचित है?

भरत ने इस प्रकार एक बड़ा सवाल पैदा कर दिया, लेकिन सामने राम हैं। वह कहते हैं—भाई भरत! तुम्हारा कहना ठीक है और मर्म से भरा हुआ है। अगर कोई राज्य करता हुआ अपना और जगत् का कल्याण न कर सकता हो तो उसे वन ही में चला जाना चाहिए, लेकिन ऐसी बात नहीं है। राज्य करते हुए भी अपना और दूसरों का लौकिक कल्याण किया जा सकता है।'

'भरत—तो फिर आपके अयोध्या लौटने में क्या बाधा है? आप राज्य भी कीजिए और स्व-पर का कल्याण भी कीजिए?'

राम—' मैं सब राजाओं के लिए यह नीति नहीं बतलाता कि उन्हें राज्य करने से पूर्व वन जाना ही चाहिए। तुम मूल बात भूल रहे हो। अयोध्या में रहकर राज्य संचालन की नीति सिखाने से ही मेरा काम पूरा हो सकता तो पिताजी मेरा राज्य तुम्हें क्यों देते? और मुझे वन में आने का विचार क्यों करना पड़ता? मेरी तरह सब राजाओं को वन जाने की आवश्यकता नहीं है मगर किसी को वन का भी कार्य करना चाहिए। अगर तुम्हारी नीति के अनुसार कोई भी वन न जाए तो उसका अर्थ यह होगा कि वन जाना बुरा है। अगर वास्तव में वन जाना बुरा होता तो पहले के अनेक राजा राज्य त्याग कर वन में क्यों जाते! मैं राज्य त्याग कर वन में आया

हूँ। अब यदि फिर अयोध्या लौट-चलूँ तो लोग यह सीखेंगे कि वन जाना बुरा है और जो कुछ लाभ है सो राज्य करने में ही है। लोग कहेंगे-अगर वन जाने में अच्छाई होती तो राम वन को त्याग कर अयोध्या क्यों लौटते ?'

कई लोग कहा करते हैं-साधु बनने में क्या रक्खा है ? घर पर रहकर भी कल्याण किया जा सकता है। मगर घर रहकर अगर कल्याण किया जा सकता है तो क्या साधु होना बुरा है ? क्या साधु बन कर विशेष कल्याण नहीं किया जा सकता ? अगर साधु होने पर विशेष कल्याण की संभावना है और साधु बनना बुरा नहीं है तो साधु बनने का विरोध क्यों किया जाता है ? इसके अतिरिक्त जब चार आश्रम बतलाये गये तो चौथे आश्रम का विरोध करने की क्या आवश्यकता है ? चारों आश्रम और चारों वर्ण होने पर ही संसार की सुव्यवस्था हो सकती है।

इसीलिए राम कहते है-'अगर मै अयोध्या लौट चलूँ तो सब यही समझेंगे कि वन जाना बुरा है। क्या निर्जन वन में जाने पर भजन-चिन्तन ही संभव है—और कोई काम नहीं हो सकता ? लोग समझते हैं कि जो संसार का और कोई कार्य नहीं कर सकते वही वन जाकर ध्यान, मौन, जप, तप, आदि करते हैं। अर्थात् संसार के संबंध में जो कायर हैं उन्हीं को वन जाना चाहिए। लेकिन वास्तव में यह विचार भ्रमपूर्ण है। संसार को यह नीति बतलाने की आवश्यकता है

कि कोई कैसा भी क्यों न हो, एकान्त में निवास किये विना उसे निज-धर्म का पता नहीं लग सकता। और निज धर्म को जाने विना कोई भी काम उचित रूप से नहीं हो सकता। निज धर्म का ज्ञान न होने पर प्रत्येक कार्य में निर्बलता का अनुभव होता है! वस्तुतः एकान्त का सेवन किये विना किसी में बड़े काम करने योग्य बल और बुद्धि नहीं आती।'

'भरत! राजाओं पर अपनी प्रजा का ही भार होता है किन्तु मेरे सिर पर संसार का भार है। यह महान् उत्तरदायित्व एकान्त सेवन किये विना मैं पूर्ण नहीं कर सकता। एकान्त-सेवन करके मैं जगत् को अपूर्व बोध देना चाहता हूँ। जो बात जब मन में होगी वही वचन से प्रकट होगी और उसी के अनुसार कार्य होगा। जो बात मन में ही नहीं आएगी वह वचन या कार्य में कैसे आ सकती है? किसी बात को भली-भांति मन में लाने के लिए एकान्त सेवन की आवश्यकता रहती है। अतएव अपनी मानसिक तैयारी के लिए भी मुझे वन में वास करने की आवश्यकता है।'

'वत्स भरत! तुम न जंगल में जन्मे हो और न जंगल में पले हो। इसी तरह मैं भी जंगल में न जन्मा हूँ और न पला हूँ। इतना होने पर भी तुम जंगल का महत्त्व नहीं जानते और मैं जानता हूँ। जंगल में एकान्त सेवन करके मैं सब बातें अपने मन में ग्रहण करूँगा। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। बहुत-से मनुष्य जंगल में बंदरों एवं रीछों की

तरह रहकर अपनी जिन्दगी पूरी करते हैं। मैं उन्हें मानवीय संस्कार देना चाहता हूँ और आर्य बनाना चाहता हूँ। उनके पास पहुँचे बिना और उनके साथ घनिष्ठ संपर्क स्थापित किये बिना यह महान् कार्य पूरा नहीं होगा।

राम के उच्च और आदर्श विचार सुनकर भरत ने कहा-'आप वर्त्तमान जगत् में अनुपम पुरुष हैं। आपका अपनापन सारे संसार में फैला हुआ है। संसार के प्राणी मात्र को आप अपना समझते हैं। आपका यह विशालतम अपनापन अयोध्या में नहीं समा सकता। यह बात मैं समझ रहा हूँ। मगर एक बात मैं निवेदन करना चाहता हूँ। आप जिस कार्य को पूर्ण करने के लिए वन में रहना आवश्यक मानते हैं वह कार्य मुझे सौंप दीजिए। मै आपका कार्य करूँगा और आप अयोध्या लौट जाइए। कदाचित् मुझ अकेले को इस कार्य के लिए असमर्थ समझते हों तो लक्ष्मण को मेरे साथ रहने दीजिए। अगर दोनों से भी वह कार्य होना संभव न हो तो शत्रुघ्न को भी साथ कर दीजिए। हम तीनों मिलकर वन का काम करेंगे और आप अवध का राज्य कीजिए।'

भरत का यह विचार ओजस्वी और उदार
लेकिन राम ने कहा-भाई भरत! तुमने भ्रातृप्रेम, ९।
भावुकता की हद कर डाली। तुम इन गुणों
में आगे बढ़ गये हो। पर तुम्हारी बात मानकर
गया तो दुनिया क्या कहेगी? हम और तुम तो

लेकिन संसार को कौन समझाने बैठेगा ? मुझे यश-अपयश की चिन्ता नहीं है फिर भी लोग इस घटना से स्वार्थ-सिद्धि की शिक्षा लेंगे। उन्हें किस प्रकार समझाया जायगा ?'

महापुरुष अपनी आन्तरिक शक्ति से समर्थ होते हुए भी बाल और भावुक जीवों की तरह कार्य करते है, जिससे संसार के साधारण लोग उस क्रिया को समझ सकें। गीता में कहा है कि मूर्ख की वुद्धि का भेद न करके विद्वान् को ऐसा चरित्र बनाना चाहिए, जिसे वह ग्रहण कर सके और उसकी वुद्धि बोझ न पड़े।

आप जब छोटे बालक थे तो मां की बराबर नहीं चल सकते थे। अगर उस समय माता आपकी उँगली पकड़कर अपने बराबर आपको चलाती तो आपकी क्या दशा होती ? मगर माता ने अपनी शक्ति का गोपन करके बालक के बराबर ही, धीरे-धीरे चलना उचित समझा और फिर आप में तीव्र गति करने की शक्ति आ गई।

राम कहते हैं-'हे भरत ! तुम्हारी और मेरी प्रकट क्रिया ऐसी होनी चाहिये जिसे सब सरलता से समझ सकते हों और सर्वसाधारण पर कोई बुरा असर न पड़े। ऐसी स्थिति में मेरा अयोध्या लौटना और तुम्हारा वनवास करना कहाँ तक उचित होगा ?'

सीता का समाधानकौशल

——:::():::——

राम का पक्ष सुनकर भरत को चुप होना पड़ा। वह कोई उत्तर नहीं दे सके। फिर भी हृदय में असंतोष व्याप गया और उनकी आँखों से आंसू बहने लगे। कैकेयी भी दंग रह गई। वह सोचने लगी–अब मै क्या कहूँ और क्या न कहूँ ? राजसत्ता और योगसत्ता में से किसका खंडन किया जाय ? दोनों के चेहरे पर विषाद घिर आया।

सीता ने यह स्थिति देखी तो उन्हें भरत और कैकेयी के प्रति बड़ी समवेदना हुई। सीता सोचने लगी—मेरे देवर बहुत दुखी हो गये हैं। वह अपने भाई की बात का उत्तर नहीं दे सकते। वह किसी प्रकार का निर्णय भी कैसे कर सकते हैं ? वह किस मुँह से कह सकते हैं कि आप वन में ही रहिए और मै राज्य करता हूँ ! ऐसे विकट प्रसंग पर देवर का दुःख मिटाना चाहिए। यह सोचकर सीता एक कलश जल से भर लाई और हाथ में लेकर राम के सामने दृष्टि लगा कर खड़ी हो गई।

सीता को जल-कलश लिये देखकर राम कहने लगे--तुम

मेरे हृदय की वात जानने वाली हो। इस समय मुझे प्यास तो है नहीं, फिर जल किस लिए लाई हो ?

सीता ने कहा--मैं प्रयोजन के विना कोई कार्य नहीं करती, यह आप भलीभांति जानते हैं।

राम-हां, यह तो जानता हूँ, लेकिन इस समय कलश किस लिए लाई हो ? तुम्हारे वताये विना मै कैसे जान सकता हूँ !

सीता—आपने निर्णय करने का भार भरत पर डाल कर ऐसी दृढ़ता के साथ अपना पक्ष रक्खा है कि आपके वन-वास करने की स्वीकृति के सिवाय और कुछ कहा ही नहीं जा सकता। लेकिन रघुकुल में उत्पन्न देवर कैसे कह सकते हैं कि—'अच्छी वात है, आप वन-वास ही कीजिए।' अपने छोटे भाई को इस प्रकार संकट में डालना आपके लिए उचित नहीं है। मेरे देवर ऐसे नहीं है कि अपने मुँह से आपको वन में रहने की वात कह दें।

सीता की वात सुनकर भरत प्रसन्न हुये कि भौजाई ने मेरा पक्ष लिया है। उनके चेहरे पर किंचित् प्रसन्नता नज़र आने लगी।

सीता ने अपनी वात चालू रखते हुए कहा-साथ ही मेरे पति भी ऐसे नहीं हैं जो वन में आकर नगर को लौट जाएँ।

भरत को पहली वात सुनकर जो आशा वँधी थी, वह लुप्त हो गई। वह सोचने लगे-भौजाई ने पहले तो मेरा पक्ष लिया था, पर अव यह क्या कहने लगीं ?

सीताजी की बात सुनकर राम ने कहा—तो तुम क्या करने को कहती हो ?

सीता–देवरजी पिता का दिया हुआ राज्य नहीं ले सकते। पिता का दिया राज्य तो आप ही ले सकते हैं। इसलिये पहले आप राज्य ले लीजिए और फिर अपना राज्य भरत को दे दीजिए। ऐसा करने से भरत राज्य स्वीकार कर लेंगे।

सीता की बात राम को बहुत पसन्द आई। लक्ष्मण ने भी सीता का समर्थन किया। राम ने कहा—'तुमने अच्छा मार्ग निकाला है। जानकी, इस जटिल समस्या को सुलझा कर तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारी बुद्धि धन्य है।'

सीता—'प्रभो ! यह सब आपके चरणों का ही प्रताप है। मैं किस योग्य हूँ ? आप मेरी प्रशंसा न करें। अपनी प्रशंसा सुनकर मुझे लज्जा होती है। लेकिन ऐसी बातों में अब विलम्ब न कीजिए। जल से भरा हुआ यह कलश तैयार है। इससे पहले मंत्री आपका राज्याभिषेक करें और फिर आप भरत का राज्याभिषेक करें।'

वास्तव में सती सीता का बुद्धिकौशल ही सराहनीय नहीं है, किन्तु उनकी उदारता, कुटुम्बी जनों के प्रति उनका हार्दिक प्रेम, उनकी सहिष्णुता, उनका शील और विनयशीलता सभी कुछ सराहनीय है ! सीता की भावना कितनी पवित्र और ऊँची श्रेणी की है ! आज की कोई स्त्री होती तो सासू और देवर को आते देख न जाने कैसे कटुक वाक्यों से उनका

स्वागत करती ! वह कहती—मेरे पति का राज्य छीनकर अब मायाचार करने आए हैं ! हमें जंगल में भटकाने वाले यही माँ-बेटे हैं ? अब कौन-सा मुँह लेकर यहाँ आये हैं ! इसके अतिरिक्त राज्य लेने का प्रश्न उपस्थित होने पर कौन स्त्री ऐसी होगी जो पति को राज्य ले लेने की प्रेरणा न करे ! मगर सीता सच्ची पतिव्रता थी। वह पति की प्रतिज्ञा को अपनी ही प्रतिज्ञा समझती थी। उसने अपने व्यक्तित्व को राम के साथ मिला दिया था। इसी कारण वह भरत के प्रति ऐसा प्रेम भाव प्रकट कर सकी। सीता का गुण थोड़े अंशों में भी जो स्त्री ग्रहण करेगी उसे किसी चीज़ के न मिलने के कारण या मिली हुई चीज चली जाने के कारण कभी दुःख न होगा। इसी प्रकार राम और भरत का आंशिक अनुकरण करने से पुरुषों का भी संसार सुखमय, संतोषमय और स्नेह-मय वन सकता है।

राम का राज्याभिषेक

सीता की सराहना करके राम ने कहा—हे वन के पक्षियो ! तुम चहचहाकर मंगलगान करो। और हे पवन ! तुम चलकर चँवर का काम करो। हे सूर्य ! और हे चन्द्र ! तुम्हारी साक्षी से मैं अवध का राज्य स्वीकार करता हूँ।'

उसी समय कोयल कूकने लगी। पवन मंद-मंद गति से चलने लगा। मंत्री ने प्रसन्न होकर कलश अपने हाथ में लिया

और राम का राज्याभिषेक किया।

भरत का पुनः राज्याभिषेक

राम का राज्याभिषेक हो चुकने के पश्चात् उन्होंने भरत से कहा-आओ अनुज, अब तुम्हारा राज्याभिषेक करें। इस समय मैं अयोध्या का राजा हूँ। तुम्हें मेरी आज्ञा माननी होगी।

भरत सोचने लगे-मैं भाई की बातों का जैसा-तैसा उत्तर दे रहा था मगर भौजाई की युक्ति के सामने तो इन्द्र को भी हार माननी पड़ेगी!

इसी समय सीता ने भरत से कहा-अगर तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता का गौरव रखना चाहते हो और अपने को भाई का सेवक मानते हो तो उनकी बात मान लो। अब संकोच मत करो।

भरत ने मस्तक नीचे झुका लिया। उनमें बोलने की शक्ति नहीं रह गई। तत्पश्चात् राम ने भरत का राज्याभिषेक किया और नारा लगाया-महाराज भरत की जय हो!

राम की इस जयध्वनि की चारों दिशाओं में प्रतिध्वनि हुई, मानों सम्पूर्ण प्रकृति ने राम का साथ दिया। सब लोग आनन्दित हुए, मगर भरत की मनोव्यथा को कौन जान सकता था? भरत के हृदय में वेदना का पूर आ गया। भरत की आंखों में, यह सोचकर आंसू आ गए कि कहाँ तो मैं राम को राज्य सौंपने आया था और कहाँ यह बला मेरे गले आ पड़ी।

भरत को आश्वासन

सीता ने सोचा-'मेरी युक्ति से एक विकट समस्या तो हल हो गई परन्तु भरत का हृदय अब भी व्याकुल है। उसे संतोष नहीं है। अब भरत को कुछ और सान्त्वना देनी चाहिए। यह सोचकर वह भरत की ओर कुछ आगे बढ़ीं। तब भरत ने कहा—माता! मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपका यह वेष देखकर मेरा हृदय भीतर ही भीतर भुना जा रहा है। क्या आपका यह शरीर वल्कल वस्त्र धारण करने योग्य है? यह देखकर मेरा हृदय काँपने लगता है।' इतना कहकर भरत फिर व्याकुल हो उठे।

जानकी ने भरत से कहा—'आप इस प्रकार कातर क्यों हो रहे हैं? आप स्वयं रोकर हमें क्यों रुलाना चाहते हैं? आप हमें प्रसन्नता देने आये हैं या रुलाने आये हैं? आपके ऊपर ऐसा कौन-सा संकट आया है कि आपको रोना पड़ता है? स्त्रियाँ कातर स्वभाव वाली कही जाती हैं। हमें पुरुषों की ओर से धैर्य मिलना चाहिए, लेकिन आप तो उल्टी गंगा बहा रहे हैं!'

आपके रोने से यह तात्पर्य निकलता है कि आपने इस राज्य का असली मूल्य समझ लिया है। आप जानते हैं कि इस राज्य की बदौलत ही हमें रोना पड़ रहा है। आप राज्य को धूल के समान समझने लगे हैं। फिर इस धूल में आप

हमें क्यों सानना चाहते हैं? आप कह सकते हैं कि मैं क्यों धूल में सना रहूँ? मगर यह तो आपके भाई का दिया हुआ राज्य है। इस राज्य को सेवक की तरह चलाने में किसी प्रकार की बुराई नहीं है। ऐसी दशा में आप रोते क्यों हैं? आपको चिन्ता और शोक का त्याग कर आनन्द मनाना चाहिए।

आप मेरा वेश देखकर चिन्ता करते हैं, मगर यह भी आपकी भूल है। मेरे वल्कल वस्त्रों को मत देखो, मेरे ललाट पर शोभित होने वाली सुहाग-बिंदी की ओर देखो। यह सुहागबिंदी मानों कहती है—मेरे रहते अगर सभी रत्न-आभूषण चले जाएं तो हर्ज की क्या बात है? और मेरे न रहने पर रत्न-आभूषण बने भी रहे तो वह किस काम के? मेरे कपाल पर सुहाग का चिह्न मौजूद है, फिर आप किस बात की चिन्ता करते हैं? सुहागचिह्न के होते हुए भी अगर आप आभूषणों के लिए मेरी चिन्ता करते हैं तो आप अपने भाई की कद्र कम करते हैं। यह सुहागबिंदी आपके भाई के होने से ही है। क्या आप अपने भाई की अपेक्षा भी रत्नों को बड़ा समझते हैं? आपका ऐसा समझना उचित नहीं होगा।

भरत! आप प्रकृति की ओर देखो। जब गहरी रात होती है तो ओस के बूंद पृथ्वी पर गिरकर मोती के गहने बन जाते हैं। लेकिन उषा के प्रकट होते ही प्रकृति उन गहनों को पृथ्वी पर गिरा देती है। जैसे प्रकृति यह सोचती है कि इन

गहनों का शृंगार तभी तक ठीक था, जब तक उषा प्रकट नहीं हुई थी। अब उषा की मौजूदगी में इनकी क्या आवश्यकता है? यही बात मेरे लिए है। जब तक वन-वास रूपी उषा प्रकट नहीं हुई थी, तब तक भले ही आभूषणों की आवश्यकता रही हो, पर अब उनकी क्या आवश्यकता है? अब तो सौभाग्य को सूचित करने वाली इस सुहाग-बिंदी में ही समस्त आभूषणों का समावेश हो जाता है। यही मेरे लिए सब शृंगारों का शृंगार है। इससे अधिक की मुझे आवश्यकता ही नहीं है। ऐसी स्थिति में आप क्यों व्याकुल होते हैं? आपको मेरा सुहाग देखकर ही प्रसन्न होना चाहिए।

सीता की बात के उत्तर में अनमने भाव से भरत बोले-माता! आप जो आज्ञा देती हैं, मै उसी का पालन करूँगा। मेरी बड़ाई इसी में है कि प्रजा को यह कहने का अवसर न मिले कि राम नहीं हैं।

भरत को उपदेश

इसके पश्चात् भरत ने राम से कहा-प्रभो! विधि की विडंबना ने मुझे राजा बनाया है। अब कृपा कर मुझे ऐसा उपदेश दीजिए, जिससे मै आपका समुचित रूप से प्रतिनिधि बन सकूँ। वास्तव में अयोध्या का राज्य आपका ही है। मै आपका सेवक होकर ही राज्य की व्यवस्था करूँगा। अतएव आप मुझे जैसा आदेश और उपदेश देंगे उसी के अनुसार

म राज्य का संचालन करूँगा।

भरत स्वयं विवेकशाली, नीतिनिपुण और मर्यादा के मर्म को जानने वाले थे। कदाचित् उन्हें उपदेश की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी भाई का मान रखने के लिए उन्होंने उपदेश की माँग की। राम ने भी भरत को उपदेश देने के मिष से संसार को उपदेश दिया है।

राम कहते हैं—वत्स भरत ! मेरी कही हुई थोड़ी सी बातों को भी स्मरण रक्खोगे और उनके अनुसार आचरण करोगे तो समझ लो कि सारे संसार पर तुमने आधिपत्य स्थापित कर लिया। मैं इन बातों की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्शित करना चाहता हूँ:—

(१) सब से पहली बात यह है कि परस्त्री को माता के समान समझना। तुम राजा हो। तुम्हें सब प्रकार का ऐश्वर्य सहज ही प्राप्त होगा। मगर परस्त्री को माता मानने से ही वह ऐश्वर्य सफल और स्थायी रहेगा। माता के पुत्र भाई कहलाते हैं। जब तुम सब परस्त्रियों को माता मानोगे तो उनके पुत्र तुम्हारे भाई होंगे। इस प्रकार सारी प्रजा के साथ तुम्हारा आत्मीयता से युक्त संबन्ध स्थापित हो जायगा। समस्त प्रजा तुम्हें मेरे ही समान मालूम होगी।' फिर तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं रहेगा।

कहा जा सकता है कि सदाचारिणी स्त्रियों को तो माता के समान समझना उचित है किन्तु दुराचारिणी स्त्री को

कैसे माता माना जाय? इसका उत्तर यह है कि नागि दूसरों को भले ही काटती हो मगर उसका मंत्र जान वाले के लिए तो वह खिलौना बन जाती है। उपाय जान वाला उसे खिलौना बना सकता है। इसी तरह दुराचारिणी या वेश्या दूसरे के लिए भले बुरी हो लेकिन जो पुरुष उसे माता के समान समझेगा, उसका वह क्या कर सकती है सदाचारिणी स्त्री को माता मानना या न मानना सरीखा है किन्तु दुराचारिणी को माता के समान समझने की आवश्यकता है। इस तरह परस्त्री को माता मानने वाला स्वयं सदाचारी बना रहेगा और उसकी सन्तान को भाई-बहिन समझेगा। ऐसा होने पर उसके समभाव में वृद्धि होगी और कम से कम किसी को दंड देते समय अन्याय नही होगा।

(२) और हे भरत! जैसे स्वस्त्री ही तुम्हारी स्त्री है, परस्त्री नहीं, उसी प्रकार स्वधन ही तुम्हारा धन है। परधन को कभी अपना मत समझना। अन्यायपूर्वक किसी का धन अपहरण मत करना।

वैसे तो जो अपना नहीं है वह सब पर है, लेकिन जैसे लड़की पराये घर जन्मी होती है, फिर भी नीति के अनुसार प्राप्त होने पर परायी नहीं रहती, उसी तरह पर होने पर भी जो धन न्याय-नीति के अनुसार अपने परिश्रम से प्राप्त किया जाता है, वह परकीय नहीं रहता, अपना हो जाता है। चोरी करना, डाका डालना या ऐसा ही कोई और अनीति का काम

करना बुरा मार्ग है और ऐसे मार्ग से प्राप्त होने वाला धन अपना नहीं-पराया है। नीति के विरुद्ध किसी भी उपाय से दूसरे का धन हरण करने की तृष्णा नहीं रखना चाहिए। इस प्रकार की तृष्णा से बड़े-बड़े राजा, शासक और व्यापारी भी अपना जीवन हार जाते हैं। इसलिए तुम अन्याय से मिलने वाले धन को धूल के समान समझना।

(३) हे भरत! राज्य को भोग की सामग्री मत समझना, वरन् सेवा की सामग्री मानना। जैसे गृहपति अपने गृह की रक्षा करने में ही अपने कर्त्तव्य की सार्थकता समझता है, उसी प्रकार तुम अपनी समस्त प्रजा की रक्षा करना ही अपना कर्त्तव्य समझना। राज्य, प्रजा के प्रति राजा का पवित्र उत्त-रदायित्व है। प्रजा का सुख तुम्हारा सुख और प्रजा का दुख तुम्हारा दुख होगा। राजा की मानो कोई स्वतंत्र सत्ता ही नहीं रहती। प्रजा में ही राजा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विलीन हो जाता है। सूर्यवंश में यही होता आया है और यही होना चाहिए।

(४) हे भरत! तुम्हें अधिक उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। अतएव अन्त में यही कह देना पर्याप्त है कि इक्वा-कुवंश में हुए अनेक महान् राजाओं ने जो मर्यादा कायम की है, उसे सावधान होकर पालन करना। मै उसी मर्यादा का पालन करने के लिए वन में आया हूँ। तुम अब मेरे बनाये हुए राजा हो, इसलिए मैंने जिस मर्यादा की रक्षा की

है, तुम भी उसी की रक्षा करना। उस मर्यादा की रक्षा में ही राजा के सम्पूर्ण कर्त्तव्यों का समावेश हो जाता है।

हे भ्राता! मै तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करने का सामर्थ्य प्राप्त हो और चिरकाल तक सुखपूर्वक प्रजा का पालन करो।

इसके पश्चात् राम ने कैकेयी को आश्वासन देते हुए कहा—माता मुझे क्षमा करना। राम और भरत को आपने एक ही समझा है, इसलिए भरत के समीप रहते राम भी आपके समीप ही है। आप प्रसन्नता के साथ अयोध्या पधारें। मेरी तनिक भी चिन्ता न करें और दूसरी माताओं को भी आश्वासन दें। मोह संसार में सब बुराइयों की जड़ है। जितना-जितना वह कम होता जायगा, आत्मिक आनन्द उतना ही उतना बढ़ता जायगा। इसलिए आप मोह को शिथिल करने का प्रयास करें। राजपरिवार को और प्रजा को मेरी कुशल और प्रसन्नता का समाचार सुना दें। भाग्य जब चाहेगा, हम आपके पुनः दर्शन करेंगे। लेकिन भावना के रूप में हम सदा अयोध्या में रहेंगे। मै समस्त विश्व के साथ अवध के कल्याण की कामना करता हूँ।

